जीने की कला

विपश्यना साधना

आचार्य सत्यनारायण गोयन्का के प्रशिक्षणानुसार



विलियम हार्ट

विपश्यना विशोधन विन्यास

जीने की कला

विपश्यना साधना

आचार्य सत्यनारायण गोयन्का के प्रशिक्षणानुसार

विलियम हार्ट

विपश्यना विशोधन विन्यास
धम्मगिरि, इगतपुरी

प्रथम संस्करण : अगस्त २०११
पुनर्मुद्रण : २०१२

मूल्यः रु. ७०/-

ISBN 978-81-7414-330-3

प्रकाशक:
विपश्यना विशोधन विन्यास
धम्मगिरि, इगतपुरी - ४२२ ४०३
जिला- नाशिक, महाराष्ट्र
फोन: ०२५५३-२४४०७६, २४४०८६, २४३७१२,
२४३२३८; फैक्स: ९१-२५५३-२४४१७६
Email: vri_admin@dhamma.net.in
info@giri.dhamma.org
Website: www.vridhamma.org

मुद्रकः
अपोलो प्रिंटिंग प्रेस
जी-२५९, सीकॉफ लिमिटेड, ६९ एम. आय. डी. सी.,
सातपुर, नाशिक-४२२००७, महाराष्ट्र

मैं लोगों को एक संघटित धर्म (संप्रदाय) से दूसरे संघटित संप्रदाय में परिवर्तित करना नहीं चाहता। इन संघटित संप्रदायों में मेरी कोई रुचि नहीं है। मेरी रुचि सत्य में है जो सभी बुद्धों की शिक्षा है, और परिवर्तन तो दुःख से सुख में, विकार से निर्विकार में, बंधन से मुक्ति में, अविद्या से विद्या में होना चाहिए।

– सत्यनारायण गोयन्का

विषय-सूची

प्राक्कथन

विपश्यना ध्यान-साधना से मेरे जीवन में जो परिवर्तन आया है, उसके लिए मैं सदा कृतज्ञता का अनुभव करता हूं। जब मैंने पहली बार इस साधना विधि का अभ्यास किया तब मुझे लगा कि आज तक मैं अंधेरी गलियों की भूल-भुलैया में भटक रहा था और अब मुझे अंततोगत्वा राजपथ मिल गया है। तभी से मैं वर्षों तक इस पथ का अनुसरण करता रहा हूं और साधना के प्रत्येक सोपान के साथ संपूर्ण दुःखों से मुक्ति तथा सम्यक संबोधि की प्राप्ति का मेरा लक्ष्य स्पष्ट से स्पष्टतर होता चला गया है। मैं अंतिम लक्ष्य पर पहुँच गया हूं यह दावा तो नहीं कर सकता परंतु इसमें संदेह नहीं कि यह मार्ग हमें वहां तक सीधा पहुँचाता है।

इस पथ को दिखाने के लिए मैं सयाजी ऊ बा खिन तथा उस आचार्य परंपरा का सदैव ऋणी हूं जिन्होंने बुद्ध के जीवनकाल से लेकर हजारों वर्षों तक इस विधि को जीवित रखा। मैं उन सभी की ओर से औरों को इस मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित-प्रोत्साहित करता हूं जिससे कि उन्हें भी दुःख-मुक्ति का मार्ग मिल सके।

यद्यपि पश्चिमी देशों के हजारों लोगों ने विपश्यना विधि को सीखा है तथापि अभी तक कोई भी ऐसी पुस्तक नहीं आई है जो इस विपश्यना साधना प्रणाली का विस्तार से अविकल विवरण प्रस्तुत कर सके। मुझे प्रसन्नता है कि अंततः एक गंभीर साधक ने इस अभाव की पूर्ति का संकल्प लिया और इस पुस्तक को लिखा।

यह पुस्तक गंभीर विपश्यी साधकों की विपश्यना चेतना को गहनता दे और दूसरों को भी इस विधि के अभ्यास के लिए प्रोत्साहित करे जिससे कि वे भी मुक्ति के सुख की अनुभूति करें। इस पुस्तक का प्रत्येक पाठक जीवन जीने की कला को सीखे जिससे कि वह अपने अंतर्मन में शांति-सामंजस्य की प्राप्ति करे तथा दूसरों के लिए शांति-सामंजस्य का मार्ग प्रशस्त कर सके।

सभी सुखी हों!

सत्यनारायण गोयन्का

मुंबई. अप्रैल १९८६

भूमिका

आधुनिक संसार की बहुविध साधना पद्धतियों में आचार्य सत्यनारायण गोयन्काजी द्वारा उपदिष्ट विपश्यना एक अनूठी ध्यान पद्धति है। यह पद्धति चित्त की वास्तविक सुख-शांति और उपयोगी जीवन जीने की एक सरल तथा तर्कसंगत कला है। बर्मा के बौद्ध समाज में दीर्घकाल से सुरक्षित विपश्यना साधना में कुछ भी सांप्रदायिक नहीं है। यह किसी भी पृष्ठभूमि के लोगों द्वारा स्वीकार करके अभ्यास करने योग्य है।

गोयन्काजी एक अवकाशप्राप्त उद्योगपति तथा बर्मा के भारतीय समाज के भूतपूर्व नेता हैं। एक रूढ़िवादी हिंदू परिवार में जन्में वे युवाकाल से ही भयंकर माइग्रेन के सिरदर्द से पीड़ित रहे। उपचार की खोज में वे १९५५ में सयाजी ऊ बा खिन के संपर्क में आए जो कि सिविल सर्विस के एक उच्चाधिकारी थे तथा व्यक्तिगत स्तर पर ध्यानाचार्य की संयुक्त भूमिका का निर्वाह कर रहे थे। ऊ बा खिन से विपश्यना सीखते हुए गोयन्काजी को एक ऐसी विद्या की प्राप्ति हुई जो न केवल शारीरिक रोगों को, अपितु उससे आगे जाकर सांस्कृतिक तथा धार्मिक जकड़नों को भी दूर करती है। परवर्ती वर्षों के अभ्यास तथा अपने गुरु के निर्देशन में विपश्यना की साधना ने उनके जीवन का क्रमशः रूपांतरण ही कर डाला।

वर्ष १९६९ में सयाजी ऊ बा खिन ने गोयन्काजी को विपश्यना ध्यान साधना का आचार्य बनाया। उसी वर्ष भारत आकर उन्होंने यहां विपश्यना सिखाना शुरू किया और विपश्यना की जन्मभूमि भारत में उसका पुनः प्रवर्त्तन किया। जाति और धर्म से बुरी तरह बँटे इस देश में गोयन्काजी के ध्यान शिविरों ने विविध पृष्ठभूमि के हजारों लोगों को आकर्षित किया है। हजारों पाश्चात्य देशवासियों ने भी इस विधि की व्यावहारिकता से आकृष्ट होकर विपश्यना शिविरों में भाग लिया है।

गोयन्काजी स्वयं विपश्यना के गुणों के मूर्त्तरूप हैं। जीवन के सामान्य सुख-दुःख को निकट से जानने वाले तथा उनसे बारीकी से निपटने वाले, वे एक व्यावहारिक व्यक्ति हैं और प्रत्येक स्थिति में वे अपने चित्त की असामान्य शांति बनाए रखते हैं। इस शांति के साथ उनमें दूसरों के प्रति अथाह करुणा है और वस्तुतः किसी भी मानव के साथ तद्रूप होने की क्षमता है। उनमें कोई

रहस्यमयता नहीं है। इसके विपरीत उनमें एक चित्ताकर्षक विनोदप्रियता है जिसका उपयोग वे अपने प्रवचनों में करते हैं। साधक सुदीर्घ काल तक उनकी मुस्कान, उनके हास्य और उनके मंगल वाक्य 'सुखी रहो' को भूल नहीं पाते हैं। स्पष्टतः विपश्यना ने उन्हें सुख दिया है। विपश्यना की इस तकनीक को, जिसने उनका बहुत उपकार किया है, सिखाकर वे दूसरों के साथ इस सुख को बांटने के लिए सदैव तत्पर रहते हैं।

अपने आकर्षक व्यक्तित्व के रहते हुए भी गोयन्काजी ने ऐसा गुरु बनने की कामना कभी नहीं की जो अपने शिष्यों को उनकी इच्छानुसार चलने वाली बेजान मशीन बना दे। बल्कि वे उन्हें आत्म-निर्भरता का पाठ पढ़ाते हैं। विपश्यना की सही कसौटी है 'जीवन में उसका प्रयोग'। इसकी याद वे सदा अपने साधकों को दिलाते रहते हैं। वे अपने साधकों को अपने चरणों में न बैठाकर, उन्हें संसार में सुखी जीवन बिताने की प्रेरणा देते हैं। वे गुरु-भक्ति की सारी अभिव्यक्तियों को नकारते हैं। इसकी बजाय वे उन्हें साधनाविधि तथा अपने अंतर्मन में साक्षात्कृत सत्य के प्रति निष्ठा का आदेश देते हैं।

बर्मा में ध्यान सिखाना परंपरागत रूप से बौद्ध भिक्षुओं का एकाधिकार रहा है। अपने गुरु की भांति गोयन्काजी भी एक गृहस्थ हैं तथा एक बड़े परिवार के मुखिया हैं। फिर भी उनके शिक्षण की विशदता तथा स्वयं तकनीक की प्रभावकारिता के कारण उन्हें बर्मा, भारत तथा श्रीलंका के अनेक वरिष्ठ भिक्षुओं का अनुमोदन प्राप्त है जिनमें से अनेकों ने उनके सान्निध्य में आयोजित शिविरों में भाग लिया है।

ध्यान साधना की शुद्धता को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए गोयन्काजी का आग्रह है कि इसे कभी व्यापार नहीं बनाया जाना चाहिए। उनके निर्देशन में आयोजित शिविर तथा साधना केंद्र पूर्णतः निःशुल्क आधार पर चलते हैं। न वे स्वयं प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में अपने लिए कोई पारिश्रमिक लेते हैं और न उनके प्रतिनिधि के रूप में शिविर संचालन के लिए अधिकृत सहायक आचार्य। वे शुद्ध मानव सेवा के रूप में जरूरतमंदों की सहायता के लिए विधि को सिखाते हैं।

गोयन्काजी भारत के उन थोड़े से गिने-चुने अध्यात्म गुरुओं में से एक हैं जो भारत तथा पश्चिम में भी अत्यंत सम्मानित हैं। उन्होंने इस विद्या को कभी विज्ञापित नहीं किया। विपश्यना के प्रचार-प्रसार हेतु उन्होंने केवल साधकों के मुख से निकले शब्दों पर ही भरोसा किया। विपश्यना के बारे में कुछ लिखने की अपेक्षा उन्होंने सदा वास्तविक साधना पर ही जोर दिया। इन कारणों से वे जिस ख्याति के अधिकारी हैं उससे कहीं कम ही उनको मिली है। उनके संरक्षण में तथा

उनकी स्वीकृति से लिखी यह पुस्तक उनकी शिक्षण विधि को सांगोपांग रूप से प्रस्तुत करने वाली पहली पुस्तक है।

इस पुस्तक की मुख्य स्रोत-सामग्री दस-दिवसीय शिविरों में दिये गए उनके प्रवचन तथा कुछ सीमा तक अंग्रेजी में प्रकाशित उनके लेख हैं। मैंने इन सामग्रियों का भरपूर उपयोग किया है। मैंने न केवल उनके तर्कों और कुछ विशेष बिंदुओं की प्रस्तुति को ग्रहण किया है अपितु प्रवचनों में निरूपित उनके दृष्टांतों, अधिकांशतः उनकी शब्दावली और यहां तक कि उनके पूरे-पूरे वाक्यों का भी उपयोग किया है। उनके शिविरों के प्रतिभागी साधकों को इस पुस्तक की बहुत कुछ सामग्री परिचित लगेगी, वे यह पहचान भी कर सकेंगे कि मैंने उनके किन विशेष प्रवचनों तथा आलेखों से कौन-सी सामग्री ली है।

शिविरकाल में आचार्य द्वारा दी गई व्याख्याएं कदम-कदम पर साधकों के अनुभवों से मेल खाकर चलती हैं। परंतु इस पुस्तक में पाठ्य सामग्री का नियोजन एक भिन्न प्रकार के पाठकों के लिए किया गया है जिन्हें शिविर में भाग लेने का अवसर नहीं मिला है और जो ध्यान साधना का ज्ञान केवल पढ़कर प्राप्त कर रहे हैं। ऐसे पाठकों के लिए शिक्षण को यथार्थतः अनुभूत रूप में, एक अटूट तार्किक अनुक्रम के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है जैसा कि साधक को पहले चरण से लेकर अंतिम लक्ष्य तक पहुँचने में अनुभव होता है। यह व्यवस्थित समग्रता साधकों के लिए सहज रूप में स्पष्ट है। परंतु यह पुस्तक साधकेतर लोगों के लिए इस साधना विद्या को ठीक उसी रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास है जिस रूप में उसका अधिग्रहण साधकों द्वारा होता है।

इसके कतिपय अनुच्छेदों में उच्चरित शब्दों को जानबूझकर उनके मूल-रूप में रखा गया है जिससे कि गोयन्काजी जिस ढंग से शिक्षण करते हैं, उसकी एक जीवंत झलक दी जा सके। ये अनुच्छेद वे कथा-भाग हैं जो अध्यायों तथा प्रत्येक अध्याय के उपसंहार के रूप में दिये गए प्रश्नोत्तर के अंतराल में रखे गए हैं। संवाद उन वास्तविक परिचर्चाओं से लिए गए हैं जो शिक्षण काल में साधकों के साथ वार्तालाप अथवा व्यक्तिगत साक्षात्कारों में दिए गए हैं। कतिपय कथाएं बुद्ध के जीवन से ली गयी हैं, कुछ भारत की समृद्ध लोकगाथाओं की विरासत से, और कुछ गोयन्काजी के व्यक्तिगत अनुभवों से। सभी उनके शब्दों में कही गयी हैं जिनका आशय उनके मूल स्वरूप में कोई सुधार करना नहीं अपितु कहानियों को ध्यान-साधना के अनुकूल बनाने की आवश्यकता पर जोर देकर उन्हें नए ढंग से, नए अंदाज में प्रस्तुत करना है। ये कहानियां विपश्यना शिविर के गंभीर परिवेश को हल्का-फुल्का बनाती हैं और शिक्षण के केंद्रीय बिंदुओं को स्मरणीय रूप में

चित्रित करती हैं। दस-दिवसीय शिविरों की अनेक कथाओं में से केवल कुछ का चयन यहां किया गया है।

उद्धृत अंश बुद्धवाणी के प्राचीनतम तथा व्यापक रूप से स्वीकृत विवरण 'सुत्तपिटक' से लिये गये हैं जैसे कि वे थेरवादी बौद्ध देशों में प्राचीन पालि भाषा में उपलब्ध हैं। इस भाषा की लय को पूरी पुस्तक में एकरूपता देने के लिए मैंने उद्धृत अंशों का अनुवाद नए सिरे से करने का प्रयास किया है। ऐसा करते हुए मैंने प्रमुख आधुनिक अनुवादकों की कृतियों से मार्गदर्शन लिया है। फिर भी चूंकि यह कोई पांडित्य दर्शाने वाली रचना नहीं है; मैंने पालि के अनुवाद में शब्द-प्रतिशब्द सटीक अनुवाद का प्रयास नहीं किया है । इसकी बजाय मैंने प्रत्येक परिच्छेद के भाव को विपश्यी साधक के अनुभव के आधार पर सीधी-सादी भाषा में व्यक्त किया है। संभवतः कुछ शब्दों अथवा अवतरणों का अनुवाद शास्त्र-सम्मत न लगे परंतु जहां तक उनके भाव का संबंध है, मुझे विश्वास है कि अंग्रेजी भाषांतर मूलपाठ के आशय के बहुत निकट है।

सुस्पष्टता तथा सुसंगति को बनाए रखने के लिए पुस्तक में परंपरागत बौद्ध शब्दावली को उनके पालि रूप में दिया गया है यद्यपि कुछ मामलों में अंग्रेजी भाषी पाठकों को उनका संस्कृत रूप अधिक ग्राह्य होता। उदाहरणतः संस्कृत 'धर्म' के स्थान पर धम्म, 'कर्म' के स्थान पर कम्म, 'निर्वाण' के स्थान पर निब्बान और 'संस्कार' के स्थान पर सङ्खार जैसे पालि शब्दों का प्रयोग किया गया है। पाठकों को समझने में सरल बनाने के प्रयास में पालि शब्दों के बहुवचन रूप प्रकट करने के लिए अंग्रेजी ढंग पर 'एस (s)' अक्षर जोड़ा गया है। सामान्यतः पाठ्यपुस्तक में अनावश्यक अस्पष्टता (दुर्बोधता) से बचने के लिए पालि शब्दों का कम-से-कम प्रयोग किया गया है। पाश्चात्य मनीषियों के लिए कतिपय अपरिचित अवधारणाओं का, जिनका एक शब्द में अंग्रेजी में अनुवाद करना आसान नहीं, अंग्रेजी अनुवाद कई शब्दों में न कर पालि शब्द ही रखा गया है। मोटे अक्षरों में मुद्रित सभी पालि शब्दों को इस ग्रंथ के अंत में शब्दानुक्रमणिका में परिभाषित कर दिया गया है।

विपश्यना साधना वर्ण, जाति, धर्म, वर्ग, तथा लिङ्ग का विभेद किए बिना, उन सबको समान लाभ पहुँचाती है जो इसका अभ्यास करते हैं। पुस्तक में मैंने लिङ्गवाची शब्दों का विशेष लिङ्ग में प्रयोग से बचने का प्रयास किया है। जिन कतिपय स्थलों पर मैंने 'वह' (he) सर्वनाम का प्रयोग किया है वह साधक मात्र के लिए किया है चाहे वह पुरुष हो या स्त्री। साधकों से मैं चाहूंगा कि वे इस प्रयोग को निर्धारित लिङ्ग के रूप में ग्रहण न करें। यहां स्त्री वर्ग की अवहेलना

अथवा पुरुष वर्ग को अनावश्यक महत्त्व देना मेरा प्रयोजन नहीं है क्योंकि ऐसा भेदभाव विपश्यना की मूल भावना और उसके शिक्षण के विरुद्ध होगा।

मैं उन लोगों के प्रति आभारी हूं जिन्होंने इस अभियोजना में मेरी सहायता की है। विशेषतः गोयन्काजी के प्रति मैं अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करना चाहूंगा जिन्होंने अपने व्यस्त कार्यक्रम में से समय निकालकर इस प्रस्तुति को यह स्वरूप देने के लिए न केवल प्रारंभ में देखा बल्कि इससे भी अधिक इस पुस्तक में वर्णित प्रवाह में चलने के लिए मुझे दिशा-निर्देश भी दिया।

सच्चे अर्थ में इस ग्रंथ के वास्तविक लेखक गोयन्काजी ही हैं। मेरा प्रयोजन बुद्ध की शिक्षा के प्रसारण के उनके प्रयासों को सफल बनाना मात्र है इसलिए इस पुस्तक की अच्छाइयां उनकी और कमियां मेरी हैं।

प्रस्तावना

मान लीजिए आपको सभी व्यवधानों से सुरक्षित शांत एकांत स्थान पर दस दिनों के लिए सांसारिक जिम्मेदारियों से छुटकारा पाने का मौका मिले। इस स्थान पर आपकी निवास और भोजन संबंधी सभी बुनियादी जरूरतें पूरी की जायं और आपकी सुविधाओं के लिए सहायक सदा तत्पर मिलें और बदले में आपसे केवल यह अपेक्षा की जाय कि आप बाहरी दुनिया से कोई संपर्क न रखें तथा नित्य की आवश्यक क्रियाओं के अतिरिक्त जाग्रत अवस्था में सारे समय आंखों को बंद कर किसी आलंबन पर अपना ध्यान केंद्रित करें– तो क्या आप यह प्रस्ताव स्वीकार करेंगे ?

मान लें आपने केवल यह सुना है कि ऐसा अवसर उपलब्ध है और आप जैसे कुछ लोग अपना खाली समय इस तरह व्यतीत करने के इच्छुक ही नहीं, तत्पर भी हैं। तब आप उनके इस विचार को क्या कहेंगे? आप कह सकते हैं– आत्मलीनता या मनन, पलायन अथवा आध्यात्मिक एकांतवास, आत्म-मद या आत्म-गवेषणा, आत्मनिरीक्षण या अंतर्मुखता।

इसका अर्थ चाहे नकारात्मक हो या सकारात्मक, ध्यान का सामान्य अर्थ संसार से विरक्ति माना जाता है। निस्संदेह कुछ विधियां ऐसी प्रचलित हैं जो संसार से विरक्ति की ओर ले जाती हैं परंतु ध्यान का अर्थ संसार से पलायन नहीं है। यह संसार की चुनौतियों का सामना करने का साधन भी हो सकता है जिससे कि हम अपने आपको और संसार को अच्छी तरह समझ सकें।

हर व्यक्ति स्वाभाविक रूप से यह मानता है कि वास्तविक जगत बाहर है। जीवन जीने का ढंग बाह्य जगत के संपर्क में आना है; बाहर से भौतिक एवं मानसिक स्थितियों के संपर्क में आना है । हममें से अधिकांश ने हमारे अंतर्जगत में क्या हो रहा है, इसे देखने के लिए बाह्य जगत से संपर्क तोड़ने के बारे में कभी सोचा ही नहीं। ऐसा करना संभवतः दूरदर्शन के पर्दे को घंटों बैठकर घूरते रहने के समान है जिस पर कोई प्रोग्राम नहीं चल रहा है। हम अपने अंतर्मन की अथाह प्रच्छन्न गहराई की अपेक्षा चंद्रमा के दूरदराज के परिदृश्य अथवा समुद्र तल की खोज करना अधिक पसंद करेंगे।

परंतु वास्तव में हममें से हर एक के लिए विश्व का अस्तित्व तभी तक है जब तक हम अपने शरीर और चित्त से उसका अनुभव करते हैं। यह और कहीं नहीं है, यह सदा अभी और यहीं है । हम अपने अभी और यहीं की खोज करके संसार की खोज कर सकते हैं। जब तक हम अपने संसार की गवेषणा भीतर नहीं करते हैं, हम सत्य को कभी नहीं जान सकते हैं। हम इसके प्रति केवल अपनी मान्यताओं (विश्वासों) अथवा अपनी बौद्धिक अवधारणाओं को ही जान सकते हैं। तथापि अपनी गवेषणा कर, हम सच्चाई की गवेषणा प्रत्यक्षतः कर सकते हैं। साथ ही उस सच्चाई के साथ हम कैसे सकारात्मक तथा रचनात्मक तरीके से व्यवहार कर सकते हैं यह भी सीख सकते हैं।

गोयन्काजी द्वारा सिखायी गयी अंतर्जगत की गवेषणा की एक पद्धति है विपश्यना, जो कि अपने नाम-रूप (चित्त-शरीर) की सच्चाई के परीक्षण का, अंदर की समस्याओं के जानने तथा उनका समाधान करने की अनजानी अंतर्शक्ति का विकास करने तथा इसे आत्मकल्याण तथा जनकल्याण का माध्यम बनाने का यह व्यावहारिक मार्ग है।

भारत की प्राचीन पालि-भाषा में विपश्यना का अर्थ है आत्मदर्शन। यह बुद्ध की शिक्षा का सार है, उस सत्य का यथाभूत ज्ञानदर्शन है जिसका उन्होंने उपदेश दिया। विपश्यना साधना के द्वारा स्वयं बुद्ध ने इसी सत्य की प्राप्ति की । अतः उन्होंने प्रमुखतः विपश्यना साधना का ही उपदेश दिया। उनके शब्द उनके ध्यानानुभव के अभिलेख हैं। इसके अतिरिक्त इनमें यह निर्देश भी विस्तार से है कि विपश्यना साधना का अभ्यास कर हम कैसे उस लक्ष्य की प्राप्ति तथा सत्यानुभूति कर सकते हैं जो बुद्ध ने किया था।

इतना तो व्यापक रूप से मान्य है परंतु समस्या यह है कि बुद्ध के निर्देशों को कैसे समझा जाय और उनका कैसे अनुसरण किया जाय। उनके शब्द तो प्रामाणिक पालि ग्रंथों में सुरक्षित हैं परंतु बुद्ध के विपश्यना ध्यान निर्देशों को विपश्यना ध्यान के जीवंत अभ्यास के संदर्भ के बिना समझना मुश्किल है।

परंतु यदि कोई ऐसी विधि है जो अनगिनत पीढ़ियों तक सुरक्षित बनी रही है और जिसके अभ्यास से वही परिणाम मिलते हैं जिनका वर्णन बुद्ध ने किया है, जो बुद्ध के प्रवचनों के निष्कर्षों को प्रस्तुत करती है और उनके निर्देशों को यथारूप स्पष्ट करती है, उनके ऐसे बिंदुओं को स्पष्ट करती है जो दीर्घ काल से अस्पष्ट रहे हैं, तब निश्चित रूप से उस विधि की गवेषणा की जानी चाहिए। विपश्यना एक ऐसी ही विधि है। यह अपनी सरलता में, मत-मतांतरों के अभाव में और इनसे भी अधिक अपने प्रदत्त परिणामों में अनुपम है।

विपश्यना ध्यान की शिक्षा दस दिन के शिविरों में दी जाती है। यह उन सबके लिए सुलभ है जो निष्ठापूर्वक इसे सीखना चाहते हैं और जो शारीरिक तथा मानसिक रूप से सक्षम हैं। दस दिनों तक साधक शिविर की निर्धारित सीमा के अंदर ही रहते हैं और बाहरी दुनिया से कोई संपर्क नहीं रखते। वे पढ़ने-लिखने का कोई काम नहीं करते, किसी धार्मिक कर्मकांड अथवा अन्य किसी प्रकार की गतिविधि से अपने को दूर रखते हैं, ठीक वही करते हैं जो उनसे करने को कहा जाता है। शिविर की पूरी अवधि में वे मूलभूत नैतिक आचार संहिता का पालन करते हैं जिसमें ब्रह्मचर्य का पालन करना तथा सभी प्रकार की नशाखोरी से बचना भी है। शिविर के पहले नौ दिनों तक वे परस्पर आर्य-मौन का भी पालन करते हैं, यद्यपि वे अपने आचार्य से साधना-संबंधी समस्याओं तथा प्रबंधकों से अपनी जरूरतों के बारे में बात करने के लिए स्वतंत्र हैं।

पहले साढ़े तीन दिनों तक साधक चित्त की एकाग्रता प्राप्त करने का अभ्यास करते हैं। यह वास्तविक विपश्यना विधि सीखने के लिए प्रारंभिक अभ्यास है । 'विपश्यना' शिविर के चौथे दिन सिखायी जाती है। दिन प्रतिदिन साधना के नए-नए सोपान बताये जाते हैं जिससे शिविर के अंतिम दिन तक ध्यान विधि की पूरी रूपरेखा प्रस्तुत हो जाती है। दसवें दिन आर्य-मौन समाप्त होता है और साधक फिर बहिर्मुखी हो जाता है। शिविर का समापन ग्यारहवें दिन प्रातःकाल होता है।

दस दिनों में साधक को अनेक आश्चर्यजनक अनुभव हो सकते हैं। पहला यह कि ध्यान एक कठिन कार्य है। यह लोकधारणा कि ध्यान एक प्रकार की निष्क्रियता अथवा विश्राम है, जल्द ही दूर हो जाती है। मन को एक विशेष दिशा में सचेतन होकर काम करने के लिए अनवरत अभ्यास की आवश्यकता होती है । पूरे प्रयास के साथ तनाव-रहित होकर काम करने के निर्देश दिये जाते हैं। लेकिन जब तक कोई ऐसा करना सीख नहीं लेता, उसका अभ्यास अवसाददायी तथा थकाने वाला हो सकता है।

दूसरा आश्चर्य यह है कि प्रारंभ करते ही स्वनिरीक्षण से प्राप्त अनुभव पूरी तरह सुखद तथा आनंदपूर्ण होने की संभावना नहीं होती। सामान्यतः अपने बारे में हमारा दृष्टिकोण वैसा होता है जैसा हम चाहते हैं। जब हम किसी दर्पण में अपने को देखते हैं तब हम बहुत सावधानीपूर्वक अपनी अत्यंत प्रसन्न मुद्रा में सर्वाधिक मोहक मुस्कान को चेहरे पर लाते हैं। इसी प्रकार हम सभी अपना-अपना एक मानसिक चित्र बनाते हैं जिसके अंदर प्रशंसनीय गुणों पर जोर देते हैं, दोषों को कम करते हैं और अपने चरित्र के कुछ पहलुओं की बिल्कुल ही उपेक्षा करते हैं। हम अपने उस चित्र को देखते हैं जिसे हम देखना चाहते हैं, वास्तविकता को

नहीं देखते। परंतु विपश्यना साधना एक ऐसी विधि है जिससे हम वास्तविकता को सभी कोणों से देखते हैं, सावधानीपूर्वक काटे-छाटे स्वचित्रण की बजाय साधक पूर्ण सत्य का सामना करता है, जिसके कुछ पहलू अनिवार्यतः अग्राह्य, अस्वीकार्य होते हैं ।

कभी-कभी साधना से आंतरिक शांति की बजाय व्याकुलता का आभास होने लगता है। शिविर की एक-एक चीज अस्वीकार्य लगती है तथा ऐसा भी अनुभव होता है कि इससे काम नहीं बनेगा । सब कुछ यथा-अनवरत काम में लगाये रखने वाली समय-सारणी, प्रदत्त सुविधाएं, अनुशासन, निर्देश, आचार्य द्वारा दिये जाने वाले परामर्श तथा तकनीक भी, बेकार, बेमतलब लगते हैं।

जो हो, एक अन्य आश्चर्य यह भी है कि सारी मुश्किलें खत्म हो जाती हैं। साधना के एक विशेष पड़ाव पर आकर साधक स्वाभाविक रूप से एक प्रयास रहित प्रयास करने तथा एक अनासक्त सरोकार बनाए रखना सीख जाते हैं। संघर्ष की बजाय वे अभ्यास में रत हो जाते हैं। अब सुविधाओं की कमी महत्त्वहीन लगती है, 'अनुशासन' एक सहायक साधन बन जाता है, अनजाने ही समय जल्दी-जल्दी बीतने लगता है। प्रत्यूष बेला की उस पहाड़ी झील के समान मन शांत हो जाता है जो अपने परिवेश को पूर्णतया प्रतिबिंबित करने के साथ अपनी गहराई को उन सबके लिए उद्घाटित करती है जो उसे अधिक ध्यानपूर्वक देखते हैं। जब यह स्पष्टता आती है, प्रत्येक क्षण शांति, सौंदर्य, तथा सकारात्मकता से भर जाता है।

इस प्रकार साधक जान जाता है कि यह विधि सचमुच बड़े काम की है। क्रमशः प्रत्येक चरण एक लंबी छलांग की तरह लगता है । फिर भी लगता है कि वह उसे कर सकता है। दस दिनों के अंत में यह भलीभाँति स्पष्ट हो जाता है कि शिविर के पहले दिन से यह यात्रा कितनी लंबी हुयी। साधक मानो शल्यक्रिया से होकर गुजरा है जो पीप से भरे घाव को चीरने के समान है। घाव को चीरना और पीप को बाहर निकालने के लिए घाव को दबाना दुःखदायी है परंतु जब तक यह किया नहीं जाता है, घाव ठीक नहीं हो सकता। एक बार जब पीप हटा दी जाती है तब पीप और पीप से उत्पन्न दर्द से राहत मिल जाती है। इसी तरह व्यक्ति पूर्ण स्वस्थ हो सकता है। इसी प्रकार दस दिन के शिविर से गुजरने पर साधक एक सीमा तक मानसिक तनाव से मुक्त हो जाता है और एक बड़ी मात्रा में मानसिक स्वास्थ्य का अनुभव करता है। विपश्यना की प्रक्रिया ने उसमें गहन आंतरिक परिवर्तन लाने में सफलता पाई है जो परिवर्तन शिविर की समाप्ति के बाद भी बने रहते हैं। साधक को महसूस होता है कि शिविर में उसे जो मानसिक ऊर्जा मिली

है, शिविर में उसने जो कुछ सीखा है उसका उपयोग वह अपने दैनिक जीवन में अपनी और दूसरों की भलाई के लिए कर सकता है। इससे जीवन अधिक सामंजस्यपूर्ण, सफल तथा सुखद बनता है।

जिस विधि से गोयन्काजी विपश्यना साधना सिखाते हैं, यह विधि उन्होंने बर्मा में अपने गुरु स्वर्गीय ऊ बा खिन से सीखी जिन्हें गत शताब्दी के प्रथमार्द्ध में बर्मा में ध्यान के प्रख्यात प्रथम गृहस्थ आचार्य सया ऊ तैं ने सिखाई थी। सया ऊ तैं प्रख्यात बर्मी विद्वान भिक्षु लेडी सयाडो के शिष्य थे जिनका जीवनकाल उन्नीसवीं शताब्दी के अंत और बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ का था। इसके पहले की विपश्यना की गुरु-शिष्य परंपरा का कोई अभिलेख उपलब्ध नहीं है। परंतु जो इस साधना के साधक हैं, उनका विश्वास है कि लेडी सयाडो ने उन पारंपरिक आचार्यों से ही विपश्यना सीखी थी जिन्होंने पहली बार जब बर्मा में बुद्ध की शिक्षा का प्रवर्त्तन हुआ था, तब से इसे पीढ़ी-दर-पीढ़ी सुरक्षित रखा जो आगे चलकर केवल भिक्षु आचार्यों तक सीमित रही।

निस्संदेह यह कहा जा सकता है कि यह विद्या बुद्ध के ध्यान निर्देशों के अनुरूप है। यह बुद्ध-वाणी के सरलतम तथा शाब्दिक अर्थों के अनुसार है। सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि यह ऐसे परिणाम देने वाली है जो शुभ, व्यक्तिगत, ठोस तथा तात्कालिक हैं।

यह पुस्तक विपश्यना साधना की 'स्वयं करो' नियमावली नहीं है। जो लोग ऐसा करते हैं वे इसके खतरों के जिम्मेदार हैं। इस विधि को एक ऐसे साधना शिविर में ही सीखा जाना चाहिए, जहां साधक के लिए पर्याप्त सुविधा संपन्न वातावरण हो और सुप्रशिक्षित मार्गदर्शक आचार्य हों। साधना एक गंभीर विषय है, खासकर विपश्यना साधना की विधि, जो चित्त की गहराइयों की गवेषणा करती है। इसे बचकाने ढंग अथवा लापरवाही से कभी नहीं करना चाहिए। यदि इस पुस्तक के अध्ययन से आपको विपश्यना साधना करने की प्रेरणा मिलती है तो आप कहां और कब शिविर लग रहे हैं इसका पता लगाने के लिए पुस्तक के अंत में दी गई तालिका के केंद्रों से (अथवा वेबसाइट पर उपलब्ध कार्यक्रम व संपर्क पतों पर) संपर्क कर सकते हैं।

यहां हमारा उद्देश्य केवल गोयन्काजी द्वारा सिखाई जाने वाली विपश्यना साधना की रूपरेखा प्रस्तुत करना है इस आशा के साथ कि यह बुद्ध की शिक्षा तथा साधना विधि, जो उनका सारतत्त्व है, की समझ को बढ़ायेगी।

तैराकी विज्ञान (तैरना जानते हो)

एक युवा प्रोफेसर समुद्र-यात्रा कर रहा था। वह उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्ति था। उसके पास बहुत सी उपाधियां थीं, लेकिन जीवन का अनुभव उसे कम था। जहाज के कर्मी दल में एक अनपढ़ बूढ़ा नाविक था। रोज शाम को नाविक युवा प्रोफेसर के कैबिन में आता और विभिन्न विषयों पर उसके भाषण सुनता। नाविक युवा विद्वान की विद्वत्ता से बहुत प्रभावित था।

एक शाम नाविक लंबी वार्ता के बाद जैसे ही केबिन छोड़ने वाला था, प्रोफेसर ने उससे पूछा, 'बूढ़े बाबा, क्या तुमने जिओलॉजी (Geology) पढ़ी है?'

'यह क्या है, सर?'

'यह भू-विज्ञान है।'

'नहीं सर, मैं कभी स्कूल या कालेज गया ही नहीं, मैने कभी कुछ भी नहीं पढ़ा। मेरे लिए काला अक्षर भैंस बराबर है।'

'बूढ़े, तुमने तो अपना एक-चौथाई जीवन व्यर्थ गंवा दिया।'

बूढ़ा नाविक मुँह लटकाए चला गया। यदि इतना बड़ा विद्वान ऐसा कहता है तो ठीक ही कहता होगा। सचमुच ही उसने अपना एक-चौथाई जीवन व्यर्थ गंवा दिया।

फिर दूसरे दिन शाम को जैसे ही नाविक केबिन छोड़ने लगा, प्रोफेसर ने उससे पूछा 'बूढ़े, क्या तुमने ओशनोग्राफी (Oceanography)पढ़ी है?'

'यह क्या है, सर?

'समुद्र-विज्ञान'।

'नहीं सर। मैंने कहा न कि मैंने कभी कुछ नहीं पढ़ा है।'

'बूढ़े, तुमने अपना आधा जीवन बर्बाद कर दिया।'

बूढ़ा कुछ और अधिक मुँह लटकाकर चलता बना। यह विद्वान ठीक ही कहता होगा कि मैंने अपना आधा जीवन बर्बाद कर दिया।

तीसरे दिन शाम को फिर युवा प्रोफेसर ने बूढ़े नाविक से पूछ लिया 'बूढ़े, क्या तुमने, मेटिओरोलॉजी (Meteorology) पढ़ी है?

‘यह क्या है सर? मैंने तो इसका नाम भी नहीं सुना है।’

यह हवा, वर्षा, मौसम का विज्ञान है।’

‘नहीं सर! जैसा कि मैंने आपको बताया, न मैं कभी कोई स्कूल गया और न मैंने कभी कुछ पढ़ा।’

‘जिस धरती पर तुम रहते हो, उसका विज्ञान नहीं पढ़ा; जिस समुद्र से अपनी रोटी कमाते हो, उसका विज्ञान भी नहीं पढ़ा; जिस मौसम से तुम्हारा रोज वास्ता पड़ता है, उसका विज्ञान भी नहीं पढ़ा। बूढ़े, तुमने अपना तीन-चौथाई जीवन बर्बाद कर दिया।’ बूढ़ा बहुत द:ुखी हुआ। यह विद्वान ठीक ही कहता है मैंने अपना तीन-चौथाई जीवन बर्बाद कर दिया है।

अगले दिन बूढ़े नाविक की बारी थी। वह दौड़ता हुआ युवक के केबिन में घुस आया और चिल्लाया, ‘प्रोफेसर साहब! क्या आपने स्विमोलॉजी (Swimology) पढ़ी है?’

‘स्विमोलॉजी (Swimology)? तुम कहना क्या चाहते हो?’

‘सर! क्या आप तैर सकते हैं?’

‘नहीं, मुझे तैरना नहीं आता।’

‘तो प्रोफेसर साहब! आपने अपना पूरा जीवन बर्बाद कर दिया। जहाज एक चट्टान से टकरा गया है और डूब रहा है। जो तैर सकते हैं वे किनारे पर पहुँच सकते हैं। जो नहीं तैर सकते, वे तो डूब ही जायेंगे। मुझे बड़ा अफसोस है जनाब प्रोफेसर साहब, आपने सचमुच ही अपना जीवन खो दिया।’

आप संसार के सारे विज्ञान पढ़ सकते हो, लेकिन अगर स्विमोलॉजी नहीं पढ़ते हो तो आपके सारे विज्ञान बेकार हैं। आप स्वीमिंग पर पुस्तकें पढ़ और लिख सकते हो, इसकी सैद्धांतिक बारीकियों पर बहस कर सकते हो परंतु ये सब ज्ञान-विज्ञान आपकी क्या सहायता करेंगे, यदि आप स्वयं पानी में नहीं उतरेंगे। आपको तैरना तो सीखना ही पड़ेगा!

अध्याय १

खोज (गवेषणा)

हम सब शांति और सामंजस्य चाहते हैं जब कि हमारे जीवन में इन्हीं की कमी है। हम सभी सुखी होना चाहते हैं, हम इसे अपना अधिकार समझते हैं। फिर भी सुख एक ऐसा लक्ष्य है जिसके लिए हम बहुधा प्रयत्न करते हैं परंतु प्राप्त नहीं कर पाते। हम सभी कभी-न-कभी जीवन में असंतोष, अशांति, चिड़चिड़ाहट, असामंजस्य तथा दुःख का अनुभव करते हैं। भले ही हम इस क्षण में इन 'असंतोषों से मुक्त हों', परंतु हम उस समय की याद कर सकते हैं जब हमें इनसे पीड़ा पहुँची और ऐसे समय का पूर्वानुमान कर सकते हैं जब भविष्य में वे फिर घट सकते हैं। अंततोगत्वा हम सभी को मृत्यु-दुःख का तो सामना करना ही है।

हमारा व्यक्तिगत असंतोष हमारे तक ही सीमित नहीं रहता है। हम अपना दुःख दूसरों को बांटते रहते हैं। जो व्यक्ति दुःखी है उसके चारों ओर का वातावरण अशांति से भर जाता है। जब कोई दूसरा उस वातावरण में प्रवेश करता है तब वह भी अशांति और दुःख का अनुभव करता है। इस प्रकार व्यक्तियों का तनाव समाज में तनाव को जन्म देता है।

जीवन की मूलभूत समस्या इसका असंतोषप्रद स्वभाव है। अनचाही घटनाएं घटती हैं, मनचाही होतीं नहीं और हमें कुछ पता भी नहीं कि यह सब कैसे और क्यों होता है? ठीक उसी प्रकार जैसे हम अपने आदि और अंत के बारे में कुछ नहीं जानते ।

पच्चीस सौ वर्ष पूर्व उत्तरी भारत में एक व्यक्ति ने, मनुष्य के दुःख की समस्या के कारणों की खोज करने का निश्चय किया। वर्षों तक अनेक प्रकार के उपायों की खोज तथा उनका प्रयोग करने के पश्चात उन्होंने अपनी प्रकृति के सत्य और सच्ची दुःख विमुक्ति का उपाय ढूँढ़ लिया और दुःख से सही माने में छुटकारा पाने का अनुभव किया। मुक्ति के अंतिम लक्ष्य तक पहुँच, दुःख एवं द्वंद्व से छुटकारा पाकर उन्होंने अपना शेष जीवन दूसरों को वही सिखाने में लगाया जो उन्होंने स्वयं किया था, अर्थात उन्हें स्वयं मुक्ति का मार्ग दिखाया।

वह व्यक्ति सिद्धार्थ गौतम बुद्ध सम्यक संबुद्ध के नाम से प्रसिद्ध हुआ जिसने अपने आपको 'मानव' होने के अतिरिक्त अन्य कुछ होने का दावा नहीं किया। सभी महान गुरुओं के समान वे जन चर्चा के विषय बन गए, लेकिन उनके

पूर्वजन्म की चमत्कारिक शक्तियों के बारे में जो भी कहानियां कही गईं, सभी विवरण इस बात से सहमत हैं कि उन्होंने अपने दिव्य रूप अथवा ईश्वर से प्रेरित होने की घोषणा नहीं की। उनमें जो भी विशेष गुण थे, वे अति उत्कृष्ट मानवीय गुण थे, जिन्हें उन्होंने पूर्णता तक पहुँचाया था। अतः उन्होंने जो कुछ प्राप्त किया वह किसी भी मनुष्य के लिए प्राप्य है, यदि वह उन्हीं के समान उद्यम करे।

बुद्ध ने किसी धर्म, दर्शन अथवा वाद (मत) की शिक्षा नहीं दी। उन्होंने अपनी शिक्षा को **'धम्म'** (धर्म) अर्थात विधान या, निसर्ग-नियम कहा। मत-मतांतर अथवा निरर्थक चिंतन में उनकी कोई रुचि नहीं थी। इसकी बजाय उन्होंने एक सार्वभौमिक समस्या, दुःख की समस्या का सार्वभौमिक, व्यावहारिक समाधान प्रस्तुत किया। उन्होंने कहा-- ''पहले की तरह ही अब मैं केवल दुःख और दुःख-मुक्ति की शिक्षा देता हूं।''[१] उन्होंने किसी भी ऐसी चर्चा करने से इनकार कर दिया जो दुःख-मुक्ति की ओर न ले जाती हो।

उन्होंने जोर देकर कहा कि यह विद्या केवल उन्होंने ही नहीं खोजी और न ही यह कोई ईश्वरीय देन है। यह मात्र सत्य था, वास्तविकता थी जिसे वे अपने प्रयास से खोज निकालने में सफल हुए थे जैसा कि उनके पहले अनेक लोगों ने ऐसा किया था और उनके बाद भी अनेक लोग ऐसा कर सकते हैं। उन्होंने सत्य पर अपने एकाधिकार (मोनोपॉली) monopoly का दावा नहीं किया। जो यह खोज करे वही सम्यक संबुद्ध कहलाता है।

उन्होंने कभी अपनी शिक्षा के प्रति आस्था और उसकी तार्किक प्रकृति के कारण किसी विशेषाधिकार का आग्रह नहीं किया। इसके विपरीत उन्होंने कहा कि जो अनुभवातीत है, उस पर शंका उठाना और उसकी परीक्षा करना सर्वथा उचित है।

> तुम किसी बात को केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह बात अनुश्रुत है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह बात परंपरागत है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह बात इसी प्रकार कही गई है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह हमारे धर्म-ग्रंथ के अनुकूल है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह तर्कसम्मत है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि यह अनुमान-सम्मत है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि इसके कारणों की सावधानीपूर्वक परीक्षा कर ली गयी है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि इस पर हमने विचार कर इसका अनुमोदन किया है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि कहने वाले का व्यक्तित्व भव्य (आकर्षक) है, केवल इसलिए मत स्वीकार करो कि कहने वाला श्रमण हमारा पूज्य है। जब तुम स्वानुभव से अपने आप ही यह जानो कि ये बातें अकुशल हैं, ये बातें सदोष हैं, ये बातें विज्ञ पुरुषों

> द्वारा निंदित हैं, इन बातों के अनुसार चलने से अहित होता है, दु:ख होता है तब उन बातों को छोड़ दो– और जब तुम स्वानुभव से अपने आप ही यह जानो कि ये बातें कुशल हैं, ये बातें अनिंद्य हैं, ये बातें विज्ञ पुरुषों द्वारा प्रशंसित हैं, इन बातों के अनुसार चलने से हित होता है, सुख होता है तब उन बातों को अपनाओ और उनका अभ्यास करो।[२]

स्वानुभव ही सत्य का सबसे बड़ा प्रमाण है। केवल विश्वास के आधार पर कुछ भी स्वीकार नहीं किया जाना चाहिए। हमें परीक्षा कर यह देखना चाहिए कि यह तर्कसंगत, व्यावहारिक तथा उपादेय है अथवा नहीं। ऐसा भी नहीं कि अपने विवेक से इसकी परीक्षा करने पर इसे बुद्धि के आधार पर स्वीकार करना पर्याप्त होगा। यदि हमें सत्य से लाभ उठाना है तो हमें इसका प्रत्यक्ष अनुभव करना होगा। तभी हम जान सकते हैं कि यह यथार्थ सत्य है। बुद्ध ने हमेशा इस बात पर जोर दिया कि वह उसी बात की शिक्षा देते हैं जिसका उन्होंने प्रत्यक्ष अनुभव किया है। उन्होंने दूसरों को भी इस प्रकार का अनुभव स्वयं प्राप्त करने तथा स्वयं प्रमाण बनने के लिए प्रेरित किया।

"तुममें से प्रत्येक अपना द्वीप बनो, अपनी शरण बनो, अन्य कोई शरण नहीं । सत्य (धर्म)को अपना द्वीप बनाओ, सत्य की शरण में जाओ, सत्य के अतिरिक्त कोई और शरण नहीं।"[३]

सत्य, धम्म, तथा निसर्ग के नियम जो व्यक्ति द्वारा अनुभूत तथा सत्यापित हैं यही जीवन में वास्तविक ठोस भूमि हैं जिन पर खड़े हो सकते हैं। केवल सत्य ही एकमात्र प्रमाण है जो हमें जीवन में सही-सही मार्गदर्शन तथा सुरक्षा दे सकता है । इसलिए बुद्ध ने अपनी शिक्षा में सत्य की प्रत्यक्ष अनुभूति को सदा ही महत्त्व प्रदान किया। उन्होंने जो कुछ अनुभव किया था, उसे जितना संभव था, स्पष्टता के साथ समझाया जिससे कि दूसरों को उनकी सत्यानुभूति के लिए मार्गदर्शन मिल सके। उन्होंने कहा-- "जो शिक्षा मैंने दी है, वह बाहर तथा भीतर से अलग-अलग नहीं है। यहां आचार्यमुष्टि नहीं है।"[४] कुछ चुने हुए लोगों के लिए उनके पास कोई गुप्त बात नहीं थी। इसके विपरीत उन्होंने निसर्ग-नियम को अत्यंत सरल भाषा में समझाया जिससे कि यथासंभव अधिक-से-अधिक लोग उससे लाभ उठा सकें।

भगवान की रुचि न कोई संप्रदाय स्थापित करने में थी और न ही अपनी व्यक्तिगत पूजा करवाने में। उनकी मान्यता थी कि गुरु का महत्त्व उसकी शिक्षा से है न कि व्यक्तित्व से। उनका उद्देश्य था कि लोग शिक्षा को धारण करके, दु:खों से मुक्त हों, न कि किसी के अंधभक्त बनें। उनके प्रति अत्यधिक श्रद्धा भाव रखने वाले एक अनुयायी से उन्होंने कहा, "तुम्हें इस शरीर को देखने से

क्या मिलता है? यह तो नाशवान है। जो धम्म को देखता है, वह मुझे देखता है। जो मुझे देखता है, वह धम्म को देखता है।''[५]

किसी बड़े-से-बड़े संत के प्रति श्रद्धा ही व्यक्ति की मुक्ति के लिए पर्याप्त नहीं है। सत्य के प्रत्यक्ष अनुभव के बिना मोक्ष अथवा निर्वाण नहीं मिल सकता। अतः सत्य ही प्रमुख है, सत्य बोलने वाले व्यक्ति की नहीं। सत्य की शिक्षा देने वाला सम्माननीय है, परंतु आदर प्रदर्शित करने का सबसे अच्छा तरीका उस सत्य का स्वयं अनुभव करना है। जीवन के अंतिम दिनों में उनके प्रति पूजा भाव वंदन प्रकट करने पर उन्होंने कहा-- ''सम्यक संबुद्ध के प्रति आदर अथवा सम्मान-श्रद्धा अथवा पूजा-उपासना का यथोचित तरीका यह नहीं है। बल्कि कोई भिक्षु या भिक्षुणी उपासक या उपासिका जो दृढ़तापूर्वक धम्म के पहले चरण से अंतिम लक्ष्य तक सम्यक तरीके से चलकर पहुँचता है, जो सम्यकरूप से धम्म का अभ्यास करता है, वही सही तरीके से बुद्ध का आदर, सम्मान, पूजा तथा उपासना करता है।''[६]

बुद्ध की शिक्षा ऐसी थी जिसका पालन हर आदमी कर सकता है। उन्होंने इसे आर्य अष्टांगिक मार्ग कहा है यह इस अर्थ में आर्य है कि कोई भी व्यक्ति जो इस मार्ग पर चलता है, वह दुःखों से मुक्त, संत पुरुष बन जाता है।

यह प्रकृति के स्वभाव का, सत्यानुभूति का मार्ग है। अपनी समस्याओं को सुलझाने के लिए हमें अपनी यथाभूत स्थिति को देखना है। हमें सत्य के सतही, प्रकट, भासमान स्वरूप को पहचानना सीखना चाहिए और फिर इस प्रकट भासमान सत्य को बेधकर अधिक सूक्ष्मतर सत्य का, परम-सत्य का अनुभव करना चाहिए। तत्पश्चात दुःख-मुक्ति के सत्य का अनुभव करना चाहिए। इस मुक्ति की सच्चाई को हम कोई भी नाम दें– निर्वाण, स्वर्ग या कुछ और, यह महत्त्वहीन है; महत्त्वपूर्ण है इसकी अनुभूति।

सत्य की प्रत्यक्ष अनुभूति का एकमात्र मार्ग है अपने अंदर देखना, अपने आपको देखना। जीवनभर हम बहिर्मुखी रहने के अभ्यस्त रहे हैं, इस बात में रुचि रखते रहे हैं कि बाहर क्या हो रहा है, दूसरे क्या कर रहे हैं। अगर हमने मुश्किल से कभी अपने आपको देखा भी है तो केवल बाहरी स्वरूप को, अपनी मानसिक शारीरिक संरचना (नाम-रूप संघात), अपने कर्मों तथा अपने स्वयं के यथार्थ को देखने का प्रयत्न ही नहीं किया। अतः हम अपने से अपरिचित बने रहते हैं। हम यह अनुभव नहीं करते कि हमारी यह अविद्या कितनी नुकसानदेह है। अपने अंदर की कमजोरियों के हम कितने बड़े गुलाम बने रहते हैं, इसका हमें पता नहीं रहता।

सत्य को जानने के लिए इस आंतरिक अंधकार को दूर करना बहुत ही आवश्यक है। अपने अस्तित्व की प्रकृति को समझने के लिए हमें अपनी प्रकृति का ज्ञान प्राप्त करना ही चाहिए। इसलिए बुद्ध ने जिस मार्ग को दिखाया वह मार्ग आत्मनिरीक्षण, आत्म-दर्शन का है। उन्होंने कहा – "इस साढ़े तीन हाथ की काया में जहां प्रत्यक्ष ज्ञान के साथ चित्त अवस्थित है मैं इसमें लोक, उसका समुदय, निरोध और निरोध के मार्ग की बात बताता हूं।"[७] सम्पूर्ण लोक और निसर्ग के नियम जिनके अधीन ये क्रियाशील हैं, इन सबकी अनुभूति अपने अंदर ही की जा सकती है। उनका अनुभव अपने भीतर ही किया जा सकता है।

यह मार्ग विशुद्धि का मार्ग भी है। हम अपने बारे में सत्य की खोज निरर्थक बौद्धिक जिज्ञासा के कारणवश न करके एक निश्चित प्रयोजन से करते हैं। अपना निरीक्षण करके हमें पहली बार उन प्रतीत्यसमुत्पन्न प्रतिक्रियाओं, पूर्वाग्रहों की जानकारी होती है जो हमारी मानसिक दृष्टि को आच्छादित करते हैं, जो हमसे सत्य को छिपाते हैं और दुःख की उत्पत्ति करते हैं। हम अपने संचित आंतरिक तनावों को जानते हैं जो हमें अशांत तथा दुःखी बनाए रखते हैं और हम यह समझ जाते हैं कि उन्हें दूर किया जा सकता है। हम क्रमशः उन्हें विघटित करना सीख जाते हैं और फिर हमारा चित्त शुद्ध, शांत और सुखी हो जाता है।

यह ऐसा मार्ग है जिस पर लगातार अभ्यास करने की आवश्यकता होती है। सहसा फल की प्राप्ति हो सकती है लेकिन वह भी सतत अभ्यास के कारण ही हो सकती है। कदम-दर-कदम अभ्यास जरूरी है, तथापि हर कदम पर तुरंत लाभ मिलता है। हम इस मार्ग का अनुसरण इसलिए नहीं करते हैं कि इस पर चलकर प्राप्त लाभ की अनुभूति केवल भविष्य में अथवा मृत्यु के पश्चात कभी स्वर्ग में करेंगे, जिसकी सत्ता का हम यहां केवल अनुमान लगाते हैं। वे लाभ सांदृष्टिक, ठोस, सुस्पष्ट, वैयक्तिक तथा इसी जीवन में होने चाहिए।

सर्वोपरि बात यह है कि यह शिक्षा धारण करने के लिए है। बुद्ध अथवा उनकी शिक्षा में आस्थामात्र से दुःखों से छुटकारा नहीं मिल सकता है और न तो इस मार्ग के केवल बौद्धिक ज्ञान से यह संभव है। इन दोनों का मूल्य केवल तभी है जब कि वे शिक्षा को अभ्यास में लाने के लिए हमें प्रेरित करें । बुद्ध की शिक्षा का यथानुरूप अभ्यास ही ठोस परिणाम देगा और जीवन में सुखद, मंगलकारी परिवर्तन लायगा। बुद्ध ने कहाः---

> कोई व्यक्ति ग्रंथों में से बहुतों का पाठ करे परंतु यदि वह इनका अभ्यास नहीं करे तो वह प्रमादी व्यक्ति, एक ऐसे चरवाहे के समान है जो केवल दूसरों

> की गायें गिनता है। वह एक सत्यान्वेषी के जीवन के लाभ को कभी प्राप्त नहीं करता।
>
> दूसरा व्यक्ति ग्रंथों के कुछ शब्दों का ही पाठ करने की योग्यता रखता है परंतु यदि वह धर्म का जीवन जीता है, धर्मपथ पर आरूढ़ होकर कदम-कदम चलकर अंतिम लक्ष्य तक पहुँचता है, तब वह एक सत्यान्वेषी के जीवन के लाभ का आनंद भोगता है।[८]

मार्ग का अनुसरण आवश्यक है, शिक्षा को धारण करना जरूरी है अन्यथा यह एक बेकार की कवायद है, मात्र बुद्धिविलास है।

इस विद्या का अभ्यास करने के लिए अपने को बौद्ध कहना आवश्यक नहीं; ठप्पा लगाना बेमाने है। दु:ख कोई भेदभाव नहीं करता। यह सबके लिए समान है, इसलिए इसका समाधान भी सबके लिए समान रूप से उपयोगी होना चाहिए। यह अभ्यास केवल संन्यासियों के लिए सुरक्षित नहीं है जिन्होंने अपने सामान्य जीवन को त्याग दिया है। निश्चय ही इसके लिए कुछ समय दिया जाना चाहिए जिसमें एकांतिक रूप से व्यक्ति को इसका अभ्यास सीखने के लिए अपने को समर्पित किया जा सके। ऐसा कर लेने पर इस विद्या का उपयोग दैनिक जीवन में अनिवार्यतः किया जाना चाहिए। इस मार्ग के अनुसरण हेतु जो व्यक्ति अपना गृहत्याग करता है, उसके पास इसके गहन अभ्यास का अधिक अवसर होता है जिससे कि वह इस शिक्षा को अधिक गहराई से रचा-पचा लेता है और अधिक जल्द आगे बढ़ता है। दूसरी ओर सांसारिक जीवन में फँसे हुए व्यक्ति अन्य अनेक प्रकार की जिम्मेदारियों को निभाते हुए इस शिक्षा के लिए केवल सीमित समय दे सकते हैं। लेकिन चाहे गृही हो अथवा गृहत्यागी संन्यासी, धर्म-पालन आवश्यक है।

केवल धर्म-धारण ही परिणाम देता है। अगर यह सचमुच दु:ख से सुख-शांति का मार्ग है, तब हम अभ्यास के साथ जैसे-जैसे आगे बढ़ते हैं, हमें अपने दैनिक जीवन में अधिक सुखी, अधिक शांत और अधिक सामंजस्यपूर्ण होना चाहिए। साथ ही दूसरों के साथ हमारा संबंध अधिक शांत तथा सामंजस्यपूर्ण होना चाहिए। समाज में व्याप्त तनाव को बढ़ाने की बजाय हमें सकारात्मक योगदान करना चाहिए जो सबके सुख और कल्याण में वृद्धि करता हो। धर्म का अनुसरण करने का अर्थ है हमें अनिवार्यतः धर्म, सत्य और शुद्धता का जीवन जीना चाहिए। शिक्षा के पालन का यही सम्यक तरीका है, धर्म का सम्यक पालन ही जीवन जीने की कला है।

प्रश्नोत्तर

प्रश्न – आप बुद्ध का उल्लेख करते रहते हैं, क्या आप बौद्धवाद की शिक्षा दे रहे हैं?

स. ना. गोयन्का – मेरा किसी वाद से संबंध नहीं। मैं धर्म की शिक्षा देता हूं अर्थात वह शिक्षा जिसे बुद्ध ने सिखाया। उन्होंने कभी किसी वाद की शिक्षा नहीं दी और न सांप्रदायिकता की बात की। उन्होंने जीवन यापन की कला सिखायी जिससे भिन्न-भिन्न पृष्ठभूमि के लोग लाभ उठा सकते हैं। अविद्या में रहना हर एक के लिए हानिकारक है । प्रज्ञा का विकास हर एक के लिए अच्छा है। अतः कोई भी इस विद्या का अभ्यास करके लाभ उठा सकता है। एक ईसाई अच्छा ईसाई बनेगा, एक यहूदी अच्छा यहूदी बनेगा, एक मुसलमान अच्छा मुसलमान बनेगा, एक हिंदू अच्छा हिंदू बनेगा, एक बौद्ध अच्छा बौद्ध बनेगा। हमें एक अच्छा मनुष्य बनना चाहिए अन्यथा कोई अच्छा ईसाई, अच्छा यहूदी, अच्छा मुसलमान, अच्छा हिंदू, अच्छा बौद्ध कभी नहीं बन सकेगा। हम कैसे एक अच्छा मनुष्य बनें यह सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है।

आप लेप लगने की बात करते हैं। क्या यह साधना भी एक प्रकार से चित्त पर लेप लगाना नहीं है भले ही वह सकारात्मक हो?

नहीं, इसके विपरीत यह एक लेप उतारने की प्रक्रिया है। चित्त पर कोई चीज थोपने की बजाय, यह उसके दोषों को स्वतः दूर करती है जिससे शुभ और सकारात्मक गुण शेष रह जाते हैं। नकारात्मकता को दूर करके यह सकारात्मकता को उद्‌घाटित करती है जो निर्मलचित्त की मूल प्रकृति है।

लेकिन बहुत देर तक एक विशेष आसन में बैठना और मन को पूर्व निर्धारित काम में लगाना क्या एक प्रकार का लेपन नहीं है?

यदि इसे एक खेल अथवा यांत्रिक क्रिया के रूप में करते हैं, तब आप अवश्य चित्त पर लेप लगाने का काम करते हैं। लेकिन ऐसा करना विपश्यना का दुरुपयोग है। जब इसे ठीक-ठीक किया जाय तब यह आपको अनुभव के धरातल पर सत्य को दर्शन करने योग्य बनाती है और इस अनुभव से एक समझदारी का विकास होता है जो पहले के सारे लेपों को नष्ट कर देती है।

दुनिया को भूल जाना और दिनभर बैठकर साधना करना क्या स्वार्थ नहीं है?

स्वार्थ होगा यदि यह साध्य होगा, यहां तो लक्ष्य प्राप्ति के लिए यह एक साधन है, जिसमें जरा भी स्वार्थ नहीं है। यह तो चित्त को स्वस्थ बनाने के लिए किया जाता है । जब आप बीमार पड़ते हैं तब स्वास्थ्य लाभ के लिए अस्पताल जाते हैं। वहां आप जीवन भर के लिए नहीं जाते, सिर्फ स्वास्थ्य लाभ के लिए जाते हैं। स्वास्थ्य लाभ करके आप इसका उपयोग दैनंदिन जीवन में करेंगे। इसी तरह आप ध्यान शिविर में मानसिक स्वास्थ्य लाभ के लिए आते हैं । स्वास्थ्य लाभकर आप दैनंदिन जीवन में इसका उपयोग अपने कल्याण तथा दूसरों के कल्याण में करेंगे।

दूसरे के दुःखों को देखकर शांत और सुखी रहना क्या निरी हृदयहीनता या असंवेदनशीलता नहीं है?

दूसरों के दुःखों को देखकर संवेदनशील होने का अर्थ स्वयं उदास होना नहीं है। इसकी बजाय आपको शांत और संतुलित होना चाहिए ताकि आप उनके दुःखों को दूर करने का काम कर सकें। अगर आप भी दुःखी हो जायेंगे तो आप अपने आस-पास में दुःख-ही-दुःख पैदा करेंगे। इस तरह आप न तो दूसरों की सहायता करते हैं और न अपनी सहायता करते हैं।

हम लोग शांत अवस्था में क्यों नहीं रहते?

क्योंकि हममें प्रज्ञा का अभाव है। प्रज्ञा के बिना जीवन एक भ्रम है, यह अशांति तथा दुःख का जीवन है। हमारा पहला दायित्व है अपने तथा दूसरों के लिए स्वस्थ तथा सामंजस्यपूर्ण जीवन जीना। ऐसा करने के लिए हमें अपनी बुद्धि का प्रयोग आत्म दर्शन तथा सत्य दर्शन करने के लिए सीखना होगा।

इस विधि को सीखने के लिए दस-दिवसीय शिविर करना क्यों आवश्यक है?

अगर इससे अधिक दिनों के लिए आ सकें तो और अच्छा होगा। लेकिन दस दिन तो इस साधना विधि को, इसकी रूपरेखा को समझने के लिए कम से कम चाहिए ही।

हमें दस दिनों तक शिविर परिसर में ही क्यों रहना चाहिए?

क्योंकि आप यहां अपने चित्त के ऑपरेशन के लिए आते हैं, ऑपरेशन किसी अस्पताल में ही होना चाहिए जहां का ऑपरेशन थियेटर संक्रमण मुक्त हो। यहां शिविर परिसर में बिना किसी बाहरी विघ्न-बाधा के आप ऑपरेशन कर सकते हैं। शिविर की समाप्ति पर ऑपरेशन भी समाप्त हो जाता है, तब आप दुबारा संसार से अभिमुख होने के लिए तैयार हो जाते हैं।

क्या यह विद्या शरीरिक उपचार भी करती है?

हां, उपफल रूप से। जब मानसिक तनाव दूर हो जाता है, तब अनेक मानस जनित रोग भी स्वभावतः दूर हो जाते हैं। यदि चित्त अशांत है तो शारीरिक रोग होंगे ही। जब चित्त शुद्ध और शांत होता है तब स्वभावतः वे नष्ट हो जाते हैं। परंतु यदि आप चित्त शुद्धि की बजाय शारीरिक रोग को दूर करना अपना उद्देश्य बना लेते हैं तब आपको न तो यह हासिल होता है और न वह। मैंने देखा है कि जो लोग किसी शारीरिक रोग के उपचार के लिए शिविर में बैठते हैं, उनका ध्यान पूरे शिविरकाल में "आज क्या यह ठीक है? नहीं, ठीक नहीं है' क्या आज, इसमें सुधार है? 'नहीं, सुधार नहीं है" इन्हीं बातों पर लगा रहता है । पूरे दस दिन वे इस प्रकार नष्ट कर देते हैं । परंतु यदि इरादा केवल मन की शुद्धि पर रहता है तब ध्यान के फलस्वरूप अनेक रोग स्वतः दूर हो जाते हैं।

आपके अनुसार जीवन का उद्देश्य क्या है?

दुःख से छुटकारा पाना। एक मनुष्य में अपने अंदर गहराई तक जाने, सत्य का साक्षात्कार करने और दुःख से बाहर आने की अद्भुत क्षमता है। इस क्षमता का उपयोग न करना अपने जीवन का दुरुपयोग करना है। सचमुच स्वस्थ, सुखी जीवन के लिए इसका उपयोग करें।

आपने नकारात्मकता से अभिभूत होने की बात कही। सकारात्मकता, जैसे कि प्रेम से अभिभूत होना कैसा रहेगा?

जिसे आप सकारात्मक कहते हैं, वह चित्त की वास्तविक प्रकृति है। जब चित्त अनुबंधन-मुक्त होता है, तब यह सदा प्रेम, शुद्ध प्रेम से परिपूर्ण होता है और आप शांत-सुखी अनुभव करते हैं। यदि आप नकारात्मकता को दूर कर देते हैं, तब सकारात्मकता, शुद्धता ही शेष रहती है। सारा संसार इस सकारात्मकता से परिपूर्ण हो।

मार्ग पर चलना

उत्तर भारत के श्रावस्ती नगर में बुद्ध का एक बहुत विशाल विहार था जहां लोग आकर ध्यान करते और उनकी धर्म देशना सुनते। हर शाम एक युवक उनके प्रवचन सुनने आता। सालों तक वह बुद्ध की वाणी सुनने के लिए आया लेकिन उसने उनके किसी उपदेश का पालन नहीं किया।

कुछ वर्षों बाद, एक शाम वह कुछ पहले आ गया और बुद्ध को अकेला पाकर उनके पास पहुँचा और बोला, "भंते, मेरा एक प्रश्न है जो मेरे मन में बार-बार उठता है और शंका उत्पन्न करता है।"

''ओह! धर्म के रास्ते पर कोई शंका नहीं होनी चाहिए, उसका स्पष्टीकरण कर लो, बताओ क्या प्रश्न है तुम्हारा?''

''भंते, मुझे आपके ध्यान केंद्र आते बहुत वर्ष हो गये । मैं बड़ी संख्या में आपके पास संन्यासियों, भिक्षुओं, भिक्षुणियों और उससे भी बड़ी संख्या में स्त्री-पुरुष गृही लोगों को देखता हूं। वर्षों से वे आपके पास आ रहे हैं। मैं देखता हूं कि उनमें से कुछ निश्चित रूप से अंतिम लक्ष्य पर पहुँच गए हैं, बिल्कुल साफ तौर पर वे पूर्ण मुक्त हो गए हैं। मैं यह भी देख सकता हूं कि कुछ अन्य लोग अपने जीवन में कुछ परिवर्तन का अनुभव कर रहे हैं। पहले की अपेक्षा उनमें सुधार हैं, यद्यपि मैं यह नहीं कह सकता कि वे पूर्ण मुक्त हैं। लोकिन भंते, मैं यह भी देखता हूं कि एक बड़ी संख्या में लोग, जिनमें मैं भी एक हूं वैसे के वैसे ही हैं, कभी-कभी तो वे और गये गुजरे लगते हैं। वे बिल्कुल ही नहीं बदले हैं अथवा उनमें कोई सुधार दिखाई नहीं देता है।

"भंते, ऐसा क्यों? आप जैसे महान पुरुष, सम्यक संबुद्ध इतने शक्तिशाली, महाकारुणिक के पास लोग आते हैं। आप अपनी शक्ति और करुणा का उपयोग कर उन सबको तार क्यों नहीं देते?''

बुद्ध मुस्कराए और उन्होंने पूछा, ''नवयुवक, तुम कहां के रहने वाले हो ? तुम्हारी मातृभूमि कहां है?''

''भंते, मैं यहीं श्रावस्ती में रहता हूं, कोशल राज्य की राजधानी में रहता हूं।''

“हां ठीक है, लेकिन तुम्हारी मुखाकृति बता रही है कि तुम देश के इस भाग के रहने वाले नहीं हो। तुम मूलतः कहां के हो?”

“भंते, मैं मगध राज्य की राजधानी राजगृह का रहने वाला हूं। कुछ साल पहले यहां श्रावस्ती में आकर बस गया।”

“और राजगृह से तुमने सारा संबंध तोड़ लिया है?”

“नहीं, भंते! अब भी मेरे संबंधी वहां हैं, मित्र वहां हैं, मेरा व्यापार वहां है।”

“तो निश्चित रूप से तुम बहुधा श्रावस्ती से राजगृह जाते रहते होगे?”

“हां, भंते! साल में कई बार राजगृह जाता हूं और श्रावस्ती लौट आता हूं।”

“इतनी बार यहां से राजगीर की यात्रा करते और वहां से लौटते हुए तुम्हें इस राह की अच्छी जानकारी हो गई होगी?”

“हां, भंते, मैं पूरी तरह इसे जानता हूं, मैं यह कह सकता हूं कि यदि मेरी आंखों पर पट्टी बांध दी जाय तो भी मैं राजगृह ले जाने वाले रास्ते का पता लगा सकता हूं । मैं उस पर कितनी बार चला हूं।”

“और तुम्हारे मित्र जो तुम्हें अच्छी तरह जानते हैं, वे निश्चित रूप से यह जानते ही हैं कि तुम राजगृह से आकर यहां बस गए हो? वे यह भी जानते होंगे कि तुम अक्सर राजगृह आते-जाते रहते हो और तुम यहां से राजगृह का रास्ता पूरी तरह जानते हो?”

“हां, भंते, जो मेरे निकट के हैं, जानते हैं कि मैं अक्सर राजगृह जाता हूं और वहां का रास्ता पूरी तरह जानता हूं।”

“तब, यह भी होता होगा कि उनमें से कुछ तुम्हारे पास आते होंगे और तुमसे राजगृह का रास्ता पूछते होंगे। तब तुम कुछ छिपाते हो या सब कुछ साफ-साफ समझाकर बता देते हो ?”

“भंते! इसमें छिपाने को क्या है? मैं जितना हो सकता है उन्हें साफ-साफ समझाकर बता देता हूं। तुम यहां से पूर्व की ओर चलो, फिर बनारस की ओर चलो, फिर आगे चलते रहो जब तक कि गया न आ जाय और फिर राजगृह पहुँच जाओ। मैं बहुत साफ-साफ इसे समझा देता हूं।”

“और जिन लोगों को तुम इतना साफ-साफ समझाते हो, वे सभी राजगृह पहुँच जाते हैं?”

“यह कैसे हो सकता है? भंते! जो पूरा रास्ता, अंत तक चलते हैं, केवल वे ही राजगृह पहुँचेंगे।”

''यही तो मैं तुम्हें समझाना चाहता हूं, नवयुवक! लोग मेरे पास आते रहते हैं, यह जानकर कि यह ऐसा व्यक्ति है जो यहां से निर्वाण के रास्ते पर चला है इसलिए इस रास्ते को अच्छी तरह जानता है। वे मेरे पास आते हैं और पूछते हैं: – 'निब्बान, यानी मुक्ति का क्या मार्ग है?' इसमें छिपाने को क्या है? मैं साफ-साफ उन्हें बता देता हूं, 'यह मार्ग है'। यदि कोई सिर्फ अपना सिर झुकाकर बोलता है साधु! साधु! साधु! बहुत सुंदर मार्ग, लेकिन मैं इस पर एक कदम भी नहीं चलूंगा। एक अद्भुत पथ, लेकिन मैं इस पर चलने की जहमत नहीं उठा सकता।' तब फिर ऐसा आदमी अपनी आखिरी मंजिल तक कैसे पहुँच सकता है?

''अंतिम लक्ष्य पर पहुँचाने के लिए मैं किसी को अपने कंधे पर नहीं ढोता हूं। कोई भी किसी दूसरे को अपने कंधे पर ढोकर अंतिम लक्ष्य तक नहीं पहुँचा सकता। ज्यादा-से-ज्यादा कोई प्रेम और करुणा के साथ यह कह सकता है कि यह मार्ग है और इस प्रकार मैं इस पर चला हूं। तुम भी काम करो, तुम भी चलो, तुम अंतिम लक्ष्य पर पहुँचोगे। पर हर व्यक्ति को स्वयं अपने आप चलना है मार्ग पर, हर कदम अपने आप उठाना है। जो रास्ते पर एक कदम चला है, वह अपने लक्ष्य के एक कदम नजदीक पहुँच गया। जो सौ कदम चला, वह लक्ष्य के सौ कदम नजदीक पहुँच गया। जो पूरा रास्ता चला वह अंतिम लक्ष्य पर पहुँच गया। तुम्हें अपने आप मार्ग पर चलना है।''[९]

अध्याय २

आरंभ बिंदु (प्रस्थान बिंदु)

दु:ख का स्रोत हम सबके अंदर है। जब हम अपना स्वयं का यथार्थ समझ जायेंगे, तब दु:ख की समस्या का समाधान जान जायेंगे। 'अपने आप को जानो'-- सभी ज्ञानी पुरुषों ने कहा है। स्वयं की प्रकृति जानकर हमें शुरुआत करनी चाहिए। अन्यथा हम अपनी अथवा संसार की समस्याओं का समाधान कभी नहीं कर सकते हैं।

परंतु वास्तव में हम अपने बारे में क्या जानते हैं? हममें से प्रत्येक अपने महत्त्व का, अपने अनोखेपन का कायल है। लेकिन अपने बारे में हमारा ज्ञान सतही है। अधिक गहरे स्तर पर हम अपने को बिल्कुल नहीं जानते हैं।

बुद्ध ने अपनी प्रकृति की गवेषणा कर मानव प्राणी के प्रपंच की खोज की। पूर्व की सारी धारणाओं को एक ओर रखकर उन्होंने अपने अंदर सत्य की खोज की और अनुभव किया कि प्रत्येक प्राणी पांच तत्वों का समुच्चय है, जिनमें चार मानसिक (नाम) और एक शारीरिक (रूप) है।

रूप

हम भौतिक पक्ष से शुरू करें। यह सभी इंद्रियों द्वारा तुरंत जाना जाने वाला हमारा सर्वाधिक भासमान तथा स्पष्ट अंश है। फिर भी हम सचमुच इसके बारे में कितना कम जानते हैं! ऊपरी तौर पर हम अपने शरीर को नियंत्रित कर सकते हैं। चेतन इच्छा के अनुसार यह चलता है और काम करता है। लेकिन दूसरे स्तर पर देखें तो पायेंगे कि सभी आंतरिक इंद्रियां हमारे नियंत्रण में नहीं हैं और वे बिना हमारी जानकारी के काम करती रहती हैं। अधिक सूक्ष्मतर स्तर पर अनुभूति के रूप में हम अनवरत क्रियाशील अपने शरीर की प्रत्येक कोशिका की जीवरासायनिक प्रक्रियाओं के बारे में कुछ नहीं जानते। फिर भी भौतिक प्रपंच का यह अंतिम सत्य नहीं है। अंततः देखने में ठोस लगने वाला यह शरीर ऐसे नन्हें-नन्हें कणों से बना है जिनके बीच पोल ही पोल है। इतना ही नहीं, इन सूक्ष्म कलापों का भी कोई अस्तित्व नहीं हैं, उनमें से एक की अस्तित्व– अवधि सेकण्ड के एक खरब करोड़ (दस शंख) भाग से भी कम है। कणों का भी कंपनों के प्रवाह की तरह निरंतर उदय-व्यय होता रहता है, उत्पन्न होना तथा नष्ट होना होता

रहता है। शरीर तथा अन्य सभी पदार्थों का यही परमार्थ सत्य है जिसकी खोज आज से २,५०० वर्ष पहले बुद्ध ने की थी।

अपने स्वयं की खोजों द्वारा आधुनिक वैज्ञानिकों ने भौतिक जगत के इस परम सत्य को पहचाना और स्वीकार किया है। फिर भी ये वैज्ञानिक न तो मुक्त हुए और न बुद्धत्व को प्राप्त किया। जिज्ञासा के कारण उन्होंने इस जगत के स्वरूप की अपनी बुद्धि का प्रयोग कर और उपकरणों के जरिए खोज की। इसके विपरीत बुद्ध का प्रयोजन केवल जिज्ञासा नहीं अपितु दुःख से बाहर निकलने के लिए एक मार्ग खोजने का था । उन्होंने अपने मन के अतिरिक्त इस खोज में किसी अन्य उपकरण का प्रयोग नहीं किया। उन्होंने जिस सत्य की खोज की, वह बौद्धिक चिंतन का परिणाम नहीं था अपितु उनके प्रत्यक्ष अनुभव का परिणाम था और इसी कारण वे मुक्त हुए।

उन्होंने पाया कि सारा भौतिक जगत ऐसे कलापों से बना है जिनमें आठ इकाइयां जुड़ी ही रहती हैं, इसलिए इन्हें पालि भाषा में 'कलाप' अथवा "अविभाज्य इकाई" कहा। ये इकाइयां हैं– चार महाभूत– अग्नि, जल, पृथ्वी और वायु तथा वर्ण, गंध, रस और ओज। वे मिलकर संरचनाओं का निर्माण करते हैं जिनमें स्थायित्व प्रतीत होता है। परंतु वे वास्तव में नन्हें-नन्हें कलापों के द्वारा बने हैं जो निरंतर उदय-व्यय होते रहते हैं। यह पदार्थ का परमार्थ सत्य है– तरंगों अथवा अणुओं का अनवरत प्रवाह। यही शरीर है जिसे हम सभी 'अपना' कहते हैं।

नाम (चित्त-मन)

शारीरिक प्रक्रिया के साथ-साथ मानसिक प्रक्रि या है जिसे मन या चित्त कहते हैं। यद्यपि इसका न तो स्पर्श किया जा सकता और न इसे देखा जा सकता है परंतु ऐसा लगता है कि यह शरीर की अपेक्षा हमारे साथ अधिक घनिष्ठ रूप से जुड़ा है। हम इस शरीर के बिना अपनी भावी सत्ता की तस्वीर खींच सकते हैं परंतु हम मन के बिना ऐसी किसी सत्ता की कल्पना नहीं कर सकते। फिर भी हम मन के बारे में कितना कम जानते हैं और इसे नियंत्रित करने की कितनी कम क्षमता हममें है। कितनी बार जो हम चाहते हैं, उसे यह नहीं करने देता और जो हम नहीं चाहते यह वही करता है। चेतन मन पर हमारा नियंत्रण काफी कम है परंतु अचेतन मन हमारी शक्ति और समझ के बिल्कुल परे लगता है । यह ऐसी प्रवृत्तियों से सराबोर है जिनका हम अनुमोदन नहीं कर सकते अथवा जिनका हमें जरा भी ज्ञान नहीं है।

बुद्ध ने शरीर के साथ मन का भी परीक्षण किया और यह पाया कि मोटे तौर पर इसके चार विभाजन हैं – विज्ञान, संज्ञा, संवेदना (वेदना) और प्रतिक्रिया (संस्कार)।

पहली प्रक्रिया, विज्ञान है जो मन का ग्रहणशील भाग है, जो केवल घटना के घटने को जानता है चाहे वह शारीरिक हो या मानसिक। यह प्रपंच के घटित होने की सूची बनाता है बिना अच्छे बुरे का वर्गीकरण किये।

दूसरी मानसिक प्रक्रिया है संज्ञा जिससे हम पहचान करते हैं। विज्ञान द्वारा जाने गये को यह पहचानता है। यह विभाजन, पृथकीकरण करता है, चिह्नीकरण करता है और विज्ञान द्वारा प्राप्त सूचनाओं का सुखद या दुखद में मूल्यांकन करता है।

चित्त की तीसरी प्रक्रिया वेदना अथवा संवेदना है। असल में जैसे ही किसी विषय का स्पर्श होता है, संवेदना का उदय होता है जो इस बात का संकेतक है कि कुछ हो रहा है। जब तक कि संवेदना का मूल्यांकन नहीं होता है, वह अनिश्चित बनी रहती है। परंतु एक बार जब प्राप्त सूचना का मूल्यांकन हो गया, तब संवेदना सुखद या दु:खद हो जाती है, जो मूल्यांकन पर निर्भर करता है।

यदि संवेदना सुखद है, तो उस अनुभव को देर तक बनाए रखने और उसे अधिक तीव्र बनाने की इच्छा होती है। यदि संवेदना द:ुखद होती है तो उसे न होने देने, रोकने अथवा दूर करने की इच्छा होती है। मनचाही अथवा अनचाही के साथ मन प्रतिक्रिया करता है।[१] उदाहरणस्वरूप जब श्रवणेंद्रियां सामान्य रूप से काम करती हैं और हम कोई आवाज सुनते हैं तब संज्ञा काम करने लगती है। जब हम अच्छे अथवा बुरे मूल्यांकन के साथ किसी आवाज को शब्द के रूप में पहचानते हैं, तब पहचान की क्रिया शुरू हो जाती है। इसके पश्चात वेदना अथवा संवेदना जागती है। यदि शब्द प्रशंसा के हैं तो सुखद संवेदना जागती है। यदि वे गाली के हैं तो दु:खद संवेदना जागती है। प्रतिक्रिया तुरंत होती है। यदि संवेदना सुखद है तो हम उसे चाहने लगते हैं, प्रशंसा के और शब्द सुनना चाहते हैं। यदि संवेदना दु:खद है तो हम उसे नहीं चाहते और गाली को रोकना चाहते हैं।

जब कोई अन्य इंद्रिय अपने विषय का स्पर्श करती है तब उससे संबंधित चरण घटित होते हैं। चेतना (विज्ञान), संज्ञा, संवेदना, संस्कार। मानस की ये चार क्रियाएं भौतिक यथार्थ को संघटित करने वाले क्षणभंगुर कलापों की अपेक्षा अधिक क्षणिक हैं। प्रत्येक क्षण जब इंद्रियां किसी विषय के संसर्ग में आती हैं चारों मानसिक प्रक्रियाएं विद्युत गति के समान त्वरित घटित होती हैं और स्पर्श के प्रत्येक उत्तरवर्ती क्षण के साथ इसे दोहराते हैं। यह इतनी त्वरित गति से घटित

होती हैं कि हमें पता ही नहीं चलता कि क्या हो रहा है। जब कोई प्रतिक्रिया बार-बार दुहराई जाती है, एक लंबे समय के लिए दुहराई जाती है और वह एक सुस्पष्ट, तीव्र स्वरूप ग्रहण कर लेती है तभी इसकी जानकारी चेतना के आधार पर होती है।

मनुष्य के इस स्वभाव का सर्वाधिक चकित करने वाला पक्ष यह नहीं है कि इसमें क्या है बल्कि यह कि इसमें क्या नहीं है। हम चाहे पश्चिम के रहने वाले हों अथवा पूरब के; ईसाई, यहूदी, मुसलमान, हिंदू, बौद्ध; नास्तिक हों अथवा अन्य कुछ, हममें से हर एक का यह जन्मजात विश्वास है कि हमारे अंदर कहीं एक 'मैं' है जो निरंतर हमारी पहचान बनाये रखता है। हम एक अविचारित मान्यता पर क्रियाशील बने रहते हैं कि जो व्यक्ति दस साल पहले था वह अनिवार्यतः आज भी वही है; जो आज है, दस साल बाद तक वही रहेगा, और जो संभवतः मृत्यु के पश्चात भावी जीवन में भी रहेगा। हम किसी भी दर्शन, सिद्धांत, अथवा विश्वास को सही माने, वास्तव में हम सभी अपना जीवन इस सुदृढ़ धारणा के साथ जीते हैं कि 'मैं था, मैं हूं, मैं रहूंगा।

बुद्ध ने इस 'मैं' की अवधारणा को चुनौती दी । ऐसा करते हुए वे दूसरों के वाद को चुनौती देने के लिए एक अन्य कल्पित मत का प्रतिपादन नहीं कर रहे थे। उन्होंने बार-बार जोर दिया कि वह किसी वाद को प्रस्तुत नहीं कर रहे हैं बल्कि केवल उस सत्य का ज्ञापन कर रहे हैं, जिसका उन्होंने अनुभव किया है और जिसका अनुभव कोई भी सामान्य व्यक्ति कर सकता है। "सम्यकसंबुद्ध ने सारे वाद छोड़ दिये हैं," उन्होंने कहा, "क्योंकि उन्होंने पदार्थ की सच्चाई को, विज्ञान, संज्ञा, वेदना, संस्कार, चेतना और उनके उत्पाद-व्यय को देख लिया है।"[2] प्रकट में मनुष्य दिखते हुए भी उन्होंने पाया कि हर मनुष्य, पृथक परंतु संबद्ध प्रक्रियाओं का पुंज मात्र है। प्रत्येक कारण पूर्ववर्ती कार्य का परिणाम है जो बिना किसी अंतराल के इसका अनुगमन करता है। कार्य-कारण की अविच्छिन्न गति निरंतरता की पहचान का आभास उत्पन्न करती है परंतु यह केवल भासमान सत्य है, परमार्थ सत्य नहीं।

हम किसी नदी को कोई नाम दे सकते हैं । परंतु वास्तव में यह अपने प्रवाह में कभी न रुकने वाली जलधारा है। हम एक मोमबत्ती के प्रकाश को अविच्छिन्न सोच सकते हैं परंतु यदि हम ध्यान से देखें तो यह वास्तव में उस बत्ती से निकलने वाली एक लौ है जो एक क्षण के लिए बत्ती से निकलकर जलती है, नष्ट हो जाती है, फिर तुरंत दूसरी लौ निकलती है, नष्ट होती है, यही प्रक्रिया क्षण प्रतिक्षण होती रहती है। हम बिजली के बल्ब के प्रकाश की बात करते हैं, कभी रुककर यह

नहीं सोचते कि वास्तव में यह नदी के समान है, एक निरंतर प्रवाह। यहां लैंप का अर्थ है ऊर्जा का प्रवाह जो विद्युत उत्पादन यंत्र से अनवरत उत्पन्न होता है। प्रत्येक क्षण कुछ नया उत्पन्न होता है अतीत के उत्पाद के रूप में, जो पुराने का स्थान ले लेता है। घटनाओं का यह क्रम इतना त्वरित और अविच्छिन्न है कि उन्हें देख पाना बहुत मुश्किल है। प्रक्रिया के एक विशेष बिंदु पर कोई यह नहीं कह सकता कि अभी जो घटित हो रहा है वह पूर्ववर्ती के समान है, न तो कोई यह कह सकता है कि वह उसके समान नहीं है। फिर भी प्रक्रिया घटित होती रहती है।

इसी प्रकार बुद्ध को यह बोध हुआ कि मनुष्य एक संपूर्ण अपरिवर्तनीय इकाई नहीं है अपितु क्षण प्रतिक्षण परिवर्तनशील एक प्रक्रिया है। कोई वास्तविक 'सत्ता' नहीं है । केवल एक चलता प्रवाह, भवधारा मात्र है। निस्संदेह दैनिक जीवन में हमें एक दूसरे के साथ कमोबेश सुपरिचित व्यक्ति के रूप में व्यवहार करना चाहिए; हमें भासमान सत्य को स्वीकार करना चाहिए, नहीं तो हम काम नहीं कर सकेंगे। बाहरी सत्य एक सत्य है परंतु केवल सतही सत्य। गहन स्तर पर सत्य यही है कि संपूर्ण विश्व सजीव तथा निर्जीव, अनवरत उत्पाद-व्यय की अवस्था में है। वास्तव में हममें से प्रत्येक कलाप परमाणु की निरंतर प्रवहमान धारा है जिसके साथ विज्ञान, संज्ञा, वेदना और संस्कार की प्रक्रियायें भौतिक प्रक्रिया की अपेक्षा अधिक त्वरित गति से घटित होती रहती हैं।

यह हमारे व्यक्तित्व का परमार्थ सत्य है जिससे हम सभी को इतना लगाव है। यह घटनाओं का क्रम है जिसमें हम उलझे हैं। यदि हम प्रत्यक्ष अनुभव के द्वारा इसे ठीक-ठीक समझ सकें, हमें दुःख से बाहर निकलने का सूत्र मिल जायगा।

प्रश्नोत्तर

प्रश्न – जब आप 'मन' कहते हैं तो आपका क्या अभिप्राय है, मैं अच्छी तरह नहीं समझता । मुझे मन मिलता नहीं।

स. ना. गोयन्का – यह सर्वत्र है, प्रत्येक अणु में। जहां कहीं आप कुछ अनुभव करते हो, वहां मन है, मन ही अनुभव करता है।

तब मन का अर्थ मस्तिष्क नहीं हुआ?

नहीं, नहीं, यहां पश्चिम में आप यह सोचते हो कि मन केवल सिर में है। यह एक भ्रांत धारणा है।

क्या पूरा शरीर मन है?

हां, पूरे शरीर में मन है, पूरा शरीर मन है।

आप 'मैं' के अनुभव को सदा नकारात्मक शब्दों में बोलते हैं, क्या इसका कोई सकारात्मक पक्ष नहीं है? क्या 'मैं' का ऐसा अनुभव नहीं है जो व्यक्ति को खुशी, शांति और हर्षातिरेक से भर देता है?

ध्यान के द्वारा आप पायेंगे कि ये सभी ऐंद्रिय आनंद क्षणिक हैं, वे आते हैं फिर नष्ट हो जाते हैं। यदि यह 'मैं' सचमुच उनका आनंदभोग करता है यदि वे 'मेरे' आनंद हैं तब मेरा उन पर कुछ स्वामित्व होना चाहिए। परंतु वे बिना मेरे नियंत्रण के आते हैं और चले जाते हैं। इसमें 'मैं' क्या हुआ?

मैं ऐंद्रिय आनंद की नहीं अपितु अधिक गहरे स्तर केआनंद की बात कर रहा हूं।

उस स्तर पर 'मैं' का बिल्कुल ही कोई महत्त्व नहीं है। जब आप उस स्तर पर पहुँचते हैं, अहंकार नष्ट (भंग) हो जाता है, केवल आनंद शेष रहता है। तब 'मैं' का प्रश्न ही नहीं उठता है।

तो इसे 'मैं' की बजाय 'व्यक्ति का अनुभव' कहें।

अनुभूति अनुभव करती है, कोई अनुभव करने वाला नहीं। घटनाएं घट रही हैं, बस इतना ही। अब आपको ऐसा लगता है कि कोई अनुभव करने वाला 'मैं' होना चाहिए लेकिन यदि आप ध्यान का अभ्यास करें आप ऐसे स्तर पर पहुँचेंगे जहां अहंकार सर्वथा नष्ट हो जाता है। तब आपके प्रश्न नि:शेष हो जायेंगे।

'मैं यहां आया, क्योंकि मैं आना चाहता था।'

हां, बिल्कुल ठीक है। व्यावहारिक जीवन में हम 'मैं' और 'मेरा' से दूर नहीं भाग सकते। परंतु उनसे चिपकाव, उन्हें पारमार्थिक अर्थों में सत्य समझना केवल दु:ख ही देगा।

'मुझे संदेह है कि क्या कुछ लोग हैं जो हमें दु:ख पहुँचाते हैं?'

कोई आपको दु:ख नहीं पहुँचाते। अपने अंदर तनाव पैदा कर आप स्वयं अपना दु:ख पैदा करते हैं। यदि आप 'ऐसा नहीं' करना सीख जायँ तो हर स्थिति में शांत और सुखी होना आपके लिए आसान हो जायगा।

जब कोई और हमें हानि पहुँचा रहा हो तो क्या करना चाहिए?

बलपूर्वक रोकना चाहिए। लोगों को हानि नहीं पहुँचाने देना चाहिए। जब कभी कोई किसी प्रकार की हानि करता है तब वह दूसरों की ही हानि नहीं करता बल्कि, साथ-साथ अपनी भी हानि करता है। यदि आप उसे हानि करने देते हैं तो आप उसे हानि करने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। आपको उसे रोकने के लिए अपनी पूरी शक्ति का उपयोग करना चाहिए, पर उस व्यक्ति के प्रति केवल सद्भावना, करुणा और सहानुभूति के साथ। यदि आप घृणा अथवा क्रोध से ऐसा करते हैं तो फिर स्थिति को बिगाड़ देते

हैं। परंतु ऐसे व्यक्ति के प्रति आप सद्भावना तब तक नहीं रख सकते जब तक कि आपका मन शांत नहीं है। अतः अपने अंदर शांति विकसित करने का अभ्यास कीजिए, तब आप समस्या का समाधान कर सकेंगे।

अपने अंदर शांति की खोज का क्या अर्थ है जब कि संसार में शांति है ही नहीं?

संसार में शांति तभी होगी जबकि संसार के लोग शांत और सुखी होंगे। परिवर्तन का आरंभ प्रत्येक व्यक्ति से होना चाहिए। यदि कोई जंगल सूख गया है और आप उसे पुनः हरा-भरा करना चाहते हैं तो आपको उस जंगल के प्रत्येक पेड़ को सींचना पड़ेगा। यदि आप विश्व शांति चाहते हैं, तो अपने आप को शांतिपूर्ण बनाना सीखना चाहिए। तभी आप विश्व में शांति ला सकते हैं।

मैं समझ सकता हूं कि साधना किस प्रकार असंतुलन के शिकार दुःखी लोगों की सहायता करेगी लेकिन उसका क्या करेगी जो अपने जीवन में संतोष अनुभव करता है, जो पहले से ही सुखी है?

जो अपने जीवन के सामान्य सुख से सुखी है वह मन की गहराई में स्थित अशांति से अपरिचित है । वह इस भ्रम में है कि वह एक सुखी व्यक्ति है। परंतु उसका सुख चिरस्थायी नहीं है और अचेतन मन में उत्पन्न तनाव बढ़ता रहता है जो देर या सवेर चेतन मन के स्तर पर उभरता है। जब ऐसा होता है तब वह तथाकथित सुखी व्यक्ति दुःखी होता है। इसलिए क्यों नहीं यहीं और अभी उस स्थिति को रोकने का काम शुरू कर दें?

आपकी शिक्षा महायान है या हीनयान?

कोई नहीं'। 'यान' शब्द का वास्तविक अर्थ है वाहन जो आपको अंतिम लक्ष्य तक ले जायगा पर गलती से इसे आज सांप्रदायिक अर्थ दिया जाता है। बुद्ध ने कभी कुछ सांप्रदायिक नहीं सिखाया। उन्होंने 'धम्म' सिखाया जो सार्वभौमिक है। इस सार्वभौमिकता ने ही बुद्ध की शिक्षा की ओर मुझे आकर्षित किया; जिसने मुझे लाभ पहुँचाया, और इसीलिए इस सार्वभौमिक धर्म (धम्म) को मैं अपने संपूर्ण प्रेम तथा करुणा से सबको देता हूं। मेरे लिए धम्म न तो महायान है, न हीनयान, न कोई अन्य संप्रदाय (पंथ)।

बुद्ध और एक वैज्ञानिक

भौतिक सत्य प्रत्येक क्षण निरंतर बदल रहा है। बुद्ध ने स्वयं परीक्षण करके यही अनुभव किया । अपने सुदृढ़ एकाग्र चित्त से उन्होंने अपने स्वरूप में गहराई तक प्रवेश किया और यह पाया कि संपूर्ण भौतिक जीवन सूक्ष्म कलापों से बना है जिनका लगातार उदय-व्यय हो रहा है। उन्होंने बताया कि चुटकी बजाने में अथवा आंख के पलक झपकाने में जितना समय लगता है उतने में हर एक कण शत सहस्र कोटि बार उत्पन्न और नष्ट होता है।

कोई व्यक्ति जो शरीर के केवल ऊपरी सत्य को देखता है जो इतना ठोस प्रतीत होता है, इतना स्थायी, वह इस पर विश्वास नहीं करेगा। मैं सोचता था कि 'शत सहस्र कोटि' वाक्यांश एक मुहावरेदार अभिव्यक्ति है जिसे वास्तविकता में नहीं लेना चाहिए । लेकिन आधुनिक वैज्ञानिकों ने इस विवरण को प्रामाणिक सिद्ध किया है।

कई वर्ष पहले, एक अमरीकी वैज्ञानिक ने भौतिक विज्ञान में नोबेल पुरस्कार प्राप्त किया। उसने बहुत समय तक उन कलापों के बारे में, जिनसे भौतिक जगत बना है, जानने के लिए उनका अध्ययन और परीक्षण किया । यह पहले से ही पता था कि ये कलाप अत्यंत तेज गति से बार-बार उत्पन्न और नष्ट होते हैं। अब इस वैज्ञानिक ने एक ऐसा यंत्र विकसित करने का फैसला किया जो यह गिनकर बता सके कि एक सेकेंड के अंदर कितनी बार यह कलाप उत्पन्न और नष्ट होता है। उसने अपने यंत्र को, जिसकी खोज उसने की थी "बबल चेम्बर" का नाम ठीक ही दिया। उन्होंने पाया कि एक कलाप एक सेकेंड में १० के आगे २२ बार शून्य लगाने के बराबर उदय-व्यय होता है।

जिस सत्य की खोज इस वैज्ञानिक ने की वह वही है जिसे बुद्ध ने खोजा था, परंतु इन दोनों में कितना बड़ा अंतर था । मेरे कुछ अमरीकी शिष्य जो भारत में शिविरों में बैठे थे, बाद में जब अपने देश वापस लौटे, उस वैज्ञानिक से मिले। उन्होंने मुझे बताया कि इस तथ्य के होते हुए भी कि उसने इतने बड़े इस सत्य की खोज की थी, उसके पास भी एक साधारण व्यक्ति की तरह दु:खों का भंडार है। वह भी दु:ख से मुक्त नहीं हुआ है।

नहीं, वह वैज्ञानिक बुद्ध नहीं बना, सभी दुःखों से मुक्त नहीं हुआ क्योंकि उसने भौतिक सत्य के दर्शन प्रत्यक्ष रूप से नहीं किए । उसने जो सीखा है वह केवल बौद्धिक ज्ञान है। उसका इस सत्य में केवल विश्वास है क्योंकि उस यंत्र में उसकी आस्था है, जिसकी उसने खोज की; लेकिन उसने इस सत्य का अनुभव स्वयं नहीं किया है।

इस व्यक्ति अथवा आधुनिक विज्ञान के विरुद्ध मुझे कुछ नहीं कहना है। हमें यही कहना है कि केवल बाहरी दुनिया का वैज्ञानिक होना पर्याप्त नहीं है। सत्य की प्रत्यक्ष अनुभूति के लिए बुद्ध की भांति हमें अपने आंतरिक संसार का भी वैज्ञानिक होना चाहिए। सत्य का व्यक्तिगत अनुभव स्वतः मन के काम करने के ढंग को बदलेगा जिससे कि व्यक्ति सत्य के अनुसार जीवन जीना आरंभ करेगा। हमारी प्रत्येक क्रिया स्वयं तथा दूसरों के कल्याण के प्रति उन्मुख हो जाती है। यदि यह आंतरिक अनुभव नहीं है तब विज्ञान का विनाशकारी प्रयोग ही होगा। परंतु यदि हम अपने आंतरिक सत्य के वैज्ञानिक बनते हैं, तब हम सबके सुख के लिए विज्ञान का सही उपयोग करेंगे।

अध्याय ३

तात्कालिक (आसन्न) कारण

वास्तविक संसार की उन परियों के संसार से कोई समानता नहीं जहां हर कोई सदा आनंदपूर्ण जीवन जीता है। हम इस सत्य से बच नहीं सकते कि जीवन अधूरा, अपूर्ण और असंतोषजनक है। यह दुःख के अस्तित्व का सत्य है।

इस सत्य को स्वीकार करने के पश्चात हमारे पास यह जानने के लिए महत्त्वपूर्ण तथ्य है कि क्या दुःख का कोई कारण है? यदि हां, तो क्या इस कारण को दूर करना संभव है जिससे कि दुःख को दूर किया जा सके? यदि वे घटनाएं जो हमें दुःख पहुँचाती हैं, केवल अकारण घटती हैं जिन पर हमारा कोई नियंत्रण अथवा कोई जोर नहीं तब तो हम शक्तिहीन हैं और दुःख को दूर करने का प्रयत्न छोड़ सकते हैं। अथवा हमारा दुःख किसी ऐसे सर्वशक्तिमान प्राणी की इच्छा पर निर्भर है जो मनमाने और रहस्यात्मक ढंग से काम करता है तो उस प्राणी को खुश करने के लिए हमें कुछ करना होगा ताकि वह हमें और अधिक दुःख न पहुँचाए।

बुद्ध ने जाना कि हमारा दुःख आकस्मिक नहीं है। इसके पीछे कारण हैं जैसे कि सभी घटनाओं के कारण हैं। कारण और कार्य (कम्म) का नियम अस्तित्व के लिए सर्वव्यापक तथा आधारभूत है। ये कारण हमारे नियंत्रण से बाहर नहीं हैं।

कम्म

कम्म शब्द (अधिक व्यापक संस्कृत शब्द 'कर्म') भाग्य के अर्थ में प्रचलित है। दुर्भाग्य से इस शब्द का अर्थ बुद्ध के कम्म शब्द के अर्थ से बिल्कुल उल्टा है। भाग्य अपने नियंत्रण के बाहर की चीज है, विधाता का आदेश है जो हममें से हर एक के लिए पूर्व-निर्धारित है। तथापि कम्म का शाब्दिक अर्थ है 'कर्म'। हम जो भी अनुभव करते हैं उसके कारण हमारे कर्म हैं। सभी प्राणी स्वकर्मों के स्वामी हैं, अपने कर्मों को दाय रूप में प्राप्त करते हैं, वे अपने कर्मों से जन्म लेते हैं, अपने कर्मों से बँधे हैं, उनके कर्म ही उनकी शरण हैं। जैसे कुशल, अकुशल उनके कर्म हैं, वैसे ही उनका जीवन होगा।[१]

जीवन के सभी परिणाम हमारे कर्मों के फल हैं। अतः हममें से हर एक अपने कर्मों का स्वामी बनकर अपने भाग्य का स्वामी बन सकता है। हममें से हर एक उन कर्मों के लिए उत्तरदायी है जो हमें दुःख पहुँचाते हैं। हममें से हर एक के पास हमारे कर्मों के फलस्वरूप दुःख को मिटाने का साधन है ।

अत्ताहि अत्तनो नाथो, अत्ताहि अत्तनो गति।[२]

व्यक्ति स्वयं ही अपना स्वामी है, स्वयं ही अपनी गति है।

आप अपने मालिक स्वयं हो,
आप स्वयं अपने भविष्य के निर्माता हो।

वर्तमान स्थिति में हममें से हर एक आंख पर पट्टी बंधा ऐसा आदमी है जिसने कार चलाना कभी नहीं सीखा है और जो एक भीड़भरे राजमार्ग पर दौड़ती कार की स्टीयरिंग व्हील के पीछे बैठा है। वह बिना किसी दुर्घटना के अपनी मंजिल पर पहुँचने वाला नहीं है। वह यह सोच सकता है कि वह कार को चला रहा है परंतु वस्तुतः कार उसे चला रही है। अपने लक्ष्य पर पहुँचने की बात यदि छोड़ भी दें, अगर वह किसी दुर्घटना से सिर्फ बचना चाहता है, तो उसे अपनी आंख की पट्टी हटानी होगी, गाड़ी को चलाना सीखना होगा और इसे यथासंभव शीघ्र ही खतरे से बाहर ले जाना होगा। उसी प्रकार हम क्या कर रहे हैं, इसकी जानकारी हमें होनी चाहिए और वह काम करना सीखना होगा जो वस्तुतः जहां हम जाना चाहते हैं, वहां पहुँचा दे।

तीन प्रकार के कर्म

कर्म तीन प्रकार के होते हैं– कायिक, वाचिक और मानसिक। सामान्यतः हम कायिक कर्म को सबसे अधिक महत्त्व देते हैं; उससे कम वाचिक कर्म को और सबसे कम मानसिक कर्म को। किसी व्यक्ति को मारना (पीटना) हमें उससे अपमानजनक ढंग से बोलने की अपेक्षा अधिक गंभीर कर्म लगता है। ये दोनों कर्म उसके प्रति अप्रकट दुर्भावना की अपेक्षा अधिक गंभीर लगते हैं। प्रत्येक देश के मनुष्य-कृत कानून की नजर में निश्चित रूप से यही दृष्टिकोण होगा, परंतु धम्म के अनुसार, निसर्ग के नियम के अनुसार मानसिक कर्म अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। कायिक अथवा वाचिक कर्म जिस चेतना के साथ किये जाते हैं, उसी के अनुसार वे पूर्णतया पृथक महत्त्व ग्रहण करते हैं ।

एक डॉक्टर अपनी छुरी का प्रयोग आपात्कालीन जीवन-रक्षक ऑपरेशन के लिए करता है परंतु किसी कारणवश वह असफल सिद्ध होता है और रोगी की मृत्यु हो जाती है; एक हत्यारा डाकू किसी राहगीर का धन हथियाने के लिए अपनी कटार का प्रयोग उसे मार डालने के लिए करता है। शारीरिक रूप से उनके कर्म समान हैं, जिनके परिणाम स्वरूप दोनों (रोगी तथा राहगीर) की मृत्यु होती है लेकिन मानसिक रूप से उनके कर्मों में जमीन आसमान का अंतर है। सर्जन का

कर्म करुणावश है, हत्यारे का कर्म लोभवश है। उनके मानसिक कर्म के अनुसार उनके फल बिल्कुल अलग होंगे।

इसी प्रकार वाचिक कर्म के मामले में चेतना ही सबसे महत्त्वपूर्ण है। एक आदमी अपने एक दुश्मन के साथ झगड़ा करता है और उसे 'मूर्ख' कहकर गाली देता है। वह गुस्से में बोलता है। वही आदमी अपने बच्चे को कीचड़ में खेलते हुए देखता है और उसे प्यार से 'मूर्ख' कहता है। वही शब्द स्नेहवश बोलता है। दोनों मामलों में शब्द वही बोला जाता है परंतु वस्तुतः दो विरोधी मनःस्थितियों को प्रकट करने के लिए। अर्थात हमारी वाणी की चेतना परिणाम को निर्धारित करती है।

वाणी (शब्द) तथा शरीर के कर्म अथवा उनके बाह्य प्रभाव केवल मानसिक क्रियाओं के परिणाम हैं। जिस चेतना से वे कहे जाते हैं उससे ही उनके फल का निर्णय होता है। मानसिक कर्म ही वास्तविक कम्म है, वही कारण है जो भविष्य में फल देता है। इस सत्य को समझते हुए बुद्ध ने उद्घोषित किया –

मनोपुब्बङ्गमा धम्मा, मनोसेट्ठा मनोमया।
मनसा चे पदुट्ठेन, भासति वा करोति वा।
ततो नं दुक्खमन्वेति, चक्कंव वहतो पदं॥

मनोपुब्बङ्गमा धम्मा, मनोसेट्ठा मनोमया।
मनसा चे पसन्नेन, भासति वा करोति वा।
ततो नं सुखमन्वेति, छायाव अनपायिनी॥[३]

मन सभी धर्मों (प्रवृत्तियों) का अगुआ है, मन ही प्रधान है, सभी धर्म मनोमय हैं। जब कोई व्यक्ति अपने मन को मैला करके कोई वाणी बोलता है, अथवा शरीर से कोई कर्म करता है, तब दुःख उसके पीछे ऐसे हो लेता है, जैसे गाड़ी के चक्के बैल के पैरों के पीछे-पीछे हो लेते हैं।

मन सभी धर्मों (प्रवृत्तियों) का अगुआ है, मन ही प्रधान है, सभी धर्म मनोमय हैं। जब कोई व्यक्ति अपने मन को उजला रख कर कोई वाणी बोलता है, अथवा शरीर से कोई कर्म करता है, तब सुख उसके पीछे ऐसे हो लेता है जैसे कभी संग न छोड़ने वाली छाया संग-संग चलने लगती है।

दुःख का कारण

परंतु कौन सा मानसिक कर्म हमारे भाग्य का निर्धारण करता है? यदि मन में विज्ञान, संज्ञा, वेदना और संस्कार के अतिरिक्त और कुछ नहीं तब इनमें से कौन दुःख देता है। वस्तुतः इनमें से प्रत्येक थोड़ा बहुत दुःख देने में लगा है। तथापि पहले तीन प्रमुखतः निष्क्रिय हैं। विज्ञान केवल अनुभव की सूचनाओं को ग्रहण करता है, संज्ञा उसका वर्गीकरण करती है, वेदना पहले दो चरणों के होने का संकेत देती है। इन तीनों का काम केवल प्राप्त सूचनाओं को आत्मसात करना है। लेकिन जब मन प्रतिक्रिया करने लगता है तब आकर्षण या विकर्षण, रुचि-अरुचि, राग या द्वेष की प्रतीति होती है। यह प्रतिक्रिया एक नई घटना-शृंखला को परिचालित करती है और बार-बार घटित होती है। इसी को संस्कार कहते हैं। इसीलिए बुद्ध ने कहा है–

यं किञ्चि दुक्खं सम्भोति, सब्बं सङ्खारपच्चया।
सङ्खारानं निरोधेन, नत्थि दुक्खस्स सम्भवो॥

जो दुःख होता है, वह संस्कारों के ही कारण होता है, संस्कारों के निरोध से दुःख उत्पन्न ही नहीं होता।[४]

अतः वास्तविक कर्म, दुःख का मूल कारण, मन की प्रतिक्रिया (सङ्खार) है। राग या द्वेष की एक क्षणिक प्रतिक्रिया बहुत शक्तिशाली नहीं हो सकती है और न ही अधिक परिणामवाली। परंतु इसके समूह का एक संचित प्रभाव अवश्य होता है। क्षण-प्रतिक्षण प्रतिक्रिया की आवृत्ति होती है। प्रत्येक आवृत्ति के साथ प्रतिक्रिया तीव्र होती है । अंततः वह राग या द्वेष में बदल जाती है। अपने प्रथम प्रवचन में बुद्ध ने इसे ही तण्हा (तृष्णा) कहा है जिसका शाब्दिक अर्थ है प्यास, यानी वह मानसिक आदत जिससे जो नहीं है उसकी अतोषणीय चाह करता है। इसका अर्थ उतना ही तथा अपूरणीय असंतोष उसके प्रति है जो है।[५] जितना ही यह चाह और असंतोष प्रबल होगा, हमारे विचार, वाणी और कर्म पर उनका उतना गहरा प्रभाव पड़ेगा और उनसे अधिक दुःख होगा।

बुद्ध ने कहा कि कुछ संस्कार तालाब में पानी की सतह पर खिंची रेखाओं के समान होते हैं। जैसे ही वे खींची जाती हैं, तुरंत मिट जाती हैं। कछ संस्कार किनारे की रेत पर खिंची रेखाओं के समान होते हैं, जो यदि सुबह खींची जाती हैं तो रात तक ज्वार-भाटा से अथवा हवा के थपेड़ों से मिट जाती हैं। कुछ ऐसी रेखाओं के

समान होते हैं जो छेनी-हथौड़ी से चट्टान पर गहरी काटी जाती हैं। चट्टान के मिटने के साथ या समय पाकर वे भी मिट जायेंगी, पर उनके मिटने में युगों लगेंगे।[६]

हमारे अपने जीवन में प्रतिदिन मन में प्रतिक्रियाएं होती रहती हैं। परंतु यदि दिन के अंत में हम उन्हें याद करें तो उनमें से केवल एक-दो को ही याद कर सकेंगे जिन्होंने उस दिन मन पर गहरा प्रभाव छोड़ा। पुनः प्रत्येक महीने के अंत में हम अपनी सारी प्रतिक्रियाओं को याद करें तो हम केवल एक-दो को याद कर सकेंगे जिन्होंने मन पर सबसे गहरा प्रभाव छोड़ा। फिर साल के अंत में देखें तब भी एक-दो प्रतिक्रियाओं को ही याद कर सकेंगे जिन्होंने साल में सबसे गहरा प्रभाव छोड़ा। परंतु इस प्रकार की गहरी प्रतिक्रियाएं बहुत भयानक और अत्यंत दुःखदायी होती हैं।

इन दुःखों से उबरने का पहला कदम है इनकी सच्चाई को हम स्वीकार करें, किसी दार्शनिक अवधारणा अथवा विश्वास के रूप में नहीं अपितु अस्तित्व की यथार्थता के रूप में, जो हममें से हर एक के जीवन को प्रभावित करती है। इस स्वीकृति तथा इस ज्ञान के साथ कि दुःख क्या है और हम दुःखी क्यों होते हैं तब हम दुःखों से प्रभावित होने से बच जाएंगे और उन्हें प्रभावित करना शुरू कर देंगे। अपनी स्वयं की प्रकृति का प्रत्यक्ष अनुभव करना सीखकर, हम अपने को उस रास्ते पर ले जा सकते हैं जो दुःख से छुटकारा दिलाता है।

प्रश्नोत्तर

प्रश्न – 'क्या दुःख जीवन का एक स्वाभाविक भाग नहीं है? हमें इससे भागने का प्रयत्न क्यों करना चाहिए?'

स. ना. गोयन्का – 'हम दुःख में इतने उलझ गए हैं कि उससे मुक्त होना स्वाभाविक नहीं लगता है। लेकिन जब आप निर्मल चित्त के यथार्थ सुख का अनुभव करते हैं, तब आप जानेंगे कि यही चित्त की स्वाभाविक स्थिति है।'

'क्या दुःख का अनुभव लोगों को परिष्कृत नहीं करता है, और उसके चरित्र के विकास में सहायक नहीं होता है?'

'हां, वास्तव में यह विधि जानबूझकर दुःख का उपयोग मन को परिष्कृत करने के उपकरण के रूप में करती है। लेकिन यह तभी कारगर होगी जब आप इसको यथाभूत देखना सीखते हैं। यदि आप दुःख में आसक्त हो जाते हैं तो उसका अनुभव आपका परिष्कार नहीं करेगा, आप सदा दुःखी रहेंगे।'

'क्या अपने कर्मों पर नियंत्रण एक प्रकार का दमन नहीं है?'

'नहीं, जो कुछ हो रहा है उसे आप केवल यथाभूत देखना सीखते हैं। अगर कोई क्रोध में है और अपने क्रोध को छिपाना चाहता है या उसे पी जाता है तब यह दमन हुआ। परंतु क्रोध के समय होने वाली संवेदनाओं को देखने से आप देखेंगे कि क्रोध स्वतः दूर हो जाता है। आप क्रोध से मुक्त हो जाते हैं यदि आप अमूर्त क्रोध को यथाभूत देखना सीख लेते हैं।'

'यदि हम अपने को देखते रहें तो हम स्वाभाविक रूप से जीवन कैसे व्यतीत कर सकते हैं? हम अपने आपको देखने में ही इतना व्यस्त रहेंगे कि हम स्वतंत्रभाव से अथवा सहजभाव से कुछ कर नहीं सकेंगे।'

'एक शिविर पूरा करने के पश्चात लोग समझने लगते हैं कि ऐसा नहीं है। आप यहां एक ऐसा मानसिक प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं जो आपको दैनिक जीवन में 'जब आपको जरूरत हो तब देखने की योग्यता देता है' ऐसा नहीं कि आप अपने जीवन भर बंद आंखों से अभ्यास करते रहेंगे। जैसे आपको व्यायाम से प्राप्त शारीरिक शक्ति दैनिक जीवन में सहायता करती है, उसी प्रकार यह मानसिक व्यायाम आपको शक्ति देगा। आप जिसे 'स्वतंत्र, सहज कर्म' कहते हैं वह यथार्थतः अंध प्रतिक्रिया है जो हमेशा हानिकारक है। अपने को देखना सीखकर आप पाएँगे कि जब जीवन में कोई कठिन स्थिति उत्पन्न होती है, तब आप अपने मन के संतुलन को बनाए रख सकते हैं। उस संतुलन के द्वारा आप मुक्त होकर चुनाव कर सकते हैं कि आपको क्या करना है। आप उचित कर्म कर सकते हैं; जो हमेशा सकारात्मक है, सदा आपके लिए तथा सभी दूसरों के लिए शुभ है।'

'क्या यों ही अकस्मात कोई घटना नहीं घटती है?'

'बिना किसी कारण के कुछ नहीं होता है। यह संभव नहीं है। कभी-कभी हमारी सीमित इंद्रियां और बुद्धि इसे साफ-साफ ढूंढ नहीं सकतीं, लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि कोई कारण ही नहीं है।'

'क्या आप यह कहना चाहते हैं कि जीवन में सब कुछ पूर्व निश्चित है?'

हां, निस्संदेह! पूर्व निश्चित इस माने में कि हमारे पिछले कर्म फल देंगे, अच्छे या बुरे। वे निश्चित करेंगे कि किस प्रकार का हमारा जीवन होगा, वह सामान्य स्थिति 'जिसमें हम हैं' क्या होगी। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि हमारे साथ जो कुछ होता है वह पूर्व निश्चित ही है, हमारे पूर्व कर्मों द्वारा विहित है और उसके अतिरिक्त कुछ नहीं हो सकता। यह बात नहीं है। हमारे पूर्व कर्म हमारी जीवन धारा को प्रभावित करते हैं, उसे

सुखद अथवा दुःखद अनुभवों की ओर ले जाते हैं। परंतु वर्तमान कर्म समान रूप से महत्त्वपूर्ण हैं। प्रकृति ने हमें अपने वर्तमान कर्मों का स्वामी होने की योग्यता प्रदान की है। उस योग्यता से हम अपना भविष्य बदल सकते हैं।

'परंतु दूसरों के कर्म भी हमें निश्चय ही प्रभावित करते हैं?'

'निस्संदेह! हम अपने चारों ओर के व्यक्तियों तथा परिवेश से प्रभावित होते हैं और हम उन्हें भी प्रभावित करते रहते हैं। उदाहरणस्वरूप यदि बहुसंख्यक लोग हिंसा के समर्थक हैं, तब युद्ध और विनाश घटित होते हैं जिनसे बहुतों को दुःख पहुँचता है। लेकिन यदि लोग अपना चित्त (मन) शुद्ध करने लगें तब हिंसा नहीं हो सकती। समस्या की जड़ प्रत्येक व्यक्ति के मन में है क्योंकि समाज व्यक्तियों से बनता है। यदि प्रत्येक व्यक्ति बदलना शुरू कर दे, तब समाज बदलेगा तथा युद्ध और विनाश जैसी घटनाएं दुर्लभ हो जायेंगी।'

'यदि प्रत्येक व्यक्ति को अपने कर्मों का फल भोगना ही है तो हम एक दूसरे की सहायता कैसे कर सकते हैं?'

'हमारे अपने मानसिक कर्म दूसरों को प्रभावित करते हैं। यदि हम मन में नकारात्मकता उत्पन्न करते हैं तब वह हमारे संपर्क में आने वाले लोगों को हानिकारक प्रभाव पहुँचाती है। यदि हम मन को सकारात्मकता से परिपूर्ण रखते हैं तब हमारे चारों ओर के लोगों पर इसका लाभकारी प्रभाव पड़ता है। आप दूसरों के कर्म (कम्म) को नियंत्रित नहीं कर सकते परंतु आप अपना स्वामी बन सकते हैं, जिससे आप अपने चारों ओर के लोगों पर सकारात्मक प्रभाव छोड़ सकते हैं।'

'धनी होना अच्छा कर्म क्यों है? यदि ऐसा है तो क्या इसका अर्थ यह हुआ कि पश्चिम में अधिकतर लोग अच्छे कर्म करते हैं और तीसरी दुनिया के अधिकतर लोग बुरे कर्म करते हैं?'

'मात्र धनी होना अच्छा कर्म नहीं है। यदि आप धनी हो जाते हैं परंतु दुःखी बने रहते हैं तो उस धन का क्या लाभ? धनी होना और वास्तव में सुखी होना अच्छा कर्म है। सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है सुखी होना, चाहे आप धनी हैं अथवा नहीं।'

'क्या प्रतिक्रिया न करना अस्वाभाविक है?

'यदि आपने अकुशल चित्त के गलत संस्कारों का अनुभव किया है, तभी आपको ऐसा लगता है। परंतु एक शुद्ध चित्त व्यक्ति के लिए प्रेम, करुणा,

सदिच्छा, खुशी, समता से पूर्ण होकर निर्लिप्त रहना स्वाभाविक है। इसे अनुभव करना सीखें।'

'बिना प्रतिक्रिया किए हम जीवन से कैसे जुड़ सकते हैं?'

'प्रतिक्रिया की बजाय आप क्रिया करें, एक संतुलित चित्त के साथ क्रिया करें। विपस्सी साधक शाक-भाजी की तरह निष्क्रिय नहीं होते, वे सकारात्मक ढंग से क्रिया करना सीखते हैं। यदि आप अपनी जीवन-पद्धति को प्रतिक्रिया से क्रिया में परिवर्तित कर सकते हैं तो आपने बहुत मूल्यवान वस्तु प्राप्त कर ली। और विपश्यना के अभ्यास द्वारा आप इसे परिवर्तित कर सकते हैं।'

बीज और फल

जैसा कारण, वैसा कार्य होगा; जैसा बीज, वैसा फल होगा; जैसा कर्म, वैसा उसका परिणाम होगा।

एक किसान, एक ही मिट्टी में दो बीज बोता है, एक गन्ने का बीज, दूसरा नीम का बीज, (एक उष्णकटिबंधीय वृक्ष जो बहुत कड़वा होता है)। एक ही मिट्टी में दो बीज, जो एक-सा ही पानी पाते हैं, जिन्हें एक-सी ही धूप, एक-सी ही हवा मिलती है। प्रकृति उन्हें एक-सा ही पोषक आहार देती है। दो छोटे पौधे निकलते हैं और बढ़ने लगते हैं। नीम के पौधे को क्या हो गया है? इसके रेशे-रेशे में कड़वापन और गन्ने के रेशे-रेशे में मिठास। प्रकृति, अथवा आप कहना चाहें तो भगवान एक के प्रति इतना उदार और दूसरे के प्रति इतना कठोर क्यों है?

नहीं, नहीं; प्रकृति दयालु अथवा निर्दयी नहीं है। यह निश्चित नियम के अनुसार काम करती है। प्रकृति बीज के गुण को प्रकट करने में सहायता करती है। सभी आहार बीज के अप्रकट गुणों के प्रकट होने में सहायता करते हैं। गन्ने के बीज में मिठास का गुण है, इसलिए उसके पौधे में मिठास के अतिरिक्त कुछ नहीं होगा। नीम के बीज में कड़वेपन का गुण है, उसके पौधे में कड़वेपन के अतिरिक्त कुछ नहीं होगा। **जैसा बीज, वैसा फल**।

किसान नीम के पेड़ के पास जाता है, उसके सामने तीन बार झुकता है, १०८ बार इसकी परिक्रमा करता है, इसे पुष्प, अगरबत्ती, दीप, फल, मिष्टान्न का अर्घ्य देता है। और फिर वह प्रार्थना करना आरंभ करता है,'हे नीम देवता, मुझे आम के मीठे फल दे दो, मैं मीठे आम चाहता हूं।' बेचारा नीम देवता! वह उसे आम के फल नहीं दे सकता, उसमें ऐसा करने की शक्ति नहीं। अगर कोई मीठे आम चाहता है तो उसे आम का बीज बोना चाहिए था। तब उसे गिड़गिड़ाने और किसी दूसरे से सहायता के लिए निवेदन करने की जरूरत नहीं पड़ती। उसे जो फल मिलता वह मीठा आम होता। जैसा बीज, वैसा फल होगा ही!

हमारी कठिनाई, हमारा अज्ञान यह है कि बीज बोते समय हमें होश नहीं रहता। हम नीम का बीज बोते रहते हैं परंतु फल के समय अचानक सावधान हो जाते हैं और मीठे आम की चाह करते हैं और फिर गिड़गिड़ाते हैं, प्रार्थना करते हुए आम के फल की आशा करते हैं। ऐसा होता नहीं है।[७]

अध्याय ४

समस्या की जड़

बुद्ध ने कहा-- 'दुःख सत्य की परिधि तक जाना ही चाहिए।'[1] उस रात जब बुद्धत्व की प्राप्ति होने वाली थी, वह इस संकल्प के साथ बैठे कि जब तक दुःख के कारण और उसके निवारण की खोज नहीं कर लेते हैं, वे उठेंगे नहीं।

दुःख क्या है?

उन्होंने स्पष्ट देखा कि दुःख है। इस सच्चाई से बचा नहीं जा सकता, चाहे यह कितनी ही अप्रिय क्यों न हो! दुःख का आरंभ जीवन के आरंभ के साथ होता है। गर्भाशय के अंदर हमारे अस्तित्व का आरंभ कब हुआ इसका हमें होश नहीं, परंतु यह सामान्य अनुभव है कि हम इसमें से रोते हुए निकलते हैं। जन्म बहुत बड़ा दुःख है।

जीवन आरंभ होने पर, हमें रोग और बुढ़ापा जैसे दुःख का सामना करना ही पड़ता है। परंतु हम कितना ही बीमार क्यों न हों, कितने ही जर्जरित क्यों न हों, हममें से कोई मरना नहीं चाहता क्योंकि मृत्यु अधिक बड़ा दुःख है।

फिर भी प्रत्येक प्राणी को इन सब दुःखों का सामना करना पड़ता है और जैसे-जैसे हम जीवन में आगे बढ़ते हैं, हमें दूसरे दुःखों, दूसरे अनेक प्रकार के शारीरिक अथवा मानसिक कष्टों का सामना करना पड़ता है। हमारा अप्रिय से संयोग होता है और प्रिय से वियोग। जो हम चाहते हैं, वह मिलता नहीं, इसकी बजाय जो नहीं चाहते हैं, वह पाते हैं। ये सारी स्थितियां दुःख ही हैं।

दुःख के ये दृष्टांत उनके लिए बिल्कुल स्पष्ट हैं जो इनके बारे में गंभीरतापूर्वक सोचते हैं। लेकिन बुद्ध बुद्धि की इस सीमित व्याख्या से संतुष्ट नहीं रह सकते थे। वे अपने भीतर दुःख की वास्तविक प्रकृति के अनुभव की तलाश करते रहे और उसकी जड़ तक पहुँचकर उन्होंने पाया कि 'पंचस्कंधों के प्रति राग ही दुःख है।'[2] बहुत गहरे स्तर पर शरीर और मन तथा उसके विज्ञान, संज्ञा, वेदना, संस्कार, संभागों के प्रति उत्कट आसक्ति दुःख है। लोग अपने अहम् के प्रति – अपने मानसिक, शारीरिक सत्त्व के प्रति दृढ़तापूर्वक चिपके होते हैं जबकि ये वास्तव में केवल विकासशील क्रियाएं हैं। इस झूठे अहम् के प्रति, वैसी चीज के प्रति जो निरंतर परिवर्तनशील है, इसके प्रति आसक्ति ही दुःख है।

आसक्ति

आसक्ति कई प्रकार की होती है। पहली आसक्ति है ऐंद्रिय तृप्ति की चाह की आदत के प्रति। एक व्यसनी नशा करता है क्योंकि वह उस सुखद संवेदना का अनुभव करना चाहता है जो नशा उसमें उत्पन्न करता है यद्यपि वह यह जानता है कि नशा करके वह अपने व्यसन को बढ़ाता है। उसी प्रकार हममें तृष्णा की अवस्था के प्रति व्यसन है। जैसे ही एक तृष्णा पूरी होती है, हम दूसरी तृष्णा उत्पन्न कर लेते हैं। पदार्थ गौण है, तथ्य यह है कि हम लगातार तृष्णा की अवस्था को बनाए रखना चाहते हैं, क्योंकि यह तृष्णा एक ऐसी क्षणिक सुखद संवेदना पैदा करती है जिसे हम बनाये रखना चाहते हैं। यह चाहत (तृष्णा करना) एक आदत बन जाती है जिसे हम छोड़ नहीं सकते, और अंततः एक व्यसन बन जाती है। और जैसे एक व्यसनी अपने मनपसंद नशे के प्रति क्रमशः (धीरे-धीरे) सह्य सीमा का विकास करता जाता है और नशा प्राप्त करने के लिए उसकी अधिक मात्रा की मांग करता है। जैसे-जैसे हम उसे पूरा करना चाहते हैं, हमारी तृष्णा (लालसा) लगातार बढ़ती जाती है। इस प्रकार हमारी तृष्णा (लालसा) कभी समाप्त नहीं होती है। इस प्रकार जब तक हम राग करते रहेंगे, हम कभी सुखी नहीं हो सकते।

दूसरी बड़ी आसक्ति अपने 'मैं' 'अहंकार' तथा 'अपनी छवि' के प्रति है। हममें से हर एक के लिए 'मैं' संसार में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण व्यक्ति है। हम अपने चारों ओर लौहचूर्ण से घिरे चुंबक की तरह व्यवहार करते हैं, यह लौहचूर्ण को यंत्रवत अपने को केंद्र बनाकर एक बानगी के रूप में व्यवस्थित करेगा। अर्थात हम अपनी सोच के अनुसार स्वाभाविक रूप से संसार को अपने अनुसार व्यवस्थित करते हैं। प्रिय को आकर्षित करना चाहते हैं और अप्रिय को दूर हटाना चाहते हैं। परंतु हममें से कोई भी संसार में अकेला नहीं है। एक 'मैं' को दूसरे 'मैं' के साथ टकराना ही पड़ता है। हम अपनी जो तस्वीर तैयार करना चाहते हैं वह दूसरों के चुंबकीय क्षेत्र से टकराकर भंग हो जाती है और हम खुद आकर्षण-विकर्षण के विषय बन जाते हैं। इसका परिणाम होता है केवल दुःख और कष्ट।

आसक्ति को हम केवल 'मैं' तक सीमित नहीं रखते बल्कि इसका विस्तार 'मेरा' तक कर देते हैं। सब कुछ हमारा है। हममें से हर एक, हमारे पास जो कुछ है उस पर अपनी बहुत बड़ी आसक्ति बढ़ा लेता है क्योंकि यह हमसे जुड़ा है यह 'मैं' की छवि का समर्थन करता है। यह आसक्ति कोई समस्या उत्पन्न न करती, यदि जिसे हम 'मेरा' कहते हैं वह शाश्वत रहता और यह 'मैं' सदा उस सुख का

उपभोग करता। परंतु देर या सबेर यह 'मैं' 'मेरा' से अलग हो जाता है। अलगाव का यह समय आता ही है। जब यह आता है तो 'मेरा' के प्रति जितनी बड़ी आसक्ति होती है, उतना ही बड़ा दुःख होता है ।

आसक्ति और आगे बढ़ती है अपने विचार और विश्वास के प्रति। फिर उनका वर्ण्य विषय कुछ भी हो, वे चाहे सही हों या गलत, यदि उनके प्रति हमारी आसक्ति है, तब वे यथार्थतः हमें दुःखी बनाएंगे। हममें से हर एक इससे आश्वस्त रहता है कि हमारी विचारधारा और हमारी परंपराएं ही सर्वश्रेष्ठ हैं और जब कभी हम उनकी आलोचना सुनते हैं तब स्वभावतः बहुत अशांत हो जाते हैं। यदि हम अपना विचार समझाएं और दूसरे उसे स्वीकार नहीं करें तब फिर हम अशांत हो जाते हैं। हम यह मानने से इनकार करते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति का अपना विश्वास होता है। यह विवाद निरर्थक है कि कौन-सा विचार ठीक है, अधिक ठीक यही होगा कि हम अपने पूर्वाग्रहों को एक ओर रख दें और सत्य को देखने का प्रयास करें। परंतु विचार के प्रति हमारी आसक्ति हमें ऐसा करने से रोकती है और हमें दुःखी बनाती है।

अंततः धार्मिक आडंबरों और कर्मकांडों के प्रति भी आसक्ति होती है। हमारा झुकाव धर्म के अंतर्निहित अर्थ की अपेक्षा धर्म के बाहरी कर्मकांडों पर जोर देने का होता है।

और हम यह मानते हैं कि जो इन कर्मकांडों को नहीं करता वह सच्चा धार्मिक नहीं है। हम यह स्वीकार नहीं करते कि सारतत्त्व के बिना धर्म के कर्मकांड केवल खोखले छिलके (ढांचे) के समान हैं। यदि मन क्रोध, दुर्वासना और दुर्भावना से भरा हो तब प्रार्थना करना अथवा कर्मकांड परायण होना व्यर्थ ही है न! वास्तविक धार्मिक बनने के लिए हमें धार्मिक प्रवृत्ति जैसे कि हृदय की शुद्धता, सबके लिए प्यार और करुणा का विकास करना होगा। परंतु धर्म के कर्मकांडों के प्रति हमारी आसक्ति हमें अर्थ की अपेक्षा शब्दों को अधिक महत्त्व देने के लिए प्रेरित करती है। हम धर्म के सारतत्त्व को खो देते हैं, अतः दुःखी होते हैं।

हमारे सभी दुःख, चाहे वे कुछ भी हों, हमारी इन एक या दूसरी आसक्तियों से जुड़े हैं, आसक्ति और दुःख हमसफर हैं, सदा साथ रहते हैं।

प्रतीत्यसमुत्पाद : कारण-कार्य श्रृंखला जिससे दुःख उत्पन्न होता है।

आसक्ति का कारण क्या है? यह कैसे उत्पन्न होती है? अपनी प्रकृति का विश्लेषण करते हुए भावी बुद्ध ने पाया कि सुखद दुःखद यानी राग-द्वेष के प्रति क्षणिक मानसिक प्रतिक्रिया के बार-बार होने से यह बढ़ती है। मन की संक्षिप्त, अचेतन प्रतिक्रिया की आवृत्ति और तीव्रीकरण प्रतिक्षण होता रहता है और उनका विकास हमारी सारी आसक्तियों में प्रबल आकर्षण-विकर्षण के रूप में होता है। आसक्ति क्षणिक प्रतिक्रियाओं का केवल विकसित रूप है। यही दुःख का तात्कालिक (आसन्न) कारण है।

राग-द्वेष की प्रतिक्रियाओं का कारण क्या है? गहराई से देखने पर बुद्ध ने पाया कि वे वेदना के कारण उत्पन्न होती हैं। हम एक सुखद संवेदना का अनुभव करते हैं और उसे चाहने लगते हैं । हम एक दुःखद संवेदना का अनुभव करते हैं और उसे नापसंद करने लगते हैं, उससे द्वेष करने लगते हैं,।

अब ये संवेदनाएं क्यों? संवेदनाएं कैसे उत्पन्न होती हैं? अपने अंदर और पर्यवेक्षण करते हुए उहोंने देखा कि वे स्पर्श से उत्पन्न होती हैं। आंख का स्पर्श किसी रूप से, कान का स्पर्श किसी शब्द से, नाक का स्पर्श किसी गंध से, जीभ का स्पर्श किसी स्वाद से, शरीर का स्पर्श किसी स्प्रष्टव्य से और मन का स्पर्श किसी विचार, प्रवृत्ति, भावना, कल्पना अथवा स्मृति से होता है। इन पांचों शारीरिक इंद्रियों तथा मन के माध्यम से हम जगत का अनुभव करते हैं। जब कभी एक आलंबन या प्रपंच अनुभव करने के इन षडायतनों (छः आधारों) में से किसी एक के संपर्क में आता है, सुखद अथवा दुःखद संवेदना उत्पन्न होती है।

और सर्वप्रथम विचारणीय बात यह है कि स्पर्श ही क्यों उत्पन्न होता है? भावी बुद्ध ने देखा कि छः इंद्रियों-- पांच भौतिक इंद्रियां और एक मन– के कारण स्पर्श अवश्यंभावी है। संसार असंख्य तथ्यों, (घटनाओं), रूपों, शब्दों, गंधों, रसों, स्प्रष्टव्यों, अनेक विचारों और प्रवृत्तियों से भरा हुआ है। जब तक हमारी इंद्रियां काम कर रही हैं, स्पर्श अवश्यंभावी है।

तो फिर षडायतन की सत्ता क्यों है? क्योंकि वे नाम-रूप (चित्त और शरीर) प्रवाह के आवश्यक अंग हैं। नाम-रूप का यह प्रवाह क्यों? इसका क्या कारण है? भावी बुद्ध ने देखा कि विज्ञान – (जो जानने का काम करता है) के कारण ऐसा होता है जो जगत को ज्ञाता और ज्ञेय, विषयी और विषय में और 'मैं' तथा 'अन्य' में बांटता है। इस भेद के कारण पहचान (जाति) का उदय होता है। प्रत्येक

क्षण विज्ञान का उदय होता है जो एक विशिष्ट मानसिक, शारीरिक रूप धारण करता है। दूसरे क्षण फिर विज्ञान थोड़ा भिन्न रूप धारण करता है। पूरे जीवन भर विज्ञान प्रवाहित तथा परिवर्तित होता रहता है। अंत में मृत्यु आती है, लेकिन विज्ञान वहां समाप्त नहीं होता है। बिना किसी अंतराल के, दूसरे ही क्षण यह एक नया रूप धारण करता है। एक सत्ता से दूसरी सत्ता, एक जीवन के पश्चात दूसरा जीवन, विज्ञान का प्रवाह चलता रहता है।

तब फिर विज्ञान के इस प्रवाह का क्या कारण है? उन्होंने पाया कि संस्कार के कारण इसका उदय होता है। मन निरंतर प्रतिक्रिया करता रहता है और प्रत्येक प्रतिक्रिया विज्ञान के प्रवाह को प्रोत्साहन देती है जिससे कि यह दूसरे क्षण तक चलता है। जितनी तीव्र प्रतिक्रिया, उतना तीव्र प्रोत्साहन वह देती है। एक क्षण की हल्की प्रतिक्रिया केवल एक क्षण के लिए विज्ञान के प्रवाह को बनाए रखती है। परंतु एक क्षण की वह सुखद-दुःखद की प्रतिक्रिया जब राग-द्वेष की तीव्रता धारण करती है तब यह दृढ़तर होती जाती है और विज्ञान का प्रवाह अनेकों क्षण, मिनटों, घंटों तक चलता है। और यदि राग-द्वेष और अधिक तीव्र होता है, तो यह प्रवाह कई दिनों, महीनों, कदाचित वर्षों तक चलता है। और यदि कोई जीवनभर कुछ प्रतिक्रियाओं को दुहराता और तीव्र बनाता है तो उनमें इतनी पर्याप्त शक्ति आ जाती है कि विज्ञान का प्रवाह केवल एक क्षण से दूसरे क्षण, एक दिन से दूसरे दिन, एक साल से दूसरे साल तक के लिए नहीं, अपितु एक जीवन से दूसरे जीवन तक चलता है।

और इन संस्कारों के क्या कारण हैं? सच्चाई को उसके गहनतम धरातल पर देखते हुए उन्होंने समझा कि अविद्या के कारण संस्कार पैदा होते हैं। हम इस तथ्य से अनभिज्ञ होते हैं कि हम प्रतिक्रिया करते हैं और जिसके प्रति प्रतिक्रिया करते हैं उसकी वास्तविक प्रकृति से भी अनभिज्ञ होते हैं। अपनी सत्ता की नश्वरता और अनात्म प्रकृति का ज्ञान हमें नहीं होता है। हम इस तथ्य से भी परिचित नहीं होते हैं कि इसके प्रति आसक्ति से दुःख मिलता है। अपनी वास्तविक प्रकृति को न जानते हुए हम इसके प्रति अंध प्रतिक्रिया करते हैं। यह भी न जानते हुए कि हमने प्रतिक्रिया की है, हम अंध-प्रतिक्रिया करते जाते हैं और उन्हें घनी बनाते जाते हैं। इस प्रकार हम संस्कारों के बंदी बन जाते हैं, अपनी अविद्या के कारण इस प्रकार दुःखचक्र घूमने लगता है–

अविद्या से संस्कार
संस्कार से विज्ञान
विज्ञान से नाम-रूप

नाम-रूप से षडायतन

षडायतन से स्पर्श

स्पर्श से वेदना

वेदना से तृष्णा

तृष्णा से उपादान

उपादान से भव

भव से जाति

जाति से बुढ़ापा (जरा), मरण, शोक, परिदेव, दुःख, दौर्मनस्य, उपायास उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार संपूर्ण दुःखस्कंध का समुदय होता है।[३]

कारण-कार्य की इस शृंखला के (प्रतीत्यसमुत्पाद) द्वारा हमें अपना वर्तमान अस्तित्व मिला और हमें भावी दुःख को भोगना है।

अंततः उन्होंने सत्य को ठीक से जान लिया कि दुःख-समुदय अपनी यथार्थ प्रकृति के अज्ञान और 'मैं' के प्रपंच की अविद्या से होता है। दुःख-समुदय का दूसरा कारण संस्कार है अर्थात प्रतिक्रिया करने की मानसिक प्रवृत्ति। अविद्या से अंधा बनकर हम राग-द्वेष की प्रतिक्रिया उत्पन्न करते हैं, जो आसक्ति बन जाती है जिससे सभी प्रकार के दुःख उत्पन्न होते हैं। प्रतिक्रिया की प्रवृत्ति को 'कम्म' कहते हैं जो हमारे भावी जीवन को बनाता है। प्रतिक्रिया केवल अपनी यथार्थ (वास्तविक) प्रकृति के अज्ञान के कारण उत्पन्न होती है। मोह, राग और द्वेष आदि तीन मूल कारणों से जीवन में दुःख-समुदय होता है।

दुःख निरोधगामिनी प्रतिपदा

दुःख और उसके समुदय को समझने के पश्चात भावी बुद्ध के सामने दूसरा प्रश्न था- दुःख का निवारण कैसे किया जा सकता है? कम्म नियम अर्थात कारण-कार्य नियम को समझकर कि यदि यह है तो वह होगा ही, इसके होने से वह होता ही है, और यदि यह नहीं है तब वह नहीं होगा, अर्थात इसके नहीं होने से वह नहीं होगा।[४] बिना कारण के कोई कार्य होता नहीं है, यदि कारण का निवारण कर दिया जाय तो कार्य नहीं होगा। इस प्रकार दुःख के उदय की प्रक्रिया को उल्टा किया जा सकता है–

अविद्या के निरोध से संस्कार का निरोध

संस्कार के निरोध से विज्ञान का निरोध

विज्ञान के निरोध से नाम-रूप का निरोध

नाम-रूप के निरोध से षडायतन का निरोध

षडायतन के निरोध से स्पर्श का निरोध
स्पर्श के निरोध से वेदना का निरोध
वेदना के निरोध से तृष्णा का निरोध
तृष्णा के निरोध से उपादान का निरोध
उपादान के निरोध से भव का निरोध
भव के निरोध से जाति का निरोध
जाति के निरोध से जरा, मरण, शोक, परिदेव, दुःख, दौर्मनस्य, उपायास का निरोध होता है, इस प्रकार संपूर्ण दुःखस्कंध का निरोध हो जाता है।[५]

यदि हम अविद्या का अंत कर दें तो फिर अंध प्रतिक्रिया नहीं होगी, जो अपने पीछे सभी प्रकार के दुःख लाती है। और यदि दुःख नहीं है तो हम यथार्थ सुख, शांति का अनुभव करेंगे। दुःखचक्र, मुक्तिचक्र में परिवर्तित हो सकता है ।

सिद्धार्थ गौतम ने बोधिप्राप्ति के लिए यही किया। इसके लिए उन्होंने दूसरों को यही सिखाया। उन्होंने कहा –

अत्तना हि कतं पापं, अत्तना संकिलिस्सति।
अत्तना अकतं पापं, अत्तनाव विसुज्झति।
सुद्धी असुद्धि पच्चत्तं, नाञ्ञो अञ्ञं विसोधये॥[६]

अपने द्वारा किये गये पाप से अपने को मैला करता है और अपने द्वारा न किये पाप से अपने को शुद्ध करता है।

हममें से हर एक उस संस्कार के लिए उत्तरदायी है जो हमारे दुःख का कारण है ।अपने उत्तरदायित्व को स्वीकार कर हम दुःख का निवारण करना सीख सकते हैं।

भव-संसरण

कारण-कार्य शृंखला (प्रतीत्यसमुत्पाद) के द्वारा बुद्ध ने पुनर्जन्म अथवा संसरण की प्रक्रिया को समझाया। बुद्धकालीन भारत में यह धारणा सामान्यतः 'चक्र' के रूप में स्वीकृत थी। आज बहुत से लोगों को यह सिद्धांत विदेशी, शायद अतर्कसंगत लग सकता है। लेकिन इसे स्वीकार अथवा अस्वीकार करने के पहले हमें यह समझना चाहिए कि यह क्या है, क्या नहीं है।

संसार पुनर्जन्म का चक्र है, अतीत और भावी जीवन का क्रम। हमारा दुष्कर्म-सत्कर्म ही वह बल है जो हमें एक जन्म से दूसरे जन्म की ओर ढकेलता है।

हर जन्म चाहे वह सुगति में हो या दुर्गति में, अच्छा या बुरा हमारे अकुशल अथवा कुशल कर्मों के अनुसार होगा। इस मामले में यह धारणा तात्त्विकरूप में अन्य धर्मों से भिन्न नहीं है जो भावी जीवन की बात करते हैं जहां हमें इस जीवन के कर्मों का फल मिलता है। तथापि बुद्ध ने अनुभव किया कि ब्रह्मलोक में उत्पन्न होने पर भी दुःख से छुटकारा नहीं मिल सकता है। इसलिए हमें ब्रह्मलोक में पुनर्जन्म के लिए प्रयत्न नहीं करना चाहिए क्योंकि कोई भी पुनर्जन्म पूर्णतया दुःखमुक्त नहीं होता है। हमारा उद्देश्य तो सभी दुःखों से मुक्ति पाने का होना चाहिए । जब हम अपने को दुःख-चक्र से मुक्त कर लेते हैं तब किसी सांसारिक सुख की अपेक्षा बड़े विशुद्ध आनंद का अनुभव करते हैं। बुद्ध ने इसी जीवन में इस सुख को अनुभव करने का मार्ग सिखाया।

'संसरण' आत्मा या व्यक्तित्व के संक्रमण का कोई लोकप्रिय मत नहीं है जिसकी विभिन्न अवतरणों में निश्चित पहचान होती है। बुद्ध ने स्पष्ट रूप से कहा कि ऐसा नहीं होता है। उन्होंने जोर देकर कहा कि ऐसी कोई अपरिवर्तनीय आत्मा नहीं है जिसका एक जीवन से दूसरे जीवन में संक्रमण होता है। ''यह ऐसा ही है जैसे गाय से दूध मिलता है, दूध से दही, दही से मक्खन, ताजा मक्खन से घी, मिठाई । जब दूध है, तब यह दही नहीं कहा जाता, या मक्खन नहीं कहा जाता या घी नहीं कहा जाता और मिठाई नहीं कही जाती, उसी प्रकार एक विशेष काल में वर्तमान सत्ता वास्तविक है न कि भूत और न ही भविष्य की सत्ता।''[७]

बुद्ध की यह धारणा थी कि न तो कोई निश्चित आत्मा का अवतरण आनुक्रमिक जीवन में होता है और न यह कि अतीत और भावी जीवन होता ही नहीं है। इसकी बजाय उन्होंने अनुभव किया और सिखाया कि एक जन्म से दूसरे जन्म में केवल होने (भव) की प्रक्रिया चलती रहती है जब तक कि हमारे कर्म इस प्रक्रिया को आगे बढ़ाते रहते हैं।

अगर कोई व्यक्ति वर्तमान के अतिरिक्त किसी अन्य जीवन में विश्वास नहीं करता है तब भी कारण- कार्य श्रृंखला की प्रासंगिकता है। प्रत्येक क्षण जब हम अपनी अंध प्रतिक्रियाओं के प्रति अज्ञानी बने रहते हैं, हम दुःख की सृष्टि करते रहते हैं जिनका अनुभव हम अभी और इसी जीवन में करते हैं। यदि हम अपने अज्ञान को दूर कर अंध-प्रतिक्रिया बंद कर दें तो हम इसके परिणाम से प्राप्त सुख-शांति का अनुभव इसी जीवन में और अभी करेंगे। स्वर्ग और नरक का अस्तित्व इसी जीवन में और अभी है। उनका अनुभव हम इसी जीवन में और इसी काया में कर सकते हैं। बुद्ध ने कहा 'यदि कोई दूसरे लोक में विश्वास नहीं भी करता है, इसमें भी विश्वास नहीं करता है कि कुशलकर्मों का भावी जीवन में

कुशल फल मिलता है अथवा अकुशल कर्मों का दंड मिलता है तो भी इस जीवन में अपने को घृणा, द्वेष (दुर्भाव) और चिंता से मुक्त रखकर सुखी जीवन व्यतीत कर सकता है।'[८]

भूत अथवा भविष्य जीवन में आस्था अथवा अनास्था की चिंता न करते हुए भी हम वर्तमान जीवन की समस्याओं का सामना करते हैं जो अपनी अंध प्रतिक्रियाओं से उत्पन्न होती हैं। सबसे महत्त्वपूर्ण यह है कि हम इन समस्याओं का समाधान अभी कर लें, प्रतिक्रिया की आदत को समाप्तकर, दुःख का अंत करने का प्रयास करें और अभी यहीं मुक्ति के सुख का अनुभव करें।

प्रश्नोत्तर

प्रश्न – 'क्या राग-द्वेष कुशल नहीं हो सकते उदाहरणस्वरूप, अन्याय से घृणा करना, स्वतंत्रता की कामना करना और शारीरिक क्षति से डरना।'

स. ना. गोयन्का – 'राग-द्वेष कभी कुशल नहीं हो सकते। वे हमेशा आपको तनावपूर्ण स्थिति में रखेंगे। यदि आप अपने मन में राग अथवा द्वेष रखकर काम करते हैं तो आप अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकते हैं लेकिन आप इसे प्राप्त करने के लिए अकुशल साधन का उपयोग करते हैं। इसमें संदेह नहीं कि आपको खतरे से अपनी रक्षा करनी होती है। आप भय से अभिभूत हो ऐसा कर सकते हैं, परंतु ऐसा करते हुए आप भय की कुंठा विकसित करते हैं जो अंततोगत्वा आपको क्षति पहुँचायगी, अथवा मन में घृणा के साथ आप अन्याय से संघर्ष में सफल हो सकते हैं, परंतु वह घृणा आपके लिए हानिकारक मानसिक कुंठा बन जायगी। आपको अन्याय के विरुद्ध अवश्य लड़ना चाहिए, खतरे से अपने को अवश्य बचाना चाहिए, परंतु आप ऐसा संतुलित चित्त से, तनाव मुक्त होकर कर सकते हैं। और संतुलित ढंग से कोई अच्छी चीज प्राप्त करने के लिए कोशिश कर सकते हैं, दूसरों के प्रति मैत्री भावना के द्वारा । मन का संतुलन हमेशा सहायक होता है, अच्छे परिणाम ही देगा ।'

'जीवन को अधिक आरामदेह बनाने के लिए भौतिक सामग्री की कामना करने में क्या बुराई है?'

'यदि यह आपकी सचमुच की आवश्यकता है, तो इसमें कोई बुराई नहीं, बशर्ते कि आप इसमें आसक्त नहीं हो जाते। उदाहरणस्वरूप आप प्यासे हैं और पानी चाहते हैं तो पानी प्राप्त करने में कोई बुराई नहीं। आपको पानी चाहिए, तो आप इसके लिए काम करते हैं, आपको पानी मिलता है,

आप अपनी प्यास बुझाते हैं। परंतु आवश्यकता यदि सनक बन जाती है, तो वह आपकी सहायता नहीं करती, आपको हानि पहुँचाती है। आपकी जो आवश्यकताएं हैं, उन्हें पूरा करने के लिए आप काम करें। यदि आप कुछ प्राप्त करने में असफल होते हैं तो मुस्कराइए और दूसरे तरीके से प्राप्त करने की कोशिश कीजिए। यदि आप सफल होते हैं तो खुशी मनाइए लेकिन बिना आसक्ति के।'

'भविष्य की योजना बनाने को आप क्या कहेंगे, क्या आप उसे राग (तृष्णा) कहेंगे?'

'यहां फिर मापदंड यही है कि क्या आपकी उस योजना से आसक्ति है? हर एक को भविष्य की तैयारी करनी चाहिए। यदि आपकी योजना सफल नहीं होती है और आप रोना-धोना शुरू करते हैं तब आप समझ जाइए कि आप इसके प्रति आसक्त थे। लेकिन यदि आप असफल होकर भी मुस्करा सकते हैं, यह सोचते हुए कि ठीक है मैंने अपनी पूरी कोशिश की लेकिन असफल हो गया तो क्या हुआ, मैं फिर से कोशिश करूंगा। तब आप अनासक्त भाव से काम कर रहे हैं, आप खुश रहते हैं।'

'कारण-कार्य चक्र का रुकना आत्महत्या करने जैसा है, आत्मविनाश के समान है, हम क्यों ऐसा चाहें?'

'अपने जीवन का विनाश चाहना निश्चित रूप से हानिकारक है, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार जीवन से चिपके रहने का राग हानिकारक है। लेकिन इसके बदले में हम प्रकृति को बिना राग के, यहां तक कि निर्वाण के प्रति राग किये बिना काम करने देना सीखते हैं।'

'लेकिन आपने कहा कि एक बार संखार का चक्र समाप्त होने पर पुनर्जन्म भी समाप्त हो जाता है।'

'हां, परंतु यह बहुत दूर की बात है। आप इस समय अपने वर्तमान जीवन की चिंता करें, भविष्य की चिंता न करें। वर्तमान को अच्छा बनाएं, भविष्य स्वतः अच्छा बन जायगा। पुनर्जन्म देने वाले सभी संस्कार जब समाप्त हो जाते हैं तब जीवन-मरण की प्रक्रिया भी समाप्त हो जाती है।'

'तो क्या यह विनाश नहीं है?'

" 'मैं' के भ्रम का विनाश, दुःख का नाश । 'निब्बाण' का यही अर्थ है, जलन का शमन। राग, द्वेष, तथा मोह की जलन से मनुष्य निरंतर जलता रहता है। जब जलना बंद हो जाता है, दुःख का अंत हो जाता है। तब जो कुछ बचता है वह सकारात्मक होता है। परंतु शब्दों में इसका वर्णन करना

संभव नहीं क्योंकि यह इंद्रियों के क्षेत्र से परे की बात है। इसका अनुभव इसी जीवन में होना चाहिए तब आप जानेंगे कि यह क्या है। तब विनाश का भय दूर हो जायगा।"

'तब फिर विज्ञान (चेतना) का क्या होता है?'

'उसकी चिंता किसलिए? यह आपकी ऐसी वस्तु का अनुमान करने में सहायता नहीं करेगी जिसका केवल अनुभव किया जा सकता है, वर्णन नहीं। ऐसी चिंता आपको केवल अपने यथार्थ लक्ष्य से विचलित कर देगी जो कि आप प्राप्त करना चाहते हैं। जब आप उस सोपान पर पहुँचेंगे, आप उसका आनंद भोगेंगे और सभी प्रश्न समाप्त हो जायेंगे। आपके पास कोई और प्रश्न नहीं रह जायगा। उस सोपान पर पहुँचने के लिए काम करें।'

'आसक्ति के बिना संसार कैसे चल सकता है? यदि माता-पिता अनासक्त हो जायं तो वे अपने बच्चों की देख-भाल तक नहीं करेंगे। आसक्ति के बिना कोई प्रेम कैसे करेगा अथवा जीवन से कैसे जुड़ा रह सकेगा?'

'अनासक्ति का अर्थ उदासीनता नहीं है, इसको ठीक-ठीक 'पवित्र उदासीनता' कह सकते हैं। माता-पिता के रूप में अपने बच्चे के प्रति उत्तरदायित्व की पूर्ति पूरे प्यार परंतु अनासक्त होकर अवश्य करनी चाहिए। प्रेम से अपना कर्तव्य पूरा कीजिए। मान लीजिए कि आप किसी अस्वस्थ व्यक्ति की सेवा करते हैं। आपकी सेवा के बावजूद वह ठीक नहीं होता है। आप रोना-धोना शुरू नहीं करते, वह तो व्यर्थ होगा। आप संतुलित चित्त से उनकी सहायता के लिए दूसरा मार्ग ढूंढ़ने की कोशिश करें। यह 'पवित्र उदासीनता' है, न क्रियाहीनता (अक्रिया) है न प्रतिक्रिया। परंतु वास्तविक संतुलित चित्त की सकारात्मक क्रिया है।'

'बहुत कठिन'!

'हां, परंतु आपको यही सीखना है!'

कंकड़ और घी

एक दिन एक नवयुवक बुद्ध के पास आया । वह बहुत रो रहा था । उसका रोना रुक नहीं रहा था। बुद्ध ने उससे पूछा 'क्या परेशानी है, नवयुवक'?

'भंते! कल मेरा बूढ़ा बाप मर गया।'

'क्या कर सकते हैं? अगर वह मर गया है तो रोने से तो वह जिंदा नहीं होगा न ?'

भंते, मैं समझता हूं, रोने से मेरे पिता जिंदा नहीं होंगे। लेकिन 'भंते' मैं आपके पास विशेष प्रयोजन से आया हूं। कृपया, मेरे मृत पिताजी के लिए कुछ कीजिए।'

'अरे, मैं तुम्हारे मृत पिता के लिए क्या कर सकता हूं?'

'भंते, कृपा कर कुछ कीजिए। आप इतने शक्तिशाली व्यक्ति हैं, आप निश्चित रूप से कुछ कर सकते हैं। देखिए, ये पंडे-पुजारी मरे लोगों की सहायता के लिए क्या-क्या कर्मकांड करते हैं। और जैसे ही यहां कर्मकांड पूरा किया जाता है वैसे ही स्वर्ग का द्वार खुल जाता है, मृत व्यक्ति उसमें प्रवेश पाता है, उसे 'ऐण्ट्री वीसा' मिल जाता है। भंते, आप इतने सामर्थ्यवान हैं! यदि आप कोई कर्मकाण्ड मेरे मृत पिता के लिए करते हैं तो उनको न केवल 'एंट्री वीसा' मिलेगा बल्कि उन्हें स्थायी आवासीय ग्रीन कार्ड मिल जाएगा । भंते, कृपया उनके लिए कुछ कीजिए।'

वह बेचारा दुःख (शोक) से इतना अभिभूत था कि कोई भी दलील समझने के लिए तैयार नहीं था। बुद्ध को उसे समझाने के लिए दूसरा उपाय करना पड़ा। बुद्ध ने उससे कहा, 'ठीक है, बाजार जाओ और दो मिट्टी के बर्तन (हंडियां) खरीद लाओ।' नवयुवक बहुत खुश हुआ यह सोचकर कि उसके पिता के लिए बुद्ध कर्मकांड करने के लिए सहमत हो गए। वह दौड़ा हुआ बाजार गया और दो हंडियां लेकर लौटा। बुद्ध ने कहा, 'ठीक है, एक में घी भर दो।' नवयुवक ने ऐसा कर दिया। 'दूसरे को कंकड़-पत्थर से भर दो ।' उसने यह भी कर दिया। 'अब उनके मुँह अच्छी तरह बंद करके उन्हें सील कर दो।' उसने ऐसा कर दिया। 'अब उन्हें सामने के तालाब में डाल दो।' नवयुवक ने ऐसा किया। दोनों बर्तन पानी में डूब कर नीचे पैठ गए। बुद्ध ने कहा-- 'अब एक बड़ा डंडा लाओ और बर्तनों को

मारकर तोड़ दो।' नवयुवक बड़ा खुश था कि उसके पिता के लिए बुद्ध अद्भुत कर्मकांड कर रहे हैं।

भारत की प्राचीन परंपरा (रिवाज) के अनुसार जब कोई आदमी मरता है, उसका पुत्र उसके मृत शरीर को श्मशान ले जाता है, उसे चिता पर रखता है और जलाता है। जब शरीर आधा जल जाता है, पुत्र एक मोटा डंडा लेकर उसकी खोपड़ी को तोड़ता है। और पुराने विश्वास के अनुसार जैसे यहां खोपड़ी टूटती है, ऊपर स्वर्ग का द्वार खुल जाता है। इसलिए नवयुवक ने अपने मन में सोचा-- कल मेरे पिता का शरीर चिता में जल गया। अब बुद्ध प्रतीक के रूप में इन बर्तनों को तुड़वा रहे हैं। वह कर्मकांड से बहुत प्रसन्न था।

जैसा कि बुद्ध ने कहा था, एक डंडा लेकर नवयुवक ने जोर से मारकर दोनों बर्तनों को तोड़ दिया। तुरंत एक बर्तन का घी पानी की सतह पर आकर तैरने लगा। दूसरे बर्तन के कंकड़-पत्थर बिखर कर तालाब के पैंदे में बैठ गए।

अब बुद्ध ने कहा, 'अच्छा नवयुवक, इतना तो मैंने किया, अब अपने पंडे-पुजारियों को बुलाओ और उनसे कहो कि वे मंत्र पढ़ें और प्रार्थना करें, 'ओ कंकड़-पत्थर! ऊपर आ जाओ, ऊपर आ जाओ, ओ घी! नीचे चले जाओ, नीचे चले जाओ'। देखें, क्या होता है?"

'भंते, आप मुझसे मजाक करने लगे। यह कैसे संभव है, भंते, कंकड़-पत्थर पानी से भारी होते हैं, वे तो पैंदे में ही रहेंगे, वे ऊपर नहीं आ सकते। यह प्रकृति का नियम है। घी पानी से हल्का होता है। यह सतह पर ही रहेगा, यह नीचे नहीं जा सकता, भंते यह प्रकृति का नियम है।'

'नवयुवक, तुम प्रकृति के नियम के बारे में इतना जानते हो, लेकिन तुमने इस प्राकृतिक नियम को नहीं समझा कि यदि तुम्हारे पिता ने जीवन भर कंकड़-पत्थर की तरह भारी काम किये हैं तो वे नीचे ही जायेंगे, उन्हें ऊपर कौन ला सकता है और यदि उनके सारे काम इस घी की तरह हल्के हैं, तो वे ऊपर ही जायेंगे, उन्हें नीचे कौन खींच सकता है?"

प्रकृति के नियम को हम जितनी जल्दी समझ लें और उसके नियम के अनुसार जीवन व्यतीत करना शुरू करें, उतनी ही जल्दी हम अपने दु:ख से बाहर आते हैं।[१]

अध्याय ५

शील पालन

हमारा काम है दुःख के कारणों-- राग, द्वेष तथा मोह को समझकर उन्हें उखाड़ देना। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए बुद्ध ने एक व्यावहारिक मार्ग ढूंढ़ा, उस पर स्वयं चले और उसे लोगों को सिखाया। उन्होंने इस मार्ग को आर्य अष्टांगिक मार्ग कहा।

एक बार इस मार्ग का सरल शब्दों में व्याख्या करने के लिए निवेदन करने पर बुद्ध ने कहा,

सब्बपापस्स अकरणं, कुसलस्स उपसम्पदा।
सचित्तपरियोदपनं, एतं बुद्धान सासनं॥[1]

सारे पाप कर्मों को न करना,
कुशल कर्मों का संपादन करना,
अपने मन को परिशुद्ध करना,
यही बुद्धों की शिक्षा है।

यह एक बहुत स्पष्ट व्याख्या है जो लगता है कि सबको स्वीकार्य है। सभी इससे सहमत हैं कि हमें ऐसे कर्मों से बचना चाहिए जो हानिकारक हैं और ऐसे करने चाहिए जो लाभकारी हैं। लेकिन कैसे यह फैसला करें कि क्या लाभकारी है, क्या हानिकारक है, क्या कुशल है क्या अकुशल है? जब हम ऐसा करने की कोशिश करते हैं तब हम अपने विचारों, पारंपरिक विश्वासों, अपनी प्राथमिकताओं, अपने पूर्वाग्रहों पर निर्भर करते हैं जिनके परिणामस्वरूप हम एक संकीर्ण, सांप्रदायिक परिभाषा देते हैं जो कुछ के लिए स्वीकार्य और दूसरों के लिए अस्वीकार्य होती है। ऐसी संकीर्ण व्याख्या देने की बजाय बुद्ध ने कुशल-अकुशल, पाप-पुण्य की सार्वभौमिक परिभाषा दी। ऐसा काम जो दूसरों को हानि पहुँचाए, जो दूसरों की शांति तथा सामंजस्य को भंग करे, वह पाप और अकुशल कर्म है। ऐसा काम जो दूसरों की सहायता करे, जो उनकी शांति तथा सामंजस्य को बढ़ाए, पुण्य तथा कुशल कर्म है। मन वस्तुतः धार्मिक कर्मकांड करने से, पढ़ने-लिखने से अथवा बौद्धिक व्यायाम करने से पवित्र नहीं होता है अपितु अपनी सच्चाई का

प्रत्यक्ष अनुभव करने तथा दुःखों को उत्पन्न करने वाले संस्कारों को दूर करने के लिए व्यवस्थित रूप से काम करने से होता है।

आर्य अष्टांगिक मार्ग को प्रशिक्षण के दृष्टिकोण से तीन चरणों में बांटा जा सकता है; शील, समाधि, और प्रज्ञा। शील नैतिक अभ्यास है जिसका अर्थ है कायिक तथा वाचिक सभी अकुशल कर्मों से विरति। समाधि एकाग्रता का अभ्यास है जिसका अर्थ है सजगतापूर्वक अपने मन की प्रक्रिया को दिशा देने और उसे नियंत्रित करने की क्षमता का विकास। प्रज्ञा बोधि है, अपने स्वभाव को पवित्र करने वाली अंतर्दृष्टि का विकास।

शील का महत्त्व

जो व्यक्ति धर्म के मार्ग पर चलना चाहता है उसे शील के अभ्यास से प्रारंभ करना चाहिए। यह पहला चरण है जिसके बिना कोई आगे नहीं बढ़ सकता है। हमें उन सभी वाचिक अथवा शारीरिक कर्मों से बचना चाहिए जो दूसरों को हानि पहुँचाते हैं। इसे आसानी से समझा जाता है, टकराव से बचने के लिए समाज को ऐसे आचरण की आवश्यकता पड़ती है। लेकिन वास्तविकता में हम ऐसे कर्मों से बचते हैं क्योंकि ये न केवल दूसरों को हानि पहुँचाते हैं अपितु वे हमें भी क्षति पहुँचाते हैं। एक अकुशल कर्म जैसे अपमान करना, हत्या करना, चोरी करना, बलात्कार करना मन को अशांत किए बिना अथवा गहरे राग-द्वेष के बिना इन्हें करना असंभव है। राग या द्वेष का यह क्षण तत्काल दुःख उत्पन्न करता है, भविष्य में और भी दुःख देता है। बुद्ध ने कहा–

इध तप्पति पेच्च तप्पति, पापकारी उभयत्थ तप्पति।
“पापं मे कत”न्ति तप्पति, भिय्यो तप्पति दुग्गतिं गतो॥

इध नन्दति पेच्च नन्दति, कतपुञ्ञो उभयत्थ नन्दति।
“पुञ्ञं मे कत”न्ति नन्दति, भिय्यो नन्दति सुग्गतिं गतो॥[२]

पाप करने वाला इस लोक में जलता है,
परलोक में भी जलता है।
पुण्यकारी इस लोक में आनंदित होता है और परलोक में भी आनंदित होता है।

हमें स्वर्ग-नरक के परिणामों को भोगने के लिए मृत्यु के बाद के जीवन की प्रतीक्षा करने की आवश्यकता नहीं। हम उनका अनुभव इसी जीवन में अपने

अंदर कर सकते हैं। जब हम अकुशल कर्म करते हैं, हम राग-द्वेष की नरकाग्नि का अनुभव करते हैं। जब हम कुशल कर्म करते हैं तब आंतरिक शांति का स्वर्ग अनुभव करते हैं। अतः यह केवल दूसरों के हित में नहीं है, अपितु अपने हित के लिए भी है कि अपने को हानि से बचाने के लिए वाचिक और कायिक अकुशल कर्मों से बचें।

शील-पालन करने का एक दूसरा कारण भी है। हम अपना निरीक्षण करना चाहते हैं, अपने बारे में तह तक जाकर सच्चाई जानना चाहते हैं। ऐसा करने के लिए एक बहुत शांत और स्थिर मन की आवश्यकता होती है। जब तालाब का जल चंचल और अशांत हो तब उसकी गहराई को देख पाना असंभव है। अंतर्मुखी होने के लिए उद्विग्नता से रहित शांत मन की आवश्यकता होती है। जब कभी कोई अकुशल कर्म करता है, मन क्षोभ से भर जाता है, आप्लावित हो जाता है। जब कोई सभी प्रकार से काया और वाणी के अकुशल कर्मों से दूर रहता है तभी मन के शांत होने की संभावना रहती है, जिससे कि आत्मनिरीक्षण हो सके।

एक और भी कारण है जिससे कि शील अपरिहार्य है। जो धर्म के मार्ग पर चलता है वह सभी दुःखों से मुक्ति के चरम लक्ष्य निर्वाण की प्राप्ति का प्रयास करता है। यह अभ्यास करते हुए वह अपने को ऐसी क्रियाओं में उलझा नहीं सकता जो उसकी उन मानसिक आदतों को बल प्रदान करें जिनका कि वह क्षय करना चाहता है। वह कार्य जो दूसरों को क्षति पहुँचाता है वह अनिवार्यतः राग, द्वेष और मोह से उत्पन्न होता है और ये उनके साथ बने रहते हैं। ऐसे कर्म अष्टांगिक मार्ग पर एक कदम आगे ले जाने की बजाय दो कदम पीछे की ओर ले जाते हैं और लक्ष्य प्राप्ति की प्रगति को विफल कर देते हैं ।

अतः न केवल समाज के हित के लिए अपितु इसके प्रत्येक सदस्य के हित के लिए शील आवश्यक है और वह भी व्यक्ति के केवल लोकहित के लिए ही नहीं अपितु धर्म पथ पर प्रगति के लिए भी।

शील के प्रशिक्षण में आर्य अष्टांगिक मार्ग के तीन अंग आते हैं– सम्यक वाणी, सम्यक कर्मांत और सम्यक आजीविका।

सम्यक वाणी (सम्मावाचा)

वाणी शुद्ध और कुशल होनी ही चाहिए। अकुशलता को दूरकर कुशलता की प्राप्ति होती है। अतः हमें यह समझना आवश्यक है कि अकुशल वाणी क्या है। इसमें शामिल है – झूठ बोलना अर्थात् सच्चाई से कुछ अधिक अथवा कम बोलना, ऐसी मनगढ़ंत कहानियां सुनाना जिनसे मित्रों में झगड़ा हो, चुगलखोरी और निंदा,

कठोर वचन जो दूसरों को अशांत करे और जिससे किसी का कोई भला न हो और बेकार की गप्पबाजी, व्यर्थ का बकवास, बातूनीपन जिससे अपना और दूसरों का समय बर्बाद होता है-- वाणी की इन सभी प्रकार की अकुशलता को दूर करना ही है सम्यक वाणी।

यह कोई नकारात्मक अवधारणा नहीं है। जो सम्यक वाणी का पालन करता है वह बुद्ध के अनुसार--

> सच बोलता है, सच बोलने में दृढ़ रहता है, विश्वसनीय तथा भरोसेमंद होता है, दूसरों के साथ साफ-साफ बात करता है। सच बोलने वाला झगड़े सुलझाता है तथा जो मित्र हैं उनके मेल को बढ़ाता है। सामंजस्य से उसे खुशी होती है, सामंजस्य की चाह में रहता है, सामंजस्य में आनंदित-उल्लसित होता है और अपनी वाणी से सामंजस्य की सृष्टि करता है। उसकी वाणी भद्र, उत्साहित करने वाली, शिष्ट, रुचिकर तथा आनंददायक होती है। वह सही-सही, समय पर धम्म तथा शील सदाचार के अनुसार बहुतों के लिए ऐसी वाणी बोलता है जो काम बनाने वाली हो । उसकी वाणी स्मरणीय, समयानुसार, तर्कसंगत, सुचयनित तथा सृजनात्मक होती है।[३]

सम्यक कर्मांत (सम्माकम्मन्तो)

कर्म भी कुशल होना चाहिए । जिस तरह हमने समझा कि कुशल तथा सत्य वाणी क्या है ऐसे ही हमें यह समझना चाहिए कि अकुशल तथा पापमय कर्म के घटक क्या हैं ताकि हम इनसे बच सकें! ये हैं-- किसी जीवित प्राणी की हत्या, चोरी, यौन दुराचार जैसे बलात्कार अथवा पर-स्त्री गमन और नशाखोरी अर्थात अपना होश खो बैठना, जिससे कि उसे यह होश नहीं रहता है कि वह क्या बोलता है अथवा करता है। चार अकुशल कर्मों से दूर रहना ही सम्यक कर्मांत है, कुशल कर्मांत है।

और फिर यह कोई नकारात्मक अवधारणा नहीं है। शारीरिक सम्यक कर्म के बारे में बुद्ध कहते हैं-- ‘‘डंडे और तलवार को एक ओर रखकर वह इतना सावधान है कि मन से भी किसी की हिंसा नहीं करता है, दयालु होता है, सभी जीवित प्राणियों की भलाई चाहता है, चोरी से विरत रहकर पवित्रता का जीवन जीता है।’’[४]

पंचशील

सांसारिक जीवन से जुड़े सामान्य व्यक्ति के लिए सम्यक वाचा और सम्यक कर्मांत का अर्थ है पंचशील का पालन, जो ये हैं–

१. किसी जीवित प्राणी की हत्या न करना

२. चोरी न करना

३. यौन दुराचार न करना

४. झूठ न बोलना

५. नशे-पते का सेवन न करना

नैतिक सदाचरण के लिए पंचशील का पालन न्यूनतम आवश्यकता है। जो धर्म मार्ग पर चलना चाहते हैं, उन्हें इनका पालन करना ही चाहिए।

अष्टशील

कभी-कभी जीवन में ऐसा अवसर आ सकता है जबकि सांसारिक क्रिया-कलापों को अस्थायी तौर पर, कुछ दिन के लिए ही सही, संभवतः एक ही दिन के लिए, छोड़ना पड़ता है जिससे कि हम अपनी मुक्ति के लिए अपने चित्त को निर्मल बना सकें। ऐसा समय गंभीर धर्म पालन का अवसर होता है। अतः ऐसे अवसर पर अपने सामान्य जीवन की अपेक्षा हमें अपने आचरण के प्रति अधिक सावधान रहना चाहिए। तब फिर ऐसे कर्मों से बचना बहुत महत्त्वपूर्ण है जो आत्मशुद्धि के काम से हमारा ध्यान दूर हटाए अथवा उसमें व्यवधान डाले। इसीलिए ऐसे समय में वह अष्टशील का पालन करता है । इनमें कुछ संशोधन के साथ आधारभूत पंचशील सम्मिलित है। हमें यौन दुराचार से दूर रहने की बजाय सभी प्रकार के यौनाचार से दूर रहना चाहिए। इनके अतिरिक्त हमें विकाल भोजन अर्थात् दोपहर के बाद भोजन नहीं करना चाहिए, सभी प्रकार के ऐंद्रिय आमोद-प्रमोद और शारीरिक साज-शृंगार तथा उच्च विलासी शय्या के प्रयोग से दूर रहना चाहिए। ब्रह्मचर्य पालन की आवश्यकता तथा अतिरिक्त शील-पालन से शांति तथा सजगता को प्रोत्साहन मिलता है जो आत्मदर्शन (आत्मनिरीक्षण) के लिए आवश्यक है और जिसके कारण बाहरी विघ्न-बाधाओं से मन मुक्त रहता है। इस अष्टशील का पालन गहन धर्म-पालन की अवधि में ही किया जाना चाहिए। इस अवधि की समाप्ति पर एक सामान्य गृहस्थ नैतिक आचरण के लिए पंचशील को फिर अपना सकता है।

अंततः दस शीलों का विधान गृहत्यागी, संन्यासी, भिक्षु, भिक्षुणियों के लिए है। इन दस शीलों में प्रथम आठ तो हैं ही और सातवां शील दो भागों में बंटा है अर्थात गृहत्यागी सदैव विकाल भोजन से विरत रहते हैं। एक और शील है, वह है किसी से रुपये पैसे ग्रहण नहीं करना। किसी से धन ग्रहण न करने के शील के साथ, पहले आठ शील सम्मिलित हैं। संन्यासियों को अपना जीवन-यापन केवल

भिक्षा से ही करना चाहिए जिससे कि वे स्वहित तथा परहित के लिए, अपने आपको चित्त विशुद्धि की साधना में पूरी तरह लगा सकें।

ये शील, चाहे पांच हों, आठ या दस, परंपरा द्वारा आदिष्ट केवल थोथे नियम नहीं हैं। वे अक्षरशः साधना– सिद्धि के सोपान एवं अत्यंत व्यावहारिक साधन हैं जो यह सुनिश्चित करते हैं कि वाणी और कर्म से न तो स्वयं की और न औरों की हानि हो सके।

सम्यक आजीविका (सम्माआजीवो)

प्रत्येक व्यक्ति को जीवन-निर्वाह के लिए जीविका का सम्यक साधन होना चाहिए। सम्यक आजीविका के दो मापदंड हैं– पहला यह कि अपने काम में पंचशील तोड़ने की आवश्यकता न हो क्योंकि ऐसा करने से स्पष्टतः दूसरों की हानि होती है। इसके आगे किसी व्यक्ति को कोई ऐसा काम नहीं करना चाहिए जो दूसरों को शील भंग के लिए प्रेरित करे क्योंकि यह भी हानि ही करेगा। न प्रत्यक्ष और न अप्रत्यक्ष रूप से हमारी आजीविका से अन्य प्राणियों की हानि होनी चाहिए। इस प्रकार कोई आजीविका जिसके लिए हत्या करनी पड़े, चाहे मनुष्य या पशु की, स्पष्टतः सम्यक आजीविका नहीं है। लेकिन यदि हत्या कोई अन्य व्यक्ति करता है और हम केवल हत्या किए हुए पशु के अंग जैसे चमड़ी, मांस, अस्थि (हड्डी) आदि का व्यापार करते हैं तो भी यह सम्यक आजीविका नहीं है क्योंकि ऐसी स्थिति में हम दूसरों के अकुशल कर्मों पर निर्भर रहते हैं। शराब अथवा अन्य नशीले पदार्थों को बेचना बहुत लाभकारी हो सकता है, लेकिन यदि कोई स्वयं इनका सेवन नहीं करता है, पर इनको बेचकर दूसरों को इसके सेवन की प्रेरणा देता है जिससे उनकी हानि होती है, जुआ के खेल, केसिनो आदि चलाना बहुत लाभप्रद हो सकता है, लेकिन वहां आकर जुआ खेलने वाले लोग अपनी हानि करते हैं; विष या अस्त्र-शस्त्र, आयुध, बम, मिसाइल बेचना कमाई का धंधा है परंतु इससे अनेक लोगों की शांति और सामंजस्य को बहुत हानि पहुँचती है-- इनमें से कोई भी सम्यक आजीविका नहीं है।

यदि कोई काम प्रत्यक्ष में दूसरों की हानि नहीं भी करता है परंतु यदि दूसरों को हानि पहुँचाने के इरादे से किया जाता है तो यह भी सम्यक आजीविका नहीं है। जो डॉक्टर किसी महामारी की आशा में रहता है या व्यापारी अकाल पड़ने की राह देखता है वह सम्यक आजीविका का पालन नहीं करता है।

प्रत्येक व्यक्ति समाज का सदस्य होता है। हम अपने काम के द्वारा, अपने साथियों की विभिन्न रूप में सेवा कर समाज के प्रति अपने उत्तरदायित्त्व का

निर्वाह करते हैं। इसके बदले में हम अपनी आजीविका प्राप्त करते हैं। एक भिक्षु और संन्यासी भी अपने उचित काम के बदले में भिक्षा प्राप्त करता है। उसका काम है अपने हित तथा अन्य सभी के हित के लिए अपने चित्त को निर्मल करना। यदि वह जादू के चमत्कार दिखाकर अथवा झूठी आध्यात्मिक उपलब्धियों की बात करके दूसरों को धोखा दे और उनका शोषण करने लगे तब वह सम्यक आजीविका का पालन नहीं कर रहा है।

अपने श्रम के बदले हमें जो भी पारिश्रमिक मिलता है वह हमारे और हम पर निर्भर रहने वाले लोगों के निर्वाह के लिए होना चाहिए। यदि इससे कुछ अधिक है तो कम से कम इसका कुछ अंश समाज को लौटा देना चाहिए जिसे दूसरों की भलाई के काम में प्रयोग किया जा सके। यदि हमारा मंतव्य समाज में उपयोगी भूमिका निभाने का है जिससे हमारा स्वयं का निर्वाह हो और दूसरों की सहायता भी हो तब हमारी आजीविका सम्यक है।

विपश्यना साधना शिविर में शील-पालन का अभ्यास

सम्यक वाणी, सम्यक कर्मांत और सम्यक आजीविका का पालन किया जाना चाहिए क्योंकि स्वयं अपने लिए तथा दूसरों के लिए भी इनकी सार्थकता है। विपश्यना ध्यान में शील के इन सभी पक्षों के पालन का अवसर मिलता है। यह अवसर गहन साधना के लिए निर्धारित होता है अतः सभी साधक अष्टशील का पालन करते हैं। फिर भी पहली बार साधना में सम्मिलित होने वाले, अथवा स्वास्थ्य संबंधी किसी प्रकार की कठिनाई वाले साधक को एक छूट दे दी जाती है। उन्हें सायंकाल अल्पाहार की अनुमति है। इस कारण ये लोग औपचारिक रूप से केवल पंचशील का पालन करते हैं, यद्यपि और सब मामलों में वे सचमुच अष्टशील का ही अभ्यास करते हैं।

शील पालन के अतिरिक्त सभी साधक शिविर के अंतिम दिन तक मौन पालन का व्रत लेते हैं। वे अपने आचार्य, धम्मसेवक अथवा शिविर व्यवस्थापक से बात कर सकते हैं परंतु अन्य साधकों से नहीं। इस प्रकार साधना से ध्यान हटने की सभी संभावनाएं बहुत कम हो जाती हैं और लोगों को बिना दूसरों को व्यवधान पहुँचाए एक साथ रहने और काम करने का अवसर मिलता है। इस शांत, एकात परिवेश में आत्मनिरीक्षण की सूक्ष्म साधना करना संभव होता है ।

आत्मनिरीक्षण का काम करने वाले साधक भोजन तथा आवास प्राप्त करते हैं जिनकी लागत दान रूप में दूसरों से मिली होती है। इस प्रकार शिविर काल में वे कमोबेश दूसरों द्वारा दी गई भिक्षा पर निर्भर करते हुए एक वास्तविक एकांतवासी

संन्यासी की तरह रहते हैं । अपनी श्रेष्ठतम क्षमता के अनुसार अपने तथा दूसरों के हित के लिए साधना करते हुए, साधक विपश्यना शिविर में भाग लेकर सम्यक आजीविका का अभ्यास करता है।

शील का अभ्यास धम्म पथ का अनिवार्य अंग है। इसके बिना साधना पथ पर कोई प्रगति नहीं हो सकती क्योंकि चित्त इतना अशांत बना रहेगा कि आंतरिक सत्य की खोज संभव नहीं हो सकेगी। ऐसे लोग भी हैं जो यह सिखाते हैं कि शील के बिना भी आध्यात्मिक उन्नति संभव है। वे लोग जो कुछ भी करते हों, बुद्ध की शिक्षा का अनुसरण नहीं करते। शील का पालन किए बिना विभिन्न प्रकार की एकाग्रता उपलब्ध करना संभव हो सकता है लेकिन इन्हें आध्यात्मिक उपलब्धि मानना एक भूल है। वास्तव में शील पालन किए बिना हम अपने चित्त को दुःखों से कभी मुक्त नहीं कर सकते तथा परम सत्य का अनुभव नहीं कर सकते।

प्रश्नोत्तर –

प्रश्न – 'सम्यक कर्मांत को करना क्या एक प्रकार की आसक्ति नहीं है?'

स. ना. गोयन्का – 'नहीं, यह केवल अपना सर्वोत्तम करणीय है, यह समझते हुए कि फल आपके वश में नहीं है। आप अपना काम करें और फल प्रकृति (निसर्ग) या धम्म पर छोड़ दें, धम्म काम करेगा ।

'तो क्या इसमें गलती करने की इच्छा सम्मिलित नहीं है?'

उत्तर – 'यदि आप कोई गलती करते हैं, तो इसे स्वीकार करें, दूसरी बार इसे न दुहराएं। आप फिर विफल हो सकते हैं, परंतु घबराएं नहीं, मुस्करायें और दूसरा रास्ता अपनाने की कोशिश करें। यदि आप असफल होकर भी मुस्करा सकते हैं तो आप आसक्त नहीं हैं। परंतु यदि आपकी विफलता आपको हताश करती है और सफलता उल्लसित, तब आप निश्चित रूप से आसक्त हैं।'

'तब फिर सम्यक कर्मांत केवल आपका प्रयास है, फल नहीं?'

'फल नहीं। वह स्वतः अच्छा होगा, यदि आपका कर्म अच्छा है। धर्म उसकी चिंता करता है। हममें फल को चुनने की क्षमता नहीं, पर हम अपना कर्म चुन सकते हैं। यथाशक्ति अच्छे से अच्छा कर्म करो।'

'किसी की बिना जाने-बूझे हानि करना क्या अकुशल कर्म है?'

'नहीं, व्यक्तिविशेष को हानि पहुँचाने का इरादा होना चाहिए और वह हानि पहुँचाने का काम पूरा करता है, तभी अकुशल कर्म कहलाता है। अतियों में जाकर शील का पालन नहीं करना चाहिए जो न तो

व्यावहारिक है और न लाभकारी। दूसरी ओर इतना असावधान होना कि उससे दूसरों की हानि हो तो हो, समान रूप से खतरनाक है। फिर आप यह कहकर सफाई देते हैं कि आपका हानि पहुँचाने का इरादा नहीं था। धर्म सजग होना सिखाता है।'

'सही और गलत कामवासना में क्या अंतर है? क्या यह चेतना का प्रश्न है?'

'नहीं, कामवासना का एक गृहस्थ के जीवन में उपयुक्त स्थान है। इसे जबरदस्ती दबाया नहीं जाना चाहिए क्योंकि लादे हुए ब्रह्मचर्य से तनाव उत्पन्न होता है जिससे और समस्याएं, कठिनाइयां बढ़ती हैं। तथापि यदि आप अपनी कामवासना को खुली छूट देते हैं और कामुकतावश किसी के साथ भी संभोग करते हैं तब फिर आप अपने चित्त को कामसवासना से मुक्त नहीं कर सकते । समानरूप से खतरनाक इन दोनों अतियों को छोड़कर धर्म एक मध्यम मार्ग प्रदान करता है, संभोग एक स्वस्थ अभिव्यक्ति है जहां आध्यात्मिक उन्नति की गुंजायश है और वह है एक नर-नारी का यौन संबंध, जो एक दूसरे के साथ प्रतिबद्ध हों। और यदि आपका सहभागी भी विपश्यी साधक है, तब जब कभी कामवासना जागती है आप दोनों तटस्थ भाव से उसका निरीक्षण करते हैं। यह न उसे दबाना हुआ और न खुली छूट देना। देखते-देखते आप सरलतापूर्वक कामवासना से मुक्त हो सकते हैं। कभी-कभी कोई दंपति अब भी यौन संबंध रखना चाहेंगे परंतु धीरे-धीरे एक ऐसे सोपान पर पहुँच जायेंगे जहां कामवासना की कोई सार्थकता नहीं रहेगी। यही वास्तविक और नैसर्गिक ब्रह्मचर्य का सोपान है जबकि चित्त में कामवासना का विचार तक नहीं जागता। यह ब्रह्मचर्यसुख यौन संतुष्टि से कहीं श्रेष्ठतर है। आप सदा संतुष्टि-सामंजस्य का अनुभव करते हैं। हमें इस वास्तविक सुख के अनुभव को सीखना चाहिए।'

'पश्चिम में अनेक लोग यह मानते हैं कि परस्पर सहमति के साथ किन्ही दो वयस्कों के बीच यौन संबंध स्वीकार्य है।'

'यह सोच धर्म से बहुत दूर है। जो व्यक्ति आज किसी एक के साथ यौन संबंध रखता है, फिर दूसरे के साथ और फिर किसी अन्य के साथ, वह अपनी कामवासना को और दुःख को कई गुना बढ़ाता है। आपको किसी एक के साथ प्रतिबद्ध होना चाहिए अथवा ब्रह्मचर्य का जीवन जीना चाहिए।'

'किसी अन्य प्रकार की चेतना या विभिन्न प्रकार की सच्चाइयों के अनुभव के लिए नशा सेवन के बारे में क्या कहेंगे?'

'कुछ साधकों ने मुझे बताया है कि अतींद्रिय संवेदी नशीले पदार्थों के सेवन द्वारा वे ध्यानावस्था में प्राप्त अनुभूति के समान अनुभव से गुजरे। यह सही है या नहीं; नशीले पदार्थ द्वारा उद्दीप्त अनुभूति एक बाहरी साधन पर निर्भरता है। जबकि धर्म आपको अपना स्वामी बनना सिखाता है जिससे कि जब कभी आप चाहें स्वेच्छापूर्वक सत्य की अनुभूति कर सकें । दूसरा महत्त्वपूर्ण अंतर यह है कि नशीले पदार्थों के सेवन से कई लोगों का मानसिक संतुलन बिगड़ जाता है और वे अपनी हानि कर बैठते हैं; धर्म पालन द्वारा सत्यानुभूति से साधक अपनी अथवा किसी अन्य की हानि पहुँचाए बिना अधिक संतुलित होता है।'

'पांचवां शील क्या है– नशीले पदार्थों से दूर रहना अथवा मदहोश नहीं होना? देखा गया है कि बिना मदहोश हुए संयम के साथ पीना खास तौर पर हानिकारक नहीं मालूम पड़ता। अथवा क्या आप यह कहना चाहते हैं कि एक गिलास शराब पीना भी शील भंग है?'

'अल्पमात्रा में भी पीने से, अंत में आप शराब के व्यसन का शिकार हो जाते हैं। प्रारंभ में आप यह अनुभव नहीं करते परंतु शराब पीने के व्यसन की ओर एक कदम आप आगे बढ़ाते हैं जो सचमुच ही आपके और दूसरों के लिए हानिकारक है। प्रत्येक शराबी एक गिलास से ही शुरू करता है। दुःख की ओर (इस एक गिलास से) पहला कदम क्यों उठाएं? यदि आप गंभीरतापूर्वक साधना करते हैं और आप किसी दिन भूल से अथवा किसी सामाजिक समारोह में एक गिलास शराब पी लेते हैं, उस दिन आपको पता चलेगा कि आपकी साधना कमजोर है। नशे का सेवन तथा धर्म का पालन साथ-साथ नहीं होता। यदि आप धर्म में सचमुच आगे बढ़ना चाहते हैं तो आपको सभी नशीले पदार्थों से दूर रहना चाहिए। यह हजारों साधकों का अनुभव है।' दो शीलों– 'विशेषकर यौन-दुराचरण और नशाखोरी को पश्चिमी लोगों को अच्छी तरह समझने की आवश्यकता है।'

'लोग प्रायः कहते हैं– जो अच्छा लगे, वह ठीक है।'

'क्योंकि वे सच्चाई नहीं देखते। यदि आप द्वेष के कारण कोई काम करते हैं तो आपको स्वतः अपने चित्त की अशांति का पता चलता है और यदि राग के वशीभूत होकर आप कोई काम करते हैं तो चित्त की ऊपरी सतह पर इससे खुशी होती है परंतु एक अधिक गहन स्तर पर आप अशांत होते हैं। आपको अज्ञानवश अच्छा लगता है। जब आपको पता चलता है कि

आप इस कर्म के द्वारा कैसे अपनी हानि करते हैं तब स्वाभाविक रूप से आप उसे करना बंद कर देते हैं।'

'क्या मांस खाना शील भंग है?'

'नहीं, जब तक कि आप स्वयं पशु हत्या नहीं करते हैं। यदि आपको मांस परोसा जाता है और आप किसी अन्य खाद्य पदार्थ के समान इसके स्वाद का आनंद उठाते हैं, आपने शील को नहीं तोड़ा है। परंतु इसमें संदेह नहीं कि आपने मांस खाकर अप्रत्यक्ष रूप से किसी अन्य को पशु-हत्या कर शील तोड़ने के लिए प्रेरित किया है। अधिक सूक्ष्म स्तर पर आप मांस खाकर अपनी हानि करते ही हैं। प्रत्येक क्षण जब कोई पशु राग-द्वेष जगाता है, वह अपना निरीक्षण करने और अपने चित्त को शुद्ध रखने में समर्थ नहीं होता है, उसके शरीर का रेशा-रेशा राग-द्वेष से आप्लावित हो जाता है। मांस खाते हुए आप राग-द्वेष के इस निवेश को ग्रहण करते हैं। साधक राग-द्वेष का क्षय करने का प्रयास करता है इसलिए इस प्रकार का भोजन न करने से उसे इस काम में सहायता मिलती है।'

'क्या इसीलिए विपश्यना शिविरों में केवल शाकाहारी भोजन दिया जाता है।'

'हां, क्योंकि विपश्यना साधना के लिए यही सबसे अच्छा है।'

'क्या आप दैनिक जीवन में भी शाकाहारी भोजन की संस्तुति करते हैं?'

'हां, यह भी सहायक है।'

'एक साधक के लिए धनोपार्जन कैसे स्वीकार्य आचरण हो सकता है?'

'यदि आप धर्म पालन करते हैं तो आप धनोपार्जन करते हुए भी प्रसन्न रहेंगे। परंतु यदि आप धनोपार्जन करते हुए धर्म पालन नहीं करते हैं तो सुखी नहीं रहेंगे। धर्म अधिक महत्त्वपूर्ण है। संसार में रहते हुए आपको अपना जीवन निर्वाह करना है। आपको अवश्य ही ईमानदारी और कठोर श्रम द्वारा धनोपार्जन करना चाहिए। इसमें कोई बुराई नहीं, परंतु इसे धर्म के साथ कीजिए।'

'अगर आपके काम का प्रभाव किसी अवस्था में नकारात्मक हो, आप जो काम करते हैं उसका गलत इस्तेमाल किया जाता है तो क्या यह अकुशल आजीविका है?'

'यह आपकी चेतना पर निर्भर है। यदि आपकी चिंता केवल धन संग्रह है; यदि आप सोचते हैं, भले ही लोगों की हानि हो, जब तक मुझे पैसा मिलता है, मुझे कोई चिंता नहीं तो वह अकुशल आजीविका है। परंतु यदि आपकी चेतना सेवा करना है और फिर भी यदि कुछ लोगों की हानि होती है, तो उसके लिए आप दोषी नहीं।'

‘मेरी कंपनी एक उपकरण तैयार करती है जो अन्य चीजों के साथ, आणविक विस्फोट के आंकड़े इकट्ठा करती है। उन्होंने मुझे इसका उत्पादन करने के लिए कहा लेकिन किसी कारण से मुझे यह अच्छा नहीं लगा।’

‘यदि किसी वस्तु का प्रयोग दूसरों को हानि पहुँचाने के लिए ही किया जाता है, निश्चय ही आपको उसमें नहीं लगना चाहिए। लेकिन यदि इसका उपयोग अच्छे और बुरे दोनों उद्देश्यों से किया जा सकता है तो दूसरे इसका क्या उपयोग करते हैं, उसके लिए आप उत्तरदायी नहीं। आप अपना काम इस इरादे से करें कि दूसरे इसका प्रयोग अच्छे प्रयोजन के लिए करेंगे। इसमें कोई बुराई नहीं।’

‘शांतिवाद के बारे में आपका क्या विचार है?’

‘शांतिवाद से यदि आपका अभिप्राय आक्रमण के सम्मुख निष्क्रियता है तो निश्चय ही यह गलत है। धर्म आपको सकारात्मक ढंग से काम करने, व्यावहारिक बनने की शिक्षा देता है।’

‘महात्मा गांधी अथवा मार्टिनलूथर किंग जूनियर द्वारा सिखाए सत्याग्रह का प्रयोग कैसा रहेगा?’

‘यह परिस्थिति पर निर्भर करता है। यदि आक्रमणकारी शक्ति प्रयोग के अतिरिक्त अन्य कोई भाषा नहीं समझता है तब फिर समता के साथ आपको शारीरिक बल का प्रयोग करना ही चाहिए। अन्यथा डर से नहीं बल्कि नैतिक बल के रूप में हम सत्याग्रह का प्रयोग कर सकते हैं। यह धर्म का रास्ता है। और गांधीजी ने लोगों को यही सिखाया। शस्त्रधारी शत्रुओं के आक्रमण का खाली हाथों से सामना करने में साहस की आवश्यकता होती है। ऐसा करने के लिए हमें मरने के लिए तैयार रहना चाहिए। मृत्यु को तो देर-सवेर एक दिन आना ही है, अंतर केवल यह है कि हम भय से अथवा वीरता के साथ मरते हैं। धर्म-मृत्यु भय में नहीं होती । गांधी जी हिंसक विरोध का सामना करने वाले अपने अनुयायियों से कहते थे, ‘आप चोट सीने पर झेलो, पीठ पर नहीं!’ वे अपने धर्मबल के कारण सफल हुए।’

‘आप स्वयं कहते हैं कि शील का पालन किए बिना भी लोग बहुत बढ़िया साधना अनुभव कर सकते हैं। अद्भुत साधनात्मक अनुभूति कर सकते हैं। तब फिर क्या यह कठोर हठधर्मिता नहीं है कि शील-पालन पर इतना जोर दिया जाय?’

‘मैंने अनेक साधकों के मामले में देखा है कि जो लोग शील को महत्त्व नहीं देते हैं वे साधना के पथ पर प्रगति नहीं कर सकते। ऐसे लोग सालों

तक शिविरों में आ सकते हैं और ध्यान में अद्भुत अनुभव प्राप्त कर सकते हैं परंतु उनके दैनिक जीवन में कोई बदलाव नहीं आता है। वे अशांत एवं दु:खी बने रहते हैं क्योंकि वे अन्य खेलों के समान विपश्यना के साथ भी खेल खेलते हैं। वे लोग सचमुच हानि उठाते हैं, व्यर्थ समय खोते हैं। जो लोग धर्म के द्वारा अपने जीवन में भले के लिए परिवर्तन लाना चाहते हैं उनको यथासंभव सावधानीपूर्वक शील का पालन करना ही चाहिए।'

डॉक्टर का नुस्खा

एक आदमी बीमार पड़ता है और सहायता के लिए डॉक्टर के पास जाता है। डॉक्टर उसकी जांच करता है और कुछ दवाइयों का एक नुस्खा लिखकर उसे देता है। वह घर लौटता है और अपने पूजाघर में उस डॉक्टर का एक सुंदर चित्र अथवा प्रतिमा लगा देता है। तब वह बैठकर उस चित्र अथवा प्रतिमा की आराधना करता है और उसे पुष्प, धूप चढ़ाता है। तत्पश्चात वह डॉक्टर के नुस्खे को लेकर उसका विधिवत पाठ करता है– दो गोली सुबह, दो गोली दोपहर, दो गोली शाम। वह सारे दिन, जीवन भर उस नुस्खे का पाठ करता रहे क्योंकि उसके अंदर अपने डॉक्टर के प्रति बहुत आदर भाव है, पर वह नुस्खा उसकी सहायता नहीं करता है।

वह आदमी यह फैसला करता है कि उसे उस नुस्खे के बारे में कुछ और जानकारी होनी चाहिए। वह डॉक्टर के पास दौड़कर जाता है और उससे पूछता है, आपने इस दवा का नुस्खा क्यों लिखा? इससे मेरा क्या लाभ होगा? डॉक्टर होशियार है वह समझाता है,'देखो तुम्हारी यह बीमारी है और तुम्हारी बीमारी का यह मूल कारण है, यह तुम्हारी बीमारी के कारण को दूर कर देगा, जब कारण दूर हो जायगा, बीमारी स्वतः चली जायगी।' वह व्यक्ति सोचता है, 'वाह, अद्भुत, मेरा डॉक्टर कितना बुद्धिमान है, उसका नुस्खा कितना लाभकारी है।' वह घर पहुँचता है तथा अपने पड़ोसियों और परिचितों से लड़ने लगता है, इस आग्रह के साथ कि 'मेरा डॉक्टर सबसे अच्छा डॉक्टर है, बाकी सभी डॉक्टर बेकार हैं।' लेकिन इन दलीलों से उसे क्या मिलता है? वह जीवन पर्यंत झगड़ सकता है पर इससे उसकी कोई सहायता नहीं होती। यदि वह दवा लेता है तभी उसे अपने दुःखों से छुटकारा मिल सकता है। तभी दवा उसकी सहायता कर सकती है।

प्रत्येक मुक्त पुरुष एक डॉक्टर है। वह अपने करुण चित्त से लोगों को नुस्खा देते हुए सत्परामर्श देता है कि वे अपने दुःखों से कैसे मुक्ति प्राप्त करें? अगर लोगों को उसके प्रति अंधविश्वास है, तो वे उस नुस्खे को एक धर्मग्रंथ बना देते हैं और दूसरे संप्रदायों से लड़ना शुरू कर देते हैं कि उनके संप्रदाय संस्थापक की शिक्षा श्रेष्ठ है । परंतु कोई भी उस शिक्षा के पालन की चिंता नहीं करता है और अपनी व्याधि को मिटाने के लिए नुस्खे में लिखी दवा का प्रयोग नहीं करता है।

डॉक्टर के प्रति श्रद्धा ठीक है यदि इससे रोगी को उसकी सलाह मानने की प्रेरणा मिलती है। दवा की क्रिया प्रणाली को समझना लाभकारी है यदि इससे दवा लेने की प्रेरणा मिलती है । परंतु सचमुच में दवा लिये बिना वह रोग-मुक्त नहीं हो सकता। आपको खुद दवा लेनी ही है!

अध्याय ६

समाधि साधना

शील के अभ्यास द्वारा हम अपने वाचिक तथा शारीरिक कर्मों को नियंत्रित करते हैं। तदपि दुःखों का कारण हमारे मानसिक कर्म हैं। केवल अपने वाचिक और कायिक कर्मों को रोकना बेकार है यदि हमारा चित्त राग-द्वेष तथा अकुशल मानसिक कर्मों से उबल रहा है। इस प्रकार अपने अंदर राग-द्वेष के इस द्वंद्व के कारण हम कभी सुखी नहीं हो सकते। देर-सवेर, राग-द्वेष फूट पड़ेंगे, हम शील भंग करेंगे तथा दूसरों की और स्वयं अपनी हानि करेंगे।

बुद्धि के स्तर पर कोई समझ सकता है कि अकुशल कर्म करना गलत है। आखिर, हजारों वर्षों तक प्रत्येक धर्म ने नैतिकता के महत्त्व का उपदेश दिया है। परंतु जब प्रलोभन आता है, यह हमारे मन को अभिभूत कर देता है और हम शील भंग कर बैठते हैं। एक शराबी पूरी तरह जानता है कि उसे शराब नहीं पीना चाहिए क्योंकि शराब उसके लिए हानिकारक है फिर भी जब राग जागता है, वह शराब के लिए जाता है और पीकर मस्त हो जाता है। वह अपने आपको रोक नहीं पाता क्योंकि उसका अपने मन पर नियंत्रण नहीं है। लेकिन जब कोई मानसिक अकुशल कर्मों का निरोध करना सीख लेता है, तब अकुशल वाचिक तथा कायिक कर्मों से बचना आसान हो जाता है।

चूंकि समस्या की जड़ मन में है इसलिए हमें मानसिक स्तर पर इससे जूझना है। ऐसा करने के लिए हमें भावना यानी मानसिक विकास या सामान्य भाषा में ध्यान का अभ्यास करना पड़ेगा। बुद्ध के समय में 'भावना' शब्द का जो अर्थ था वह अब अस्पष्ट हो गया है क्योंकि साधना छूट गई है। हाल के दिनों में किसी भी प्रकार के मानसिक परिष्कार अथवा आध्यात्मिक उन्नति, यहां तक कि पठन, संलाप, श्रवण अथवा धर्म चिंतन के संदर्भ में इसका प्रयोग हुआ है। 'ध्यान' भावना के अत्यंत सामान्य अंग्रेजी अनुवाद का प्रयोग और अधिक अस्पष्ट (धुंधले) अर्थों में अनेकों क्रियाओं जैसे मानसिक शांति, दिवा-स्वप्न, मुक्त साहचर्य तथा स्वयं-सम्मोहन के लिए हुआ है। ये सब बुद्ध के 'भावना' के आशय से कोसों दूर है। उन्होंने इसका प्रयोग विशिष्ट मानसिक साधना, तथा मन को एकाग्र और निर्मल बनाने के लिए एक सुनिश्चित विधि के रूप में किया है।

भावना में समाधि और प्रज्ञा की शिक्षा समाहित है। समाधि के अभ्यास को 'समथ भावना' या प्रश्रब्धि भावना भी कहते हैं।

प्रज्ञा की भावना को 'विपस्सना भावना' या अंतर्दृष्टि भावना कहते हैं। भावना के अभ्यास का आरंभ समाधि के साथ होता है जो आर्य अष्टांगिक मार्ग का दूसरा सोपान है। यह अपने मन का मालिक तथा इस पर नियंत्रण करना सीखने के लिए कुशल कर्म है। इस साधना में अष्टांगिक मार्ग के तीन अंगों का समाहार है– सम्यक व्यायाम, सम्यक स्मृति और सम्यक समाधि।

सम्यक व्यायाम (सम्मावायामो)

सम्यक व्यायाम 'भावना' अभ्यास का प्रथम चरण है। मन बहुत आसानी से मोहाभिभूत हो जाता है, राग-द्वेष से विचलित हो जाता है। किसी प्रकार हमें इसे सुदृढ़ तथा सुस्थिर बनाना है ताकि यह एक अत्यंत उपयोगी उपकरण बन सके जिससे हम अपनी प्रकृति का सूक्ष्मतर स्तर पर निरीक्षण-परीक्षण कर सकें और अपनी दशा को जानकर उसे दूर कर सकें ।

एक डॉक्टर अपने मरीज के रोग के निदान हेतु उसके खून का नमूना लेगा और उसे माइक्रोस्कोप के नीचे रखेगा। नमूने की परीक्षा करने से पहले वह माइक्रोस्कोप को ठीक ढंग से संकेंद्रित (फोकस) कर उसे स्थिर करेगा। तभी खून के नमूने की परीक्षा, रोग के कारण की खोज और रोग को ठीक करने के सही उपचार का निर्धारण संभव है। इसी प्रकार हमें मन को संकेंद्रित (फोकस) कर उसे एक आलंबन पर लगाना सीखना होगा। इस प्रकार हम मन को अपनी सूक्ष्मतम सच्चाइयों के परीक्षण का उपकरण बनाते हैं।

बुद्ध ने मन (चित्त) की एकाग्रता के लिए विविध तकनीकों का विधान किया है। प्रत्येक विधि व्यक्ति विशेष की योग्यता के अनुकूल थी जो बुद्ध के पास साधना सीखने आते थे। अंतर्निहित सच्चाई की खोज के लिए सबसे उपयुक्त तकनीक जिसका अभ्यास बुद्ध ने स्वयं किया, 'आनापान सति' है, सांस के आने-जाने के प्रति जागरूकता।

सांस मन की एकाग्रता प्राप्त करने का एक ऐसा आलंबन है जो हर एक को सहजरूप से उपलब्ध है, क्योंकि हम जन्म से लेकर मृत्यु तक सांस लेते रहते हैं । यह एकाग्रता प्राप्त करने का सार्वभौमिक रूप से उपलब्ध तथा सार्वभौमिक रूप से स्वीकार्य आलंबन है। 'भावना' के अभ्यास के लिए साधक सीधा सुविधाजनक आसन में बैठते हैं, तथा आंखों को बंद करते हैं। उन्हें शांत एकांत कक्ष में बैठना चाहिए जहां ध्यान हटाने का कम से कम कारण हो । बाह्य संसार से आंतरिक संसार की ओर लौटने की प्रक्रिया में साधक पाते हैं कि इसमें सांस लेना सर्वाधिक

महत्त्वपूर्ण क्रिया है, अतः वे सांस पर अपना ध्यान टिकाते हैं, नासिका रंध्र के अंदर सांस के आने और बाहर जाने पर।

यह सांस की कोई कसरत नहीं बल्कि जागरूकता विकसित करने की कसरत है । सांस को नियंत्रित करने का प्रयास नहीं है बल्कि स्वाभाविक रूप से आने-जाने वाली सांस के प्रति जागरूक रहना, उसकी जानकारी रखना, निसर्गतः, उसके प्रति सचेत रहना है। इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं। साधक सांस पर नियंत्रण नहीं करता है परंतु यह जैसी है लंबी या छोटी, भारी या हल्की, स्थूल या सूक्ष्म उसे देखता है। जितनी लंबी अवधि तक संभव हो, बिना किसी व्यवधान के, बिना एकाग्रता को भंग किए, सांस पर ध्यान केंद्रित किया जाना चाहिए।

साधक के रूप में हम तुरंत अनुभव करते हैं कि यह कितना मुश्किल है। हम जैसे ही सांस पर अपना ध्यान केंद्रित करते हैं, पैरों में पीड़ा की परेशानी होने लगती है। जैसे ही हम सभी व्यवधानकारी विचारों को दबाते हैं, मन में हजारों चीजें घुस जाती हैं – पुरानी यादें, योजनाएं, आशाएं, डर इत्यादि। इनमें से कोई एक हमारे ध्यान में आता है और कुछ देर बाद हमें अनुभव होता है कि हम सांस को देखना तो बिल्कुल ही भूल गए तब हम नए निश्चय के साथ फिर देखना शुरू करते हैं और फिर थोड़ी देर बाद हम पाते हैं कि बिना हमारे जाने मन कहीं और चला गया है।

यहां नियंत्रण करने वाला कौन है? जैसे ही कोई यह साधना आरंभ करता है, यह बहुत जल्द स्पष्ट हो जाता है कि मन हमारे नियंत्रण से बाहर है, एक बिगड़ैल बच्चे की तरह जो एक खिलौना उठाता है, उससे जल्द ही ऊब जाता है, फिर दूसरा उठाता है और फिर तीसरा। मन एक विचार से दूसरे विचार की ओर, एक वस्तु से दूसरी वस्तु की ओर सच्चाई से दूर भागता है।

यह मन की बहुत पुरानी आदत है। यह जीवन भर यही करता रहा है। परंतु जब हम अपनी वास्तविक प्रकृति की खोज शुरू करते हैं तब तो मन का भागना रुकना ही चाहिए। हमें अपने मन की आदत को बदलना चाहिए और सच्चाई के साथ रहना सीखना चाहिए। इसकी शुरुआत हम अपने ध्यान को सांस पर केंद्रित रखते हुए करते हैं। जब हम देखते हैं कि मन भटक गया है तब धैर्य के साथ इसे शांतिपूर्वक फिर वापस लाते हैं। हम विफल होते हैं, परंतु फिर-फिर-बार-बार दुबारा प्रयत्न करते हैं। मुस्कराते हुए बिना किसी तनाव के, बिना किसी निराशा के, हम अभ्यास को दुहराते रहते हैं। आखिर जीवनभर की आदतें कुछ मिनटों में नहीं बदलती हैं। इस काम में बार-बार, निरंतर, अनवरत अभ्यास, धैर्य और

शांति की आवश्यकता होती है। इस प्रकार हम सच्चाई के प्रति जागरूकता का विकास करते हैं। यही सम्यक व्यायाम है।

बुद्ध चार प्रकार के सम्यक व्यायाम का आख्यान करते हैं–

पापमय अकुशल कर्मों को उत्पन्न होने से रोकना

उत्पन्न हुए अकुशल कर्मों को दूर करना

अनुत्पन्न कुशल कर्मों को उत्पन्न करना

कुशल कर्मों का क्षय न होने देना, उनका अनुरक्षण करते हुए, उनको विकसित कर उन्हें पूर्णता पर पहुँचाना।[१]

सांस के प्रति जागरूकता का अभ्यास करते हुए, हम सम्यक व्यायाम के सभी चार प्रकारों का अभ्यास करते हैं। हम बैठकर बिना किसी व्यवधानकारक विचार के सांस पर मन को एकाग्र करने का प्रयास करते हैं। ऐसा करके हम आत्म जागरूकता की कुशल अवस्था का आरंभ और उसका अनुरक्षण करते हैं। हम अनमनेपन तथा अन्यमनस्कता में फँसने से अपने को रोकते हैं जिससे सच्चाई से दूर न हों। यदि कोई विचार जाग्रत होता है तो हम उसके बारे में नहीं सोचते अपितु अपना ध्यान फिर सांस पर ले जाते हैं। इस प्रकार हम एक आलंबन पर मन को केंद्रीभूत करने की क्षमता का विकास करते हैं और उसे भटकने से रोकते हैं– समाधि के ये दो अपरिहार्य गुण हैं।

सम्यक स्मृति (सम्मासति)

सांस को देखना सम्यकस्मृति के अभ्यास का भी साधन है। हमारा दुःख अज्ञान से उपजता है। अज्ञान में हम प्रतिक्रिया करते हैं क्योंकि हमें नहीं मालूम कि हम क्या कर रहे हैं। ऐसा इसलिए होता है कि हमें वास्तविक सच्चाई का पता नहीं है। मन अधिकांश समय, भ्रम-भ्रांति में खोया हुआ सुखद-दुःखद अनुभवों को बार-बार जीता है और भय अथवा उत्सुकता के साथ भविष्य का पूर्वानुमान करता है। इन राग-द्वेषों में खोकर हमें इसका ज्ञान नहीं रहता कि इस समय क्या हो रहा है और हम इस समय क्या कर रहे हैं। फिर भी यह समय, यह क्षण, वर्तमान का क्षण हमारे लिए सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण होता है। हम भूतकाल में नहीं रह सकते, वह चला गया। हम भविष्य में भी नहीं रह सकते। ये दोनों हमेशा हमारी पकड़ के बाहर हैं। हम केवल वर्तमान में जी सकते हैं।

यदि हम अपने वर्तमान कर्मों से अनभिज्ञ हैं तब अपनी बीती भूलों को बार-बार दुहराते रहने के लिए बाध्य होंगे और अपने भावी स्वप्नों की पूर्ति में कभी सफल नहीं हो सकते। परंतु यदि हम अपने वर्तमान क्षण के प्रति जागरूकता

की क्षमता का विकास कर सकते हैं तो हम अपने अतीत काल का उपयोग भविष्य के कर्मों को व्यवस्थित करने में कर सकते हैं जिससे कि हमें अपने लक्ष्य की प्राप्ति हो सके।

धर्म 'यहीं और अभी' का मार्ग है। इसलिए हमें अपने वर्तमान क्षण के प्रति जागरूकता की क्षमता का विकास करना ही चाहिए। इस क्षण अपनी स्वयं की सच्चाई पर ध्यान केंद्रित करने के लिए हमें एक तकनीक की आवश्यकता है। यह तकनीक है 'आनापान-सति'। इसके अभ्यास से हमारी 'यहीं और अभी' के प्रति जागरूकता का विकास होता है। इस क्षण सांस अंदर आयी, इस क्षण सांस बाहर गयी । आनापान-सति के अभ्यास से हम अपने वर्तमान क्षण के प्रति जागरूक होते हैं ।

आनापान-सति के विकास का एक दूसरा कारण यह है कि हम परम सत्य की अनुभूति करना चाहते हैं। सांस पर एकाग्रता से हमारे बारे में जो कुछ अज्ञात है उसकी गवेषणा करने में हमें सहायता मिल सकती है, जो कुछ अचेतन है उसे चेतन स्तर पर ला सकते हैं। यह चेतन तथा अचेतन मन के बीच सेतु का काम करती है क्योंकि सांस चेतन तथा अचेतन दोनों अवस्थाओं में क्रियाशील रहती है। हम सांस पर नियंत्रण करने के लिए किसी विशेष प्रकार से यानी धीमी या तेज सांस लेने का फैसला कर सकते हैं। हम कुछ देर के लिए सांस को रोक भी सकते हैं। फिर भी जब हम सांस को नियंत्रित करना बंद कर देते हैं, तब यह बिना प्रेरित किये चलती रहती है।

उदाहरण के लिए आसानी से एकाग्रता प्राप्त करने केलिए हम जान-बूझकर थोड़ा जोर से सांस ले सकते हैं। जैसे ही आनापान-सति स्पष्ट तथा सुस्थिर हो जाती है, हम पुनः सांस को स्वाभाविक रूप से चलने देते हैं फिर चाहे वह जोर से हो या हल्के से, गहरी हो या उथली, लंबी हो अथवा छोटी हो, तीव्र हो अथवा मंद। हम सांस को नियमित करने की कोई कोशिश नहीं करते, कोशिश केवल सांस की जानकारी की होती है। स्वाभाविक सांस की जानकारी बनाए रखने से हम शरीर की स्वतः क्रियाप्रणाली का पर्यवेक्षण करने लगते हैं जो सामान्यतः अचेतन स्तर पर होती है। जान-बूझकर लिये गये सांस की स्थूल सच्चाई का निरीक्षण करते हुए हम स्वाभाविक सांस की सूक्ष्मतर सच्चाई के पर्यवेक्षण तक पहुँच गए हैं। हम सतही सच्चाई से बाहर निकलकर सूक्ष्मतर सच्चाई के प्रति जागरूकता की ओर बढ़ने लगे हैं।

आनापान-सति विकसित करने का एक और भी कारण है। उसके प्रति जागरूक होकर, हम राग, द्वेष तथा मोह से, मुक्ति पाते हैं। इस काम में सांस

सहायता कर सकती है क्योंकि सांस व्यक्ति की मानसिक अवस्था को प्रतिबिंबित करती है । जब मन प्रश्रब्ध और शांत होता है तब सांस नियमित और धीरे-धीरे चलती है परंतु जब मन में विकार जागते हैं, चाहे वह क्रोध, घृणा, भय अथवा कामवासना हो, तो सांस अधिक रूक्ष, उग्र, भारी और तेज हो जाती है। इस प्रकार हमारी सांस हमारी मानसिक अवस्था के प्रति हमें सावधान करती है जिसके कारण हम इससे निपटने में समर्थ होते हैं।

आनापान-सति विकसित करने का एक और भी कारण है। चूंकि हमारा लक्ष्य मन को विकारों से मुक्त करना है, हमें इस बात के लिए सावधान रहना चाहिए कि इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए उठने वाला प्रत्येक कदम पवित्र और कुशल हो। समाधि-विकास की प्रारंभिक अवस्था में भी हमें एकाग्रता प्राप्त करने के लिए ऐसे आलंबन का प्रयोग करना चाहिए जो कुशल हो। सांस ऐसी ही एक वस्तु है। सांस के प्रति हमारा कोई राग-द्वेष नहीं और सांस भ्रम अथवा भ्रांति से रहित एक सच्चाई है। अतः एकाग्रता प्राप्त करने का यह एक उपयुक्त आलंबन है।

सांस पर पूर्ण एकाग्रता प्राप्त करने के समय मन राग, द्वेष और मोह से मुक्त होता है । फिर चाहे यह पवित्रता का क्षण कितना ही छोटा क्यों न हो, यह बहुत शक्तिशाली होता है जो हमारे सारे पुराने संस्कारों को चुनौती देता है। सभी संगृहीत संस्कार झकझोरे जाने पर अनेक शारीरिक तथा मानसिक कठिनाइयों के रूप में उभरने लगते हैं, जो हमारी जागरूकता के विकास के प्रयास को अवरुद्ध करते हैं। हम अपनी प्रगति के लिए अधीर हो सकते हैं जो एक प्रकार का राग है अथवा क्रोध और हताशा के रूप में द्वेष की उद्भावना हो सकती है क्योंकि प्रगति बहुत धीमी लगती है। कभी-कभी आलस हमें अभिभूत करता है और ध्यान के लिए बैठते ही हम झपकी लेने लगते हैं; कभी-कभी हम इतने उद्विग्न हो जाते हैं कि हम बेचैनी अथवा ध्यान से बचने का बहाना ढूंढ़ते हैं । कभी-कभी विचिकित्सा (संदेह) साधना के संकल्प की क्षति करती है, जैसे– आचार्य, विद्या अथवा साधना के प्रति, अथवा अपनी क्षमता के संबंध में आधारहीन विचिकित्सा (संदेह) से भी बाधा पहुँचती है। अचानक इन समस्याओं का सामना करने पर हम साधना को बिल्कुल ही छोड़ने पर विचार कर सकते हैं।

ऐसे क्षणों में हमें समझ लेना चाहिए कि ये बाधाएं सांस के प्रति जागरूकता के अभ्यास में हमारी सफलता की प्रतिक्रियास्वरूप उत्पन्न हुई हैं। यदि हम अभ्यास करते ही रहेंगे, अध्यवसायी बने रहेंगे तो वे धीरे-धीरे गायब हो जायेंगी। ऐसा होने पर काम आसान हो जाता है क्योंकि अभ्यास की इस आरंभिक अवस्था में भी मानस की ऊपरी सतह से संस्कारों की कुछ परतें उखाड़ दी गयी रहती हैं। इस

प्रकार सांस की जागरूकता का अभ्यास करने से भी हम अपने मन को स्वच्छ करने लगते हैं और मुक्ति के पथ पर आगे बढ़ते हैं।

सम्यक समाधि (सम्मासमाधि)

सांस पर ध्यान केंद्रित करने से वर्तमान क्षण की जागरूकता का विकास होता है। क्षण-प्रति-क्षण की इस जागरूकता को यथासंभव लंबे से लंबे क्षण तक बनाए रखना सम्यक समाधि है।

सामान्य जीवन के दैनिक क्रियाकलापों में भी समाधि की आवश्यकता होती है। लेकिन यह आवश्यक रूप से सम्यक समाधि नहीं है। एक व्यक्ति अपनी ऐंद्रिय कामनाओं की पूर्ति अथवा भय को पहले से ही निवारण के लिए ध्यान कर सकता है। एक बिल्ली अपना सारा ध्यान चूहे के बिल पर केंद्रित करती हुई इस तैयारी में प्रतीक्षा करती है कि जैसे ही चूहा बाहर निकले, उस पर झपट पड़े; एक जेबकतरा अपने शिकार का बटुआ हड़पने के इरादे से मौके का इंतजार करता है। सोया बच्चा रात को अपने कमरे के सबसे अंधेरे कोने की ओर इस ख्याल से घूरता है कि वहां कोई भूत छिपा है। इनमें से कोई भी समाधि नहीं है, वह समाधि जिसका प्रयोग मुक्ति के लिए किया जा सके। समाधि में हमारा ध्यान एक ऐसी वस्तु पर केंद्रित होना चाहिए जो सभी प्रकार के राग, द्वेष और मोह से मुक्त हो।

आनापान-सति का अभ्यास करते हुए हम पाते हैं कि बिना टूटे ध्यान की निरंतरता को बनाए रखना कितना कठिन है। सांस पर ध्यान केंद्रीभूत करने के दृढ़ संकल्प के बाबजूद मन बिना बताए चुपके से दूर खिसक जाता है। हम अपने को मदोन्मत्त व्यक्ति की तरह पाते हैं जो सीधी रेखा में चलने की कोशिश करता है लेकिन उसके पैर इधर-उधर बहकजाते हैं। हम सचमुच ही अपने मोह और भ्रम से मदमस्त हैं । इसलिए हम भूत अथवा भविष्य, राग अथवा द्वेष के बीच भटकते रहते हैं। हम सतत, अविच्छिन्न जागरूकता के ऋजु (सीधे) मार्ग पर नहीं रह पाते।

साधक के रूप में यह हमारी अक्लमंदी होगी कि जब कठिनाइयां आती हैं, हम हताश अथवा निरुत्साहित न हों। इसकी बजाय हमें यह समझना चाहिए कि वर्षों से पड़ी मानसिक आदतों को बदलने में समय लगता है। यह केवल बारंबार, लगातार, धैर्यपूर्वक, दृढ़तापूर्वक काम करने से ही हो सकता है। जैसे ही हम जानें कि वह भटक गया है हमारा काम केवल मन को सांस पर फिर से वापस लाना है,। यदि हम ऐसा कर सकते हैं तो हमने भटकने वाले मन को बदलने की दिशा में महत्त्वपूर्ण कदम उठा लिया है। लगातार अभ्यास से अपनी सजगता को और

अधिक जल्दी वापस लौटाना संभव हो जाता है। यों धीरे-धीरे भटकने की अवधि छोटी होती जाती है और निरंतर अविच्छिन्न जागरूकता की अवधि लंबी होती जाती है।

जैसे-जैसे समाधि दृढ़तर होती है हम शांत और प्रसन्न होते हैं और ऊर्जा से भरपूर होने का अनुभव करने लगते हैं। धीरे-धीरे सांस बदलने लगती है, कभी मंद, कभी नियमित, कभी उथली और कभी ऐसा भी समय आता है जब लगता है कि सांस बिल्कुल रुक गयी है। वास्तव में जैसे ही मन शांत हो जाता है, शरीर भी शांत हो जाता है और चयापचय (जीवन को बनाये रखने के लिए रासायनिक क्रिया) धीमा पड़ जाता है जिससे आक्सीजन की जरूरत कम हो जाती है।

इस अवस्था में आनापान-सति का अभ्यास करने वाले कुछ साधकों को आंख बंद कर बैठने पर प्रकाश, दिव्य-दर्शन, अद्भुत ध्वनि सुनने आदि का असाधारण अनुभव हो सकता है। ये तथाकथित अतींद्रिय अनुभव केवल इस तथ्य के संकेतक हैं कि मन ने समाधि की ऊंची अवस्था प्राप्त कर ली है। अपने आप में ये घटनाएं कोई महत्त्व नहीं रखतीं और न ही उन पर विशेष ध्यान देना चाहिए। जागरूकता का आलंबन सांस ही बनी रहती है। इसके अतिरिक्त कोई भी वस्तु विघ्न-बाधा ही है। हमें ऐसे अनुभवों की आशा भी नहीं करनी चाहिए। कुछ मामलों में ऐसा होता है और कुछ में नहीं। ये सभी असाधारण अनुभव केवल मील के पत्थर हैं जो साधना पथ पर हमारी प्रगति की सूचना देते हैं। कभी-कभी मील के ये पत्थर हमारी दृष्टि से ओझल रहते हैं, अथवा साधना में हमारी इतनी तल्लीनता होती है कि हम इनपर बिना कोई ध्यान दिए प्रगति के पथ पर आगे बढ़ जाते हैं। लेकिन यदि हम इन मील के पत्थरों को अपना चरम लक्ष्य मानकर उनसे चिपकेंगे तो हमारी प्रगति बिल्कुल ही अवरुद्ध हो जाती है। आखिर में ऐसे असंख्य असाधारण अतींद्रिय अनुभव हमें होते हैं। साधना करने वाले साधक ऐसे अनुभवों की अपेक्षा नहीं करते बल्कि अपनी प्रकृति की वास्तविकता जानने की कामना करते हैं जिससे कि उन्हें दु:खों से मुक्ति मिल सके।

अत: हम केवल सांसों पर ध्यान केंद्रित करते रहते हैं। जैसे-जैसे मन अधिक एकाग्र होता है, सांस सूक्ष्म, सूक्ष्मतर होती जाती है और उसे पकड़ना कठिन हो जाता है। इस कारण एकाग्र बने रहने के लिए और अधिक प्रयास करना पड़ता है। इस प्रकार हम अपने मन पर शान चढ़ाना/धार देना जारी रखते हैं, ध्यान को अधिक तीक्ष्ण बनाते हैं जिससे कि यह सतही सच्चाई का अतिक्रमण कर अपने अंदर की सूक्ष्मतम सच्चाई को जानने के लिए कारगर उपकरण बन सके।

एकाग्रता बढ़ाने के लिए अन्य अनेक तकनीक भी हैं। किसी को एक शब्द पर ध्यान केंद्रित करने के लिए उसे बार-बार दुहराने के लिए कहा जाता है या किसी मूर्ति पर ध्यान केंद्रित करने के लिए उसे बार-बार लगातार देखने को कहा जाता है अथवा कोई एक विशेष शारीरिक क्रिया को बार-बार करने को कहा जा सकता है। ऐसा करने में वह व्यक्ति अपने ध्यान के आलंबन में तल्लीन हो जाता है और समाधि की परमानंद अवस्था प्राप्त करता है। निस्संदेह यह अवस्था जब तक बनी रहती है, बहुत आनंददायक होती है लेकिन जब यह समाप्त हो जाती है वह अपने आपको सामान्य जीवन की उन्हीं पहले जैसी समस्याओं में फिर उलझा पाता है। यह तकनीक मन की सतह पर शांति तथा खुशी की एक परत का विकास करती है परंतु गहन स्तर पर हमारे मन के पुराने संस्कार अछूते पड़े रहते हैं। इन तकनीकों में प्रयुक्त ध्यान के आलंबन हमारी क्षण-प्रति-क्षण की सच्चाई से संबंध नहीं रखते। इसमें जिस परमानंद की प्राप्ति होती है, वह आरोपित, इरादतन कृत्रिम होती है न कि शुद्ध निर्मल चित्त से स्वतः स्फूर्त। सम्यक समाधि आध्यात्मिक नशा नहीं हो सकती है। इसे सभी प्रकार की कृत्रिमताओं और भ्रांतियों से मुक्त होना चाहिए।

बुद्ध की शिक्षा में भी ध्यान की अनेक अवस्थाएं हैं जिनकी प्राप्ति की जा सकती है। स्वयं बुद्ध को संबोधि प्राप्त करने से पहले समाधि की आठ अवस्थाओं की शिक्षा मिली थी और वे उनका अभ्यास करते रहे। फिर भी वे समथ समाधियां उन्हें मुक्ति नहीं प्रदान कर सकीं। इसलिए जब वे स्वयं समाधि की शिक्षा देने लगे उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि वे केवल अंतर्दृष्टि (प्रज्ञा) विकास के सोपान हैं। साधक समाधि की क्षमता का विकास परमानंद अथवा आनंदातिरेक के अनुभव के लिए नहीं करता है। वह अपने मन को एक ऐसे उपकरण के रूप में तैयार करता है जिससे अपनी सच्चाई की गवेषणा की जा सके और उन सब संस्कारों को दूर किया जा सके जो उनके दुःख के मूल कारण हैं। यही सम्यक समाधि है।

प्रश्नोत्तर

प्रश्न – 'आप साधकों को आनापान के अभ्यास में नासिकाछिद्र पर ध्यान केंद्रित करने के लिए क्यों कहते हैं, पेट पर क्यों नहीं?'

स. ना. गोयन्का – 'क्योंकि हम विपश्यना की तैयारी के लिए आनापान का अभ्यास करते हैं और इस प्रकार की विपश्यना में विशेष प्रभावशाली ध्यान की आवश्यकता होती है। ध्यान का क्षेत्र जितना सीमित होगा,

ध्यान उतना ही अधिक प्रभावशाली होगा। इस मात्रा में ध्यान के विकास के लिए पेट बहुत बड़ा क्षेत्र है। सर्वाधिक उपयुक्त स्थान नासिकाछिद्र ही है। इसीलिए बुद्ध ने इस स्थान पर ध्यान केंद्रित करने का निर्देश दिया।'

आनापान-सति का अभ्यास करते हुए क्या सांसों की गिनती करने अथवा सांसों के अंदर आने पर 'अंदर' और बाहर जाने पर 'बाहर' कहने की अनुमति है?

नहीं, लगातार शब्द प्रयोग नहीं होना चाहिए। यदि आप सारे समय शब्द को जागरूकता के साथ जोड़ते हैं तो धीरे-धीरे शब्द प्रमुख हो जाएगा और आप सांस को बिल्कुल भूल जाएंगे। तब आप सांस अंदर लेंगे या बाहर निकालेंगे, आप 'अंदर' बोलेंगे और सांस बाहर निकालेंगे या अंदर लेंगे, 'बाहर' बोलेंगे। शब्द मंत्र बन जाएगा। यहां तो सांस के साथ, मात्र सांस के साथ बने रहिए, इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं।

मुक्ति के लिए समाधि (समथ) पर्याप्त क्यों नहीं है?

क्योंकि समाधि (समथ) में मन की शुद्धता की प्राप्ति मन को दबाने से होती है, संस्कारों के उन्मूलन से नहीं। यह ऐसा ही है जैसे कोई टंकी का गंदा पानी फिटकरी से साफ करे। फिटकरी पानी में घुले कीचड़ के कणों को टंकी के तल पर पहुँचा कर पानी को स्फटिक-स्वच्छ बना देती है। इसी प्रकार समाधि मन की ऊपरी सतहों को स्फटिक-स्वच्छ बना देती है, पर गंदगी का ढेर अचेतन में पड़ा रहता है। मुक्ति प्राप्ति के लिए इस प्रच्छन्न गंदगी को हटाया ही जाना चाहिए और चित्त की गहराई से इस दबी गंदगी को हटाने के लिए विपश्यना का अभ्यास आवश्यक है।

क्या अतीत और भविष्य को बिल्कुल भुलाकर केवल वर्तमान क्षण पर ध्यान देना हानिकारक नहीं है? क्या यह पशु के जीने का तरीका नहीं है? वास्तव में जो अतीत को भुला देता है वह उसे फिर दुहराने का दोषी है।

यह तकनीक आपको अतीत को पूर्णतः भुला देने अथवा भविष्य की चिंता न करने की शिक्षा नहीं देगी। परंतु मन की वर्तमान आदत लगातार अतीत की यादों, तृष्णाओं, भविष्य की योजनाओं अथवा भविष्य के भय में निमज्जित होने और वर्तमान से अनभिज्ञ रहने की है। यह अस्वस्थकारी आदत जीवन को दुःखी बनाती है। ध्यान से आप दृढ़तापूर्वक वर्तमान सच्चाई में जमे रहते हैं। इस ठोस आधार पर आप भूतकाल से आवश्यक मार्गदर्शन ले सकते हैं और भविष्य की उचित व्यवस्था कर सकते हैं।

मैं पाता हूं कि ध्यान करते हुए जब मन भटकता है, एक तृष्णा जाग उठती है और फिर मैं सोचता हूं कि मुझे तृष्णा नहीं करनी है। फिर भी तृष्णा करता हूं और अशांत हो उठता हूं। ऐसी स्थिति से मुझे कैसे निपटना चाहिए?

तृष्णा के कारण अशांत क्यों होते हैं ? केवल इस तथ्य को आप स्वीकार करें, 'देखो, तृष्णा जागी है'; बस इतना ही। और आप इससे बाहर आ जाएंगे। जब-जब आप देखें कि मन भटक गया है, तब-तब इसे स्वीकार करें, कि 'देखो, मन भटक गया है' और तब यह स्वतः सांस पर वापस आ जाएगा। इस बात से तनाव उत्पन्न न करें कि तृष्णा क्यों जागी है अथवा मन भटक गया है। यदि आप ऐसा करते हैं तो आप नया द्वेष पैदा करते हैं। बस इसे स्वीकार करें। यह स्वीकृति काफी है।

बौद्ध ध्यान तकनीक पहले ही से 'योग' में मिलती है। बुद्ध द्वारा उपदिष्ट ध्यान में वस्तुतः क्या नई चीज थी?

जिसे आज हम योग कहते हैं वह उत्तरकालीन विकास है। पतंजलि बुद्ध से लगभग ५०० वर्ष बाद हुए और स्वाभाविक रूप से योग सूत्र पर बुद्ध की शिक्षाओं का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। इसमें संदेह नहीं कि बुद्ध के पहले भी भारत में यौगिक अभ्यास ज्ञात था। बुद्ध ने स्वयं बोधि प्राप्त करने के पहले इनका अभ्यास किया था। फिर भी ये सारे अभ्यास केवल शील और समाधि तक सीमित थे, आठवें ध्यान तक की समाधि, तन्मयता का सर्वोच्च सोपान है जो ऐंद्रिय अनुभूति का ही क्षेत्र है। बुद्ध को नवें ध्यान की प्राप्ति हुई, जिसे विपश्यना कहते हैं, अंतर्दृष्टि प्रज्ञा का विकास जो साधक को सभी ऐंद्रिय अनुभूतियों से परे उसके चरम लक्ष्य तक ले जाती है।

मैं पाता हूं कि मैं बहुत जल्दी दूसरे लोगों को छोटा समझने लगता हूं। इस समस्या के समाधान का सबसे अच्छा तरीका क्या है?

ध्यान करते हुए इस पर काम करें। यदि अहं बहुत प्रबल है तो वह दूसरों को छोटा समझेगा, उनके महत्त्व को कम और अपने महत्त्व को अधिक आंकेगा। परंतु ध्यान वस्तुतः अहं को पिघला देगा। जब यह पिघल जायगा, तब आप दूसरों को चोट पहुँचाने के लिए कुछ नहीं करेंगे। काम करेंगे तब समस्या स्वतः सुलझ जाएगी।

कभी-कभी मैंने जो किया है उसके लिए अपराधी अनुभव करता हूं।

अपराधी अनुभव करने से कोई सहायता नहीं मिलेगी, बल्कि इससे केवल हानि होगी। धर्म के रास्ते पर अपराध बोध के लिए कोई स्थान नहीं। जब

आप अनुभव करोगे कि आपने गलत ढंग से काम किया है, तो बिना इसका न्यायीकरण किए अथवा बिना छिपाए केवल जो कुछ हुआ है, उस तथ्य को स्वीकार करो। आप अपने किसी आदरणीय व्यक्ति के पास जाकर उससे कहो, 'मैंने यह गलती की है। भविष्य में इससे सावधान रहूंगा ताकि इसे न दुहराऊं।' और फिर ध्यान करो। आप पाओगे कि आप अपनी कठिनाई से बाहर आ सकते हो ।

मैं अहं को क्यों बढ़ाता जाता हूं। मैं 'मैं' को बनाए रखने का प्रयत्न क्यों करता हूं?

हमारा ऐसा संस्कार अज्ञान के कारण बन गया है। परंतु विपश्यना इस हानिकारक संस्कार से आपको मुक्त कर सकती है। सदा अपने बारे में सोचने की जगह दूसरों के बारे में सोचना सीखो।

यह कैसे होता है?

पहला कदम यह जानना है कि व्यक्ति कितना स्वार्थी और अहंकेंद्रित है। जब तक कोई इस सत्य को समझता नहीं है, वह आत्मरति के पागलपन से उबर नहीं सकता। आप जितना अधिक अभ्यास करोगे आप समझोगे कि दूसरों के प्रति आपका प्यार वास्तव में अपने प्रति प्यार है। आप समझोगे, 'मैं किसे प्यार करता हूं? मैं किसी को प्यार इसलिए करता हूं कि मैं उससे कुछ उम्मीद रखता हूं। मैं उससे उम्मीद करता हूं कि वह मेरी पसंद के अनुसार व्यवहार करे। जिस क्षण वह उससे भिन्न व्यवहार करने लगता है, मेरा सारा प्यार चला जाता है। तब क्या हम उस व्यक्ति को प्यार करते हैं या अपने आपको करते हैं?' इसका स्पष्ट उत्तर बौद्धिकता से नहीं, आपके विपश्यना अभ्यास से मिलेगा। और एक बार जब आपको इसका प्रत्यक्ष अनुभव होगा, आप अपने स्वार्थ से बाहर आने लगोगे। तब दूसरों के प्रति आप सच्चे प्यार का विकास करना सीखोगे, जो स्वार्थहीन है, एक ही दिशा की ओर जाने वाला ट्रैफिक (यातायात) है: बदले में कुछ मिलने की उम्मीद के बिना देना और केवल देना।

मैं एक ऐसे क्षेत्र में काम करता हूं जहां सड़क पर जीवन निर्वाह करने वाले बहुत सारे लोग रहते हैं, वे अपना हाथ फैलाकर कुछ मांगते हैं।

तो ऐसा पश्चिम में भी होता है? मैंने सोचा कि भिखमंगे केवल गरीब देशों में हैं।

मैं जानता हूं कि इनमें से अनेक नशाखोरी करते हैं। मैं समझता हूं कि उन्हें पैसे देना उनकी नशाखोरी को बढ़ाना है।

इसलिए आपको ध्यान रखना चाहिए कि आप जो दान देते हैं उसका उचित उपयोग हो, अन्यथा इससे किसी की सहायता नहीं होती है। ऐसे लोगों को पैसा देने की बजाय यदि उन्हें नशाखोरी से बाहर निकलने में उनकी सहायता करते हैं तो आप उनकी सच्ची सेवा करते हैं। इसलिए आप जो कुछ भी करें, सोच-समझकर करें।

जब आप 'सुखी हो' कहते हैं तो उसका दूसरा पहलू होता है, 'दुःखी हो' ।

'दुःखी क्यों हो? दुःख से बाहर निकलो।'

ठीक है, लेकिन मैं सोचता था कि हम संतुलन के लिए कर रहे थे।

संतुलन आपको सुखी बनाता है । यदि आप असंतुलित हो, तब दुःखी हो; संतुलित हो तो सुखी हो!

मैंने सोचा कि यह 'संतुलित हो, कुछ न हो'।

नहीं, नहीं। संतुलन आपको सुखी बनाता है, 'कुछ नहीं' नहीं बनाता, संतुलित मन के साथ आप सकारात्मक बनते हैं।

टेढ़ी खीर

दो किशोर लड़के जो बहुत गरीब थे, शहर और गाँव में घर-घर भोजन के लिए भीख मांग कर अपना जीवन-यापन करते थे। उनमें से एक जन्म से अंधा था, दूसरा उसकी सहायता करता था। इस प्रकार वे दोनों, भीख मांगने के लिए एक साथ घूमते-फिरते चक्कर लगाते।

एक दिन अंधा लड़का बीमार पड़ गया। उसके साथी ने कहा 'यहीं रुको और आराम करो।, मैं दोनों के लिए भीख मांगने जाऊंगा और तुम्हारे लिए भोजन लेकर वापस आऊंगा।' और वह भीख मांगने के लिए चला गया।

उस दिन ऐसा हुआ कि उस लड़के को भीख में बहुत स्वादिष्ट खीर मिली। उसने खीर पहले कभी नहीं खाई थी। उसे खीर खाने में बड़ा मजा आया। लेकिन दुर्भाग्य से उसके पास कोई पात्र नहीं था जिसमें वह अपने मित्र के लिए तरल खीर ला पाता। इसलिए वह सारी खीर खा गया।

जब वह अपने साथी के पास वापस पहुँचा, उसने कहा, 'मुझे बहुत अफसोस है, आज मुझे एक अद्भुत स्वादिष्ट भोजन, दूध से बनी खीर मिली, लेकिन मैं उसे तुम्हारे लिए नहीं ला सका।'

अंधे लड़के ने उससे पूछा, 'यह दूध से बनी खीर क्या है?'

'यह सफेद होती है, दूध जैसी सफेद होती है।'

जन्म से अंधा होने के कारण वह यह समझ न सका कि 'सफेद क्या होता है।'

'तुम्हें पता नहीं, सफेद क्या होता है?'

'नहीं, मुझे नहीं पता।'

'यह काला का उल्टा होता है।'

'पर काला क्या होता है?' वह यह भी नहीं जानता था कि काला क्या होता है'।

'ओह, सफेद को समझने की कोशिश करो। परंतु वह अंधा लड़का कुछ नहीं समझ सका। इसलिए उसके मित्र ने अपने चारों ओर देखा और एक सफेद बगुला देखकर उस पक्षी को पकड़ लाया और उस अंधे लड़के के पास लाकर उससे कहा, 'सफेद इस पक्षी की तरह होता है।' आंख न होने के कारण, अंधा

लड़का पक्षी के पास जाकर उसे अपनी अंगुलियों से छूने लगा। 'ओह, अब मैं समझा कि सफेद क्या होता है। यह मुलायम होता है।'

'नहीं, बिल्कुल नहीं, सफेद का मुलायम से कोई लेना-देना नहीं, सफेद, सफेद है। इसे समझने की कोशिश करो।'

'लेकिन तुमने मुझे बताया कि यह इस बगुले के समान होता है । मैंने बगुले को देखा-जांचा, यह मुलायम है। इसलिए दूध की खीर मुलायम है। सफेद माने मुलायम है।'

'नहीं', तुमने समझा नहीं, फिर कोशिश करो'।

अंधे लड़के ने अपनी अंगुलियां बगुले के चोंच से गर्दन, शरीर, पूंछ के सिरे तक घुमाकर उसे फिर से देखा-परखा। 'अच्छा, अब मैं समझ गया। यह टेढ़ी है, खीर टेढ़ी है।

वह समझ नहीं सकता क्योंकि उसके पास सफेद को समझने की इंद्रिय नहीं है। उसी प्रकार यदि आपके पास सच्चाई को यथाभूत रूप में अनुभव करने की इंद्रिय नहीं है, आपके लिए यह हमेशा टेढ़ी रहेगी।

अध्याय ७

प्रज्ञा साधना

बुद्ध की शिक्षा में शील और समाधि कोई नई बात नहीं थी। उनकी संबोधि प्राप्ति के पहले भी ये दोनों ज्ञात थीं और उनका अभ्यास किया जाता था। वस्तुतः मुक्ति के मार्ग की खोज में उनके दो गुरुओं ने उन्हें समाधि का प्रशिक्षण दिया था जिनके पास वे विद्या प्राप्त करने गये थे। जहां तक बुद्ध के शील और समाधि के उपदेश देने की बात है, उनका परंपरागत गुरुओं से कोई मतभेद नहीं था। सभी धर्म नैतिक आचरण की आवश्यकता पर जोर देते हैं और परमानंद अवस्था की प्राप्ति की संभावना को प्रस्तुत करते हैं। फिर चाहे वह प्रार्थना, कर्मकांड या व्रत-उपवास से तथा अन्य तपस्याओं अथवा ध्यान की विभिन्न विधियों के द्वारा प्राप्त हो। इन साधनाओं का लक्ष्य केवल गहन समाधि की प्राप्ति है। यह वह 'आनंदातिरेक' है जिसका अनुभव धार्मिक रहस्यवादी करते हैं।

ऐसी एकाग्रता का विकास समाधि के इस स्तर तक यदि नहीं भी होता हो तो भी यह सामान्य सुख-प्राप्ति में बहुत सहायक है। वह ऐसी स्थितियों में हमारे ध्यान को मोड़कर मन को प्रशांत बनाती है जबकि वह राग-द्वेष की प्रतिक्रिया कर रहा होता है। क्रोध के विस्फोट को रोकने के लिए धीरे-धीरे दस तक की गिनती करना समाधि का एक प्राथमिक रूप है। संभवतः अन्य साधन अधिक स्पष्ट हों जैसे कि किसी शब्द अथवा मंत्र को बार-बार दुहराना अथवा किसी दृश्यमान पदार्थ पर ध्यान को एकाग्र करना। वे सभी काम में आते हैं– जब हमारा ध्यान किसी अन्य विषय की ओर मोड़ा जाता है, मन शांत प्रतीत होता है।

फिर भी इस प्रकार की शांति, वास्तविक मुक्ति नहीं है। समाधि का अभ्यास वस्तुतः बहुत लाभ पहुँचाता है। परंतु यह मन के केवल चेतन स्तर पर काम करता है । आधुनिक मनोविज्ञान के आविष्कार से लगभग २,५०० वर्ष पहले बुद्ध ने अचेतन मन की सत्ता का अनुभव किया जिसे उन्होंने 'अनुशय' कहा। उन्होंने पाया कि ध्यान को मोड़ना चेतन स्तर पर राग-द्वेष से निपटने का एक प्रभावकारी मार्ग है परंतु वस्तुतः यह उन्हें दूर नहीं करता। इसकी बजाय यह उन्हें अचेतन की गहराई में धकेल देता है जहां वे प्रसुप्त रहते हुए भी सदा वैसे ही खतरनाक बने रहते हैं। हमारे मन की गहराई में दमित नकारात्मकता का ज्वालामुखी सुषुप्तावस्था में रहता है जो देर-सवेर प्रचंड विस्फोट करता है। बुद्ध कहते हैं--

यथापि मूले अनुपद्दवे दळ्हे, छिन्नोपि रुक्खो पुनरेव रूहति।
एवम्पि तण्हानुसने अनूहते, निब्बत्तती दुक्खमिदं पुनप्पुनं॥

जैसे जड़ के बिल्कुल नष्ट न होने और उसके दृढ़ बने रहने पर कटा हुआ वृक्ष फिर से उग आता है,
वैसे ही तृष्णा रूपी अनुशय के जड़ से उच्छिन्न न होने पर यह दुःख बार-बार उत्पन्न होता है।[१]

जब तक अचेतन मन में संस्कार बने रहते हैं, मौका पाते ही इनका अंकुर फूट पड़ता है और दुःख पहुँचाता है। इस कारण समाधि अभ्यास के द्वारा भवाग्र की उच्चतम अवस्था पर पहुँचने के पश्चात भी भावी बुद्ध संतुष्ट नहीं हुए कि उन्होंने मुक्ति प्राप्त कर ली है। उन्होंने फैसला किया कि दुःख से नितांत विमुक्ति और सुख के रास्ते की खोज उन्हें जारी रखनी ही चाहिए।

तत्कालीन समाज में उन्होंने दो विकल्प देखे – एक था विषयासक्ति का, असंयम का रास्ता, अपनी सभी कामनाओं की पूर्त्ति को खुली छूट दे देना। यह सांसारिक मार्ग है जिसका पालन अधिकतर लोग करते हैं। फिर चाहे वे इसे महसूस करें या नहीं। लेकिन उन्होंने स्पष्ट अनुभव किया कि इससे सच्चा सुख नहीं मिल सकता है। संसार में ऐसा एक भी व्यक्ति नहीं है जिसकी इच्छाएं सदा पूरी होती हैं, जिसके जीवन में जो कुछ वह चाहता है, वैसा होता है और जो कुछ नहीं चाहता है, नहीं होता है। जो लोग इस मार्ग का अनुसरण करते हैं अपरिहार्यतः दःुखी होते हैं अर्थात जब वे अपनी इच्छाओं को पूरा करने में विफल होते हैं वे निराश और असंतुष्ट होते हैं। परंतु जब वे अपनी कामनाओं की पूर्ति करते हैं, तब भी समान रूप से दुःखी होते हैं । उन्हें यह भय सताता रहता है कि इच्छित प्राप्त वस्तु गायब न हो जाय। उनकी तुष्टि का क्षण अत्यल्प होता है, जैसा कि वस्तुतः होता है। कामनाओं की तलाश, उनकी प्राप्ति और उनके खोने के भय में ऐसे लोग सदा अशांत बने रहते हैं। भावी बुद्ध ने सांसारिक जीवन छोड़कर संन्यासी बनने से पहले इस मार्ग का अनुभव किया था इसलिए वह जानते थे कि यह शांति का मार्ग नहीं हो सकता है।

दूसरा विकल्प था – आत्म संयम का मार्ग, अपनी कामनाओं की पूर्ति को सायास रोकना। भारत में २,५०० वर्ष पहले आत्म-दमन का मार्ग सभी आनंदानुभूतियों से बचने और अपने आपको कठोर यातना, कष्ट पहुँचाने की अतियों तक पहुँच गया था।

इस आत्म-दमन का तर्क यह था कि इससे राग-द्वेष उत्पन्न करने की आदत ठीक हो जाएगी और मन को शांत बनायगी। इस प्रकार की तपस्या का अभ्यास विश्व में धार्मिक जीवन का आधार माना जाता था। भावी बुद्ध ने गृहत्याग के बाद के दिनों में इस मार्ग का भी अनुसरण किया। उन्होंने अनेक प्रकार की तपस्याएं इस सीमा तक कीं कि उनका शरीर चमड़ी और हड्डियों का ढांचा मात्र रह गया था, लेकिन तब भी उन्होंने पाया कि उन्हें मुक्ति नहीं मिली है। शरीर को दंड देने से मन शांत नहीं होता है।

यों भी आत्म संयम को इस अति तक ले जाने की कोई जरूरत नहीं। इसका अभ्यास व्यक्ति और अधिक संतुलित रूप से इस प्रकार कर सकता है कि वह उन कामनाओं की संतुष्टि को रोके जिनमें अकुशल कर्म निहित हैं। इस प्रकार का आत्मनियंत्रण, आम संतुष्टि की अपेक्षा अधिक ग्राह्य प्रतीत होता है क्योंकि इसके अभ्यास से वह कम से कम अनैतिक कर्मों से तो बचा रहेगा। परंतु यदि आत्म-संयम की प्राप्ति केवल आत्म दमन के द्वारा की जाती है तो यह खतरनाक स्तर तक मानसिक तनाव बढ़ाता है। सभी दमित कामनाएं आत्मदमन के बांध के पीछे बाढ़ के पानी की तरह इकट्ठी हो जायेंगी। एक दिन इस बांध को टूटना है और विनाशकारी बाढ़ का आना अवश्यंभावी है।

जब तक मन में संस्कार रहते हैं, हम सुरक्षित अथवा शांत नहीं रह सकते। शील, जो कि बहुत उपयोगी है, केवल इच्छा शक्ति से नहीं बनाई रखी जा सकती। समाधि के विकास से सहायता मिलेगी लेकिन यह केवल आंशिक समाधान है जो मन के गहरे स्तर पर कारगर नहीं होगा जहां समस्या की जड़ें, अकुशलताओं की जड़ें होती हैं। जब तक अचेतन में ये जड़ें दबी रहती हैं, वास्तविक, स्थायी सुख, अथवा मुक्ति की संभावना नहीं।

लेकिन यदि मन की गहराई में दबे संस्कारों की जड़ों का उन्मूलन हो जाता है तो अकुशल कर्मों में आसक्ति का खतरा नहीं रहेगा और आत्मदमन की आवश्यकता नहीं रहेगी, क्योंकि अकुशल कर्मों के करने की प्रवृत्ति ही जाती रहेगी। कामना और उसके त्याग दोनों से उत्पन्न तनावों से मुक्त व्यक्ति शांत रह सकता है।

जड़ों के उन्मूलन हेतु (उखाड़ने के लिए) एक ऐसी पद्धति की आवश्यकता है जिसके द्वारा हम अकुशलताओं से निपटने के लिए मन की गहराई तक पहुँच सकें जहां वे जन्म लेती हैं। बुद्ध ने इस पद्धति को, प्रज्ञा भावित करने की विधि को खोजा जिससे उन्हें बोधि की प्राप्ति हुई। इसे विपश्यना-भावना भी कहते हैं, अपनी प्रकृति को पूरी तरह से जानने की दृष्टि का विकास, वह दृष्टि जिसके

द्वारा व्यक्ति दुःख के कारणों की पहचान और उनका निराकरण कर सकता है। यही बुद्ध की खोज थी जिसकी साधना उन्होंने अपनी मुक्ति के लिए की और जिसकी शिक्षा वे दूसरों को भी जीवन भर देते रहे। यह उनकी शिक्षा का अनुपम तत्त्व है जिसे उन्होंने सर्वाधिक महत्त्व दिया। उन्होंने बार-बार कहा 'यदि नैतिकता का सहारा मिलता है, समाधि बहुत फलदायी और उपयोगी है, यदि समाधि का सहारा मिलता है, प्रज्ञा बहुत फलदायी और उपयोगी है। यदि प्रज्ञा का सहारा मिलता है, चित्त सारे विकारों से मुक्त हो जाता है।'[२]

शील और समाधि अपने आप में बहुत मूल्यवान हैं। परंतु उनका वास्तविक उद्देश्य है प्रज्ञा की प्राप्ति अर्थात प्रज्ञा को पुष्ट करना। प्रज्ञा के विकास में ही हमें भोग और त्याग की अतियों के बीच सच्चे मध्यम मार्ग की प्राप्ति होती है। शील का पालन कर हम ऐसे कर्मों से विरत होते हैं जो स्थूलतम मानसिक उद्विग्नता पैदा करते हैं। समाधि के द्वारा हम इसे और अधिक शांत बनाते हैं और साथ-साथ उसे एक ऐसे प्रभावकारी उपकरण का आकार देते हैं जिससे आत्म-परीक्षण का कार्य किया जा सके। लेकिन केवल प्रज्ञा के विकास से ही हम अंतर्निहित सच्चाई का भेदन करते हैं और अपने को सारी आसक्तियों तथा अज्ञान से मुक्त करते हैं।

प्रज्ञा के अंतर्गत आर्य अष्टांगिक मार्ग के दो सोपान सम्मिलित हैं – सम्यक संकल्प और सम्यक दृष्टि।

सम्यक संकल्प (सम्मासङ्कप्पो)

यह आवश्यक नहीं कि विपश्यना-भावना आरंभ करने से पहले ध्यान में सभी विचारों का निर्मूलन हो जाय। विचार अब भी बने रह सकते हैं, परंतु यदि क्षण-प्रतिक्षण हमारी जागरूकता बनी रहती है तो काम शुरू करने के लिए इतना ही पर्याप्त है।

संकल्प-विकल्प बने रह सकते हैं; परंतु उनकी शैली बदल जाती है। आनापान-सति से मोटे-मोटे राग-द्वेष शांत हो जाते हैं। कम से कम चेतन स्तर पर मन प्रशांत हो जाता है और धर्म तथा दुःख से उबरने के मार्ग के बारे में सोचना शुरू करता है। आनापान स्मृति बनाये रखने की प्रारंभिक कठिनाइयां समाप्त हो जाती हैं अथवा कुछ सीमा तक उन पर विजय प्राप्त कर ली जाती है। तब हम दूसरे सोपान – सम्यकदृष्टि के लिए तैयार हो जाते हैं।

सम्यक दृष्टि (सम्मादिट्ठि)

सम्यक दृष्टि ही वास्तविक प्रज्ञा है। सच्चाई के बारे में महज सोचना पर्याप्त नहीं है। हमें अपने-आप सच्चाई की अनुभूति होनी चाहिए। हमें चीजों को उनके यथाभूत स्वरूप में देखना है न कि उनकी प्रतीति के रूप में। प्रत्यक्ष, ऊपरी, भासमान सत्य एक वास्तविकता है परंतु हमें अपने परम सत्य का भेदनकर दुःखों का उन्मूलन करना है।

प्रज्ञा तीन प्रकार की होती है। श्रुतमयी प्रज्ञा, चिंतनमयी प्रज्ञा और भावनामयी प्रज्ञा। श्रुत-मयी प्रज्ञा का शाब्दिक अर्थ है सुनी हुई प्रज्ञा, दूसरों से सीखी हुई प्रज्ञा, उदाहरणस्वरूप कोई ग्रंथ पढ़कर अथवा धर्मोपदेश सुनकर जो प्रज्ञा प्राप्त की जाती है। यह दूसरों की प्रज्ञा है जिसे हम अपनी प्रज्ञा बनाने का फैसला करते हैं। इस प्रकार की प्रज्ञा को अज्ञान से स्वीकार किया जा सकता है। उदाहरणस्वरूप जो लोग एक निश्चित विचारधारा, धार्मिक अथवा अन्य किसी विश्वास परंपरा के बीच रहते हैं, बिना प्रश्न किए उस समुदाय की विचार धारा को स्वीकार कर लेते हैं। अथवा वे राग या तृष्णावश उसे स्वीकार कर सकते हैं । समुदाय के नेतागण यह घोषित कर सकते हैं कि स्थापित विचार-धारा अथवा परंपरागत विश्वास को स्वीकार करने से उनका उज्ज्वल भविष्य पक्का हो जाएगा। संभवतः वे दावा कर सकते हैं कि मृत्यु के पश्चात उन सबको स्वर्ग मिलेगा। स्वर्ग का परमानंद स्वाभाविक रूप से बहुत आकर्षक है। अतः इसे वे इच्छापूर्वक स्वीकार करते हैं, अथवा डर से स्वीकार कर सकते हैं। नेता को जब पता चलता है कि लोगों में संदेह है और वे समुदाय की विचारधारा पर प्रश्न उठाते हैं, तो वे उन्हें सामान्य सहमत विश्वासों को समर्थन करने की चेतावनी देते हैं, उन्हें डराते हैं कि यदि वे समर्थन नहीं करते हैं तो भविष्य में उन्हें भयंकर दंड भोगना पड़ सकता है, संभवतः यह दावा करते हुए कि मृत्यु के पश्चात सभी नास्तिक नरक जाएंगे। स्वाभाविक रूप से लोग नरक नहीं जाना चाहते हैं इसलिए वे आंख मूंदकर समुदाय के विश्वासों को अपना लेते हैं।

इस तरह की प्रज्ञा चाहे अंधविश्वास, राग, अथवा डर से स्वीकार की जाय, यह अपनी स्वयं की प्रज्ञा नहीं है, अपने द्वारा अनुभूत नहीं है। यह दूसरों से उधार ली गई है।

दूसरे प्रकार की प्रज्ञा चिंतनमयी प्रज्ञा है। कुछ पढ़ने अथवा धर्मोपदेश सुनने के पश्चात, व्यक्ति इस पर विचार करता है और परखता है कि क्या यह वास्तव में तर्कसंगत, उपयोगी तथा व्यावहारिक है। यदि बौद्धिक स्तर पर यह

संतोषजनक है तो वह उसे सचमुच स्वीकार करता है। फिर भी यह उसकी अपनी प्रज्ञा नहीं है बल्कि श्रुतमयी प्रज्ञा (सुनी हुई) का बौद्धिकरण है।

तीसरी प्रकार की प्रज्ञा अपनी अनुभूति, व्यक्तिगत सत्य-साक्षात्कार से जाग्रत होती है। यही वास्तविक प्रज्ञा है जिसके साथ वह जीता है और जो उसके मन के स्वभाव को परिवर्तित कर उसके जीवन को परिवर्तित कर देती है।

सांसारिक मामलों में भावनामयी प्रज्ञा, अनुभूत प्रज्ञा सदा आवश्यक नहीं है जिसे अपनाने की सलाह दी जा सके। दूसरों की इस चेतावनी को स्वीकार करना पर्याप्त है कि आग खतरनाक है अथवा तर्क द्वारा उसे प्रमाणित किया जा सकता है। आग जलाती है इसे स्वीकार करने से पहले इस तथ्य की जांच के लिए आग में कूदना नितांत मूर्खता है। लेकिन धम्म में अनुभूत प्रज्ञा आवश्यक है। केवल इसी से हमें संस्कारों से मुक्ति मिलती है।

दूसरों को सुनने से प्राप्त प्रज्ञा (श्रुतमयी) तथा बौद्धिक चिंतन से प्राप्त प्रज्ञा (चिंतामयी) तभी सहायक है जब वे तीसरी प्रकार की प्रज्ञा, भावनामयी प्रज्ञा की ओर हमें अग्रसर करने के लिए प्रेरित, प्रोत्साहित करती है। परंतु यदि हम बिना प्रश्न किए श्रुतमयी प्रज्ञा को स्वीकार करते हैं तो भावनामयी प्रज्ञा की प्राप्ति में यह बंधन अथवा बाधा बन जाती है। इसी मापदंड से यदि हम सत्य के चिंतन-मनन से संतुष्ट हैं और बौद्धिक रूप से छान-बीन कर इसे समझते हैं, और इसकी प्रत्यक्षानुभूति के लिए कोई प्रयास नहीं करते हैं तो हमारी सारी चिंतामयी प्रज्ञा बंधन बन जाती है बजाय इसके कि यह मुक्ति में सहायक बने।

हममें से प्रत्येक को भावनामयी प्रज्ञा से सत्य का जीवन जीना चाहिए। केवल यही भावनामयी प्रज्ञा मन को मुक्त कर सकती है । दूसरों का अनुभूत सत्य हमें मुक्त नहीं करेगा। बुद्ध की बोधि भी केवल एक व्यक्ति सिद्धार्थ गौतम को मुक्त कर सकी । दूसरों की अनुभूति औरों को मार्ग दिखा कर, उन्हें अनुसरण के लिए प्रोत्साहित कर सकती है। अन्यथा हममें से हर एक को अपना काम स्वयं करना है, जैसा कि बुद्ध ने कहा है –

तुम्हेहि किच्चं आतप्पं, अक्खातारो तथागता।

'तपना तो तुम्हें ही पड़ेगा, तथागत तो मार्ग बताते हैं।'[3]

सत्य का जीवन प्रत्यक्षानुभूति से अपने अंदर जीया जा सकता है। जो कुछ बाहर है वह हमसे सदा दूर है। केवल अपने अंदर ही सत्य की वास्तविक प्रत्यक्ष और जीवंत अनुभूति हो सकती है।

तीन प्रकार की प्रज्ञाओं में से पहली दो बुद्ध की शिक्षा की विशिष्टता नहीं है। ये दोनों भारत में बुद्ध से पहले विद्यमान थीं। यहां तक कि स्वयं उनके जीवनकाल में ऐसे लोग थे जो वह विद्या देने का दावा करते थे जिसकी शिक्षा बुद्ध देते थे।[४] संसार को बुद्ध का विशिष्ट योगदान है, सत्य की प्रत्यक्षानुभूति का मार्ग दिखाना जिससे भावनामयी प्रज्ञा का विकास हो सके। इस प्रकार विपश्यना भावना सत्य की प्रत्यक्षानुभूति प्राप्त करने की विधि है।

विपश्यना-भावना

विपश्यना को बहुधा अंतर्दृष्टि की कौंध, सत्य का आकस्मिक अंतर्बोध बताया जाता है। यह कथन ठीक है परंतु वास्तव में यह क्रमशः आगे बढ़ने की एक प्रक्रिया है जिसका प्रयोग साधक उस बिंदु तक पहुँचने के लिए कर सकता है जहां वह इस अंतर्बोध के लिए समर्थ होता है। यह पद्धति विपश्यना भावना है, अंतर्दृष्टि का विकास जिसे सामान्यतः विपश्यना ध्यान कहा जाता है।

'पश्यना' शब्द का अर्थ है 'देखना', सामान्य प्रकार से देखना जो हमारी खुली आंखों से देखा जाता है। 'विपश्यना' का अर्थ है एक विशेष प्रकार की दृष्टि, अपनी अंतर्निहित वास्तविक सच्चाई का दर्शन। यह अपनी शारीरिक संवेदना को आलंबन बनाकर प्राप्त की जाती है। यह तकनीक अपने अंदर की संवेदना को क्रमानुसार तथा तटस्थभाव से देखने की है। इस तरह देखने से चित्त और शरीर की सारी सच्चाई उद्‌घाटित होती है।

संवेदना क्यों? पहला कारण यह है कि संवेदना के द्वारा हमें सच्चाई का अनुभव प्रत्यक्ष रूप से होता है। जब तक कि कोई विषय पंचेंद्रियों अथवा मन के संपर्क में नहीं आता है, इसका कोई अस्तित्व हमारे लिए नहीं है। ये द्वार हैं जिनके द्वारा हम संसार के संपर्क में आते हैं। ये इंद्रियां (द्वार) सभी अनुभवों के आधार हैं। और जब कभी कोई वस्तु षडायतनों के संपर्क में आती है, एक संवेदना पैदा होती है । इस प्रक्रिया का वर्णन बुद्ध इस प्रकार करते हैं– "जब कोई दो लकड़ियां लेकर उन्हें एक दूसरे से रगड़ता है तो उनकी रगड़ से गर्मी पैदा होती है, एक चिनगारी पैदा होती है। उसी प्रकार मन और शरीर के आलंबनों के स्पर्श के परिणामस्वरूप यदि सुखद संवेदना उपजती है तो सुख का अनुभव होता है। उसी प्रकार यदि किसी स्पर्श से दुःखद संवेदना पैदा होती है तो दुःख का अनुभव होता है। अगर स्पर्श अदुःखदअसुखद होता है तो अदुःखदअसुखद संवेदना पैदा होती है।"[५]

किसी आलंबन का मन अथवा शरीर से जब स्पर्श होता है तब संवेदना की एक चिनगारी पैदा होती है। इस प्रकार संवेदना वह कड़ी है जिसके द्वारा हम संसार का उसके सभी भौतिक तथा मानसिक तथ्यों के साथ अनुभव करते हैं। भावनामयी प्रज्ञा के विकास के लिए, हम जो कुछ वस्तुतः अनुभव करते हैं, उसके प्रति हमें सजग, सचेत रहना चाहिए, अर्थात् हमें संवेदना के प्रति जागरूक रहना पड़ेगा और उसके अनित्यधर्मा स्वभाव को भी समझना होगा।

इसके अतिरिक्त शारीरिक संवेदनाएं मन के साथ घनिष्ठ रूप से जुड़ी हैं और सांस की तरह ही मन की वर्तमान दशा को प्रतिबिंबित करती हैं। जब मानसिक विषय जैसे-- चिंतन, विचार, कल्पना, प्रवृत्ति, स्मृति, आशा, तथा भय आदि मन के संपर्क में आते हैं, तब संवेदनाएं उत्पन्न होती हैं। प्रत्येक चिंतन, प्रत्येक प्रवृत्ति, प्रत्येक मानसिक क्रिया शरीर में तदनुरूप संवेदना पैदा करती है। इसलिए शारीरिक संवेदना को देखने के साथ ही साथ अपनी मानसिक स्थिति को भी हम देखते हैं।

गहराई तक सच्चाई को जानने के लिए संवेदना अपरिहार्य है। संसार में हम जिस किसी के संपर्क में आते हैं उससे हमारे शरीर में संवेदना पैदा होती है। संवेदना वह चौराहा है जहां चित्त और शरीर मिलते हैं। यद्यपि इसकी प्रकृति भौतिक है, यह चार मानसिक प्रक्रियाओं (देखिए अध्याय दो) में से भी एक है। यह शरीर पर उत्पन्न होती है और मन से अनुभूत होती है। मृत शरीर अथवा निर्जीव पदार्थ में इसका अस्तित्व नहीं होता है क्योंकि उसमें चित्त विद्यमान नहीं है। यदि हम इस अनुभव से अनभिज्ञ हैं तो हमारी सच्चाई की खोज अधूरी और सतही रहेगी । जैसे किसी बगीचे के खर-पतवार के उन्मूलन के लिए जमीन के अंदर छिपी उनकी जड़ों और उनकी जीवंत प्रक्रिया की जानकारी आवश्यक है, उसी प्रकार हमारे लिए अदृश्य संवेदनाओं की जानकारी आवश्यक है, ताकि हम उसको समझकर उससे सही ढंग से निपट सकें।

समूचे शरीर में संवेदनाएं निरंतर घटित होती रहती हैं। प्रत्येक मानसिक अथवा भौतिक स्पर्श संवेदना की उत्पत्ति करता है। प्रत्येक जीवरासायनिक प्रतिक्रिया संवेदना को जन्म देती है। सामान्य जीवन में मन में सर्वाधिक घनीभूत संवेदनाओं को छोड़कर साधारण संवेदना के प्रति जागरूकता के लिए आवश्यक एकाग्रता का अभाव होता है। परंतु यदि एक बार आनापान-सति के द्वारा हमने अपने मन को तीक्ष्ण बना लिया और स्मृति-इंद्रिय का विकास कर लिया है तब हम हर अंतर्निहित संवेदना की सच्चाई अनुभव करने के योग्य हो जाते हैं।

आनापान-सति की साधना में हमारा प्रयास नैसर्गिक सांस का नियंत्रण अथवा नियमन किए बिना उसे देखने का होता है। इसी प्रकार विपश्यना भावना में शारीरिक संवेदनाओं को देखना मात्र है। हम अपना ध्यान पूरे शरीर पर क्रम से सिर से पैर तक, और पैर से सिर तक, एक छोर से दूसरी छोर तक ले जाते हैं। परंतु ऐसा करते हुए हम किसी विशेष संवेदना की खोज और अन्य प्रकार की संवेदनाओं से बचने का प्रयास नहीं करते हैं। हमारा प्रयास केवल उन्हें तटस्थ भाव से देखना होता है। पूरे शरीर में जो भी संवेदना प्रकट होती है उसके प्रति जागरूक रहना है। वे किसी प्रकार की भी हो सकती हैं– गर्मी, सर्दी, भारीपन, हल्कापन, खुजलाहट, धड़कन, संकुचन, विस्तार, दबाव, दर्द, झुनझुनी, फड़कन, कंपन अथवा अन्य कुछ। साधक किसी असाधारण संवेदना की खोज नहीं करता अपितु केवल स्वाभाविक रूप से होने वाली साधारण शारीरिक संवेदनाओं को देखने का प्रयास मात्र करता है। किसी संवेदना के कारण की खोज का प्रयास नहीं किया जाता। यह मौसम, बैठने की मुद्रा, किसी पुरानी बीमारी, शारीरिक दुर्बलता अथवा जो भोजन खाया है उससे भी उत्पन्न हो सकती है। कारण महत्त्वहीन है और हमारी चिंता के बाहर है। अधिक महत्त्वपूर्ण है उस क्षण ध्यान के केंद्रीभूत शारीरिक अवयव पर होने वाली संवेदना के प्रति जागरूक रहना।

जब हम पहली बार विपश्यना आरंभ करते हैं, तब शरीर के कुछ भागों में ही संवेदना का अनुभव कर पाते हैं सभी भागों में नहीं। स्मृति (सति) इंद्रिय का अभी पूरी तरह विकास नहीं हुआ है इसलिए हम केवल स्थूल संवेदना का ही अनुभव करते हैं क्योंकि हम सूक्ष्म संवेदना का अनुभव नहीं कर पाते। फिर भी हम बारी-बारी से शरीर के प्रत्येक भाग पर क्रम से ध्यान ले जाना जारी रखते हैं। ऐसा करते हुए हम केवल प्रमुख संवेदनाओं पर ही अनावश्यक रूप से ध्यान नहीं देते बल्कि अपनी एकाग्रता को सिलसिलेवार ढंग से शरीर के प्रत्येक भाग पर ले जाते हैं।

समाधि के प्रशिक्षण का अभ्यास कर लेने पर हम इस योग्य हो जाते हैं कि अपना ध्यान किसी भी वस्तु पर एकाग्र कर सकते हैं। अब इस योग्यता का उपयोग हम लोग सिलसिलेवार ढंग से शरीर के हर अंग पर होने वाली संवेदना को जागरूक होकर देखने में करते हैं। जहां संवेदना स्पष्ट नहीं है वहां से छलांग लगाकर हम वहां नहीं जाते जहां वह स्पष्ट है। और न हम कुछ संवेदनाओं को देर तक देखते रहते हैं और न अन्य की उपेक्षा करते हैं। इस तरह हम धीरे-धीरे उस बिंदु पर पहुँचते हैं जहां से शरीर के हर अंग पर होने वाली संवेदनाओं का अनुभव कर सकते हैं।

जब हम आनापान-सति का अभ्यास आरंभ करते हैं, तब सांस बहुधा अपेक्षाकृत भारी और अनियमित होती है। फिर धीरे-धीरे यह हल्की से अधिक हल्की, सूक्ष्म से सूक्ष्मतर और मृदु से मृदुतर होती जाती है। इसी प्रकार जब हम विपश्यना भावना का अभ्यास आरंभ करते हैं तब बहुधा स्थूल, घनीभूत, और देर तक रहने वाली दु:खद संवेदना का अनुभव करते हैं। साथ ही प्रबल भावावेश या भूले हुए बहुत पहले के विचार और यादें भी जाग सकती हैं जो अपने साथ शारीरिक अथवा मानसिक बेचैनी, यहां तक कि दर्द भी लाती हैं। राग, द्वेष, प्रमाद, उद्विग्नता और संदेह की जो बाधाएं आनापान-सति के अभ्यास में हमारी प्रगति को रोकती थीं, दुबारा प्रकट हो सकती हैं, और इतनी शक्तिशाली हो सकती हैं कि संवेदनाओं के प्रति जागरूकता (विपश्यना) को बनाए रखना बिल्कुल असंभव-सा हो जाता है। ऐसी स्थिति में हमारे सामने कोई दूसरा विकल्प नहीं, सिवाय इसके कि हम फिर आनापान शुरू कर दें जिससे कि मन फिर शांत, सूक्ष्म और तीक्ष्ण बन सके।

धैर्यपूर्वक, बिना हार माने हम साधक के रूप में पुन: ध्यान लगाने का काम करते हैं, यह समझते हुए कि वस्तुत: ये सब कठिनाइयां हमारी प्रारंभिक सफलता का ही परिणाम हैं। कुछ गहरे दबे हुए संस्कार उभरकर फिर चेतन स्तर पर प्रकट होने लगे हैं। यों धीरे-धीरे बिना किसी तनाव के समतापूर्वक लगातार प्रयास के द्वारा मन प्रशांति और एकाग्रता की पुन: प्राप्ति करता है। उभरे हुए प्रबल विचार अथवा भावावेश अनित्य स्वभावी होने से गायब हो जाते हैं और हम संवेदना के प्रति जागरूकता (विपश्यना) पर पुन: वापस आ सकते हैं। और लगातार बार-बार अभ्यास करने से घनीभूत संवेदनाएं विघटित होकर अधिक एकरूपता धारण करने लगती हैं, सूक्ष्मतर हो जाती हैं और अंतत: केवल प्रकंपन-ही-प्रकंपन अनुभव होता है जो अधिक तीव्र वेग से उदय-व्यय का द्योतक होता है।

परंतु संवेदनाएं चाहे सुखद हों या दु:खद, स्थूल हों अथवा सूक्ष्म, एकरूप हों अथवा वैविध्यपूर्ण, साधना के लिए यह सब कुछ अप्रासंगिक है। हमारा काम केवल तटस्थभाव से देखना है। दु:खद संवेदनाओं से जो भी कष्ट हो, सुखद संवेदनाओं का जो भी आकर्षण हो, हम अपना काम रोकते नहीं, हम किसी संवेदना विशेष से न तो आकर्षित होते हैं और न विकर्षित। हमारा काम अपने आपको केवल उसी प्रकार, उसी तटस्थता के साथ निरीक्षण करना है जिस प्रकार एक वैज्ञानिक अपनी प्रयोगशाला में निरीक्षण करता है।

अनित्यता, अनात्म और दुःख

ध्यान का निरंतर अभ्यास करते-करते जल्द ही हम एक आधारभूत तथ्य का अनुभव करते हैं कि हमारी संवेदनाएं निरंतर बदल रही हैं। प्रतिक्षण, शरीर के प्रत्येक भाग में एक संवेदना उत्पन्न होती है जो परिवर्तन का संकेतक है। प्रतिक्षण शरीर के प्रत्येक अंग में परिवर्तन हो रहा है, विद्युतचुंबकीय और जीवरासायनिक प्रतिक्रियाएं हो रही हैं, प्रत्येक क्षण यहां तक कि मानसिक क्रियाएं और अधिक त्वरित वेग से बदलती हैं और उनकी अभिव्यक्ति शारीरिक परिवर्तनों में होती है। यानी मन का शरीर और शरीर का मन में परिवर्तन हो जाता है। दोनों एक दूसरे को प्रभावित और परिवर्तित करते रहते हैं।

यह मन और काया की सच्चाई है– यह बदल रही है, अनित्य है । प्रत्येक क्षण परमाणु जिनसे शरीर बना है, उत्पन्न और नष्ट होते हैं। प्रतिक्षण मानसिक क्रियाएं एक के बाद दूसरी प्रकट और लुप्त हो जाती हैं। हममें हर एक चीज, भौतिक और मानसिक, बाहरी संसार के समान प्रतिक्षण बदल रही है। पहले भी हमने जाना होगा इस सच्चाई को परंतु बौद्धिक रूप से। तथापि अब विपश्यना भावना के अभ्यास से हम अपने शरीर के ढांचे में अनित्यता की सच्चाई का अनुभव प्रत्यक्ष रूप से करते हैं। परिवर्तनशील संवेदनाओं के प्रत्यक्ष अनुभव से हमारी क्षणभंगुर प्रकृति का प्रमाण मिलता है। इसीलिए कहा गया कि सारा संसार इस साढ़े तीन हाथ की काया में ही समाया हुआ है। जो अंदर है वही बाहर है।

काया का प्रत्येक कण, मन की प्रत्येक प्रक्रिया निरंतर गति की अवस्था में है, क्षणमात्र से अधिक किसी की सत्ता नहीं, कोई ठोस सारभाग नहीं जिससे हम चिपके रहें। कुछ भी ऐसा नहीं जिसे 'मैं' अथवा 'मेरा' कहा जा सकता हो। यह 'मैं' वस्तुतः उन प्रक्रियाओं का समुच्चय है जो निरंतर परिवर्तित हो रही हैं।

इस प्रकार साधक को दूसरी आधारभूत सच्चाई की समझ आती है। वह है 'अनात्म' अर्थात कोई वास्तविक 'मैं', कोई स्थायी 'अहं' अथवा 'आत्मा' नहीं है। 'आत्मा' जिसके प्रति व्यक्ति इतना समर्पित है मानसिक तथा शारीरिक प्रक्रियाओं, सतत गतिमान प्रक्रियाओं के समुच्चय द्वारा निर्मित एक भ्रांति है। गहनतम स्तर तक शरीर और चित्त की गवेषणा करके व्यक्ति देखता है कि कोई अपरिवर्तनीय सारभाग, कोई सारतत्त्व नहीं जो परिवर्तन की प्रक्रिया से स्वतंत्र हो। अनित्य के नियम से सभी बंधे हैं। सर्वत्र केवल अनात्म का आभास है जो हमारे नियंत्रण से बाहर सतत परिवर्तित होता रहता है।

तब एक और सच्चाई स्पष्ट होती है। जैसे किसी वस्तु को पकड़कर रखने का प्रयास कि 'यह मैं हूं, यह मुझे हुआ है, यह मेरा है' व्यक्ति को दुःखी ही बनाता है क्योंकि 'यह कुछ' जिसके प्रति उसको आसक्ति है, देर-सवेर गुजर जाता है अन्यथा यह 'मैं' गुजर जाता है। इस प्रकार अनित्य, क्षणभंगुर, अपने नियंत्रण से बाहर की किसी वस्तु से आसक्ति दुःख ही है। यह सब कुछ हम अपने अनुभव से समझते हैं। इसलिए नहीं कि कोई हमें ऐसा बताता है परंतु इसलिए कि शरीर में होने वाली संवेदनाओं का निरीक्षण कर हम अपने अंदर ही इनका अनुभव करते हैं।

समता

प्रश्न उठता है कि तब कोई कैसे अपने को दुःखी न बनाए? क्या तरीका हो कि उसे दुःख न हो? समाधान यही है कि बिना प्रतिक्रिया के, निरीक्षण करते रहें बजाय इसके कि किसी अनुभव को अपने पास रखें और दूसरे को दूर हटाएं, एक को अपने निकट लावें, दूसरे को दूर धकेलें, व्यक्ति प्रत्येक आभास का तटस्थभाव से, समता और संतुलित चित्त से निरीक्षण करता रहे।

यह बहुत आसान लगता है। लेकिन जब हम एक घंटे के ध्यान के लिए बैठें और दस मिनट बाद ही घुटने में दर्द का अनुभव करने लगें तब क्या करें? हम तुरंत दर्द से द्वेष करने लगते हैं और चाहते हैं कि दर्द चला जाय। लेकिन यह जाता नहीं है, इसकी जगह उससे जितना ज्यादा द्वेष करते हैं उतना ही वह बढ़ता जाता है। शारीरिक पीड़ा, मानसिक पीड़ा बन जाती है जो तीव्र दुःख में बदल जाती है ।

यदि हम एक क्षण के लिए भी शारीरिक पीड़ा का केवल निरीक्षण करना सीखें, तो हम इस भ्रांति से उबर सकते हैं कि यह हमारी पीड़ा है और हम इस पीड़ा का अनुभव करते हैं। एक डॉक्टर की तरह जो दूसरे की पीड़ा का परीक्षण करता है, यदि हम संवेदना का तटस्थभाव से परीक्षण कर सकें, तब हम देखेंगे कि पीड़ा स्वयं परिवर्तित हो रही है, यह सदा के लिए नहीं रहती, हर क्षण बदलती रहती है, चली जाती है, फिर आती है, फिर बदल जाती है।

इसे जब हम व्यक्तिगत अनुभव से समझते हैं, तब पाते हैं कि पीड़ा अब हमें अभिभूत और नियंत्रित नहीं कर सकती है। संभवतः यह जल्द चली जाती है, संभवतः नहीं जाती है, परंतु इसका कोई महत्त्व नहीं रह जाता। अब हम पीड़ा से पीड़ित नहीं होते क्योंकि हम अनासक्ति के साथ इसका पर्यवेक्षण कर सकते हैं।

मुक्ति का मार्ग

जागरूकता तथा समता का विकास करके हम अपने को दुःख से मुक्त कर सकते हैं। अपनी स्वयं की सच्चाई के अज्ञान के कारण दुःख का आरंभ होता है। इस अज्ञान के अंधकार में चित्त प्रत्येक संवेदना के प्रति उसे प्रिय या अप्रिय मानकर राग-द्वेष के साथ प्रतिक्रिया करता है। ऐसी प्रत्येक प्रतिक्रिया इस समय दुःख उत्पन्न करती है और एक ऐसे घटनाक्रम को गति देती है जो भविष्य में दुःख के अतिरिक्त और कुछ नहीं लाती।

कारण-कार्य की इस शृंखला को कैसे तोड़ा जा सकता है ? किसी तरह अज्ञान में किए गए पिछले कर्मों के कारण जीवन अस्तित्व में आया है, (नाम और रूप) का प्रवाह आरंभ हुआ है। तब क्या किसी को आत्महत्या कर लेना चाहिए? नहीं, इससे समस्या का समाधान नहीं होगा। अपनी हत्या के समय मन दुःख तथा द्वेष से भरा होता है, बाद में जो जन्म आयगा, वह भी दुःखपूर्ण होगा, इस काम से हमें सुख नहीं मिल सकता है।

जीवन का आरंभ हो गया है, अब दुःख से कोई बच नहीं सकता। तब क्या किसी को ऐंद्रिय अनुभवों के आधार अपने षडायतनों को नष्ट कर देना चाहिए? कोई अपनी आंखें निकाल सकता है, जीभ को काट सकता है, नाक और कान को नष्ट कर सकता है, परंतु शरीर को कैसे नष्ट करेगा? मन को कैसे नष्ट करेगा? यह फिर आत्महत्या होगी, जो निरर्थक है।

तो क्या हम षडायतनों के विषयों को, सभी रूप, शब्द आदि को नष्ट कर दें? यह संभव नहीं। असंख्य पदार्थों से परिपूर्ण है यह संसार। उन सबको कभी नष्ट नहीं किया जा सकता। ऐंद्रिय षडायतनों की सत्ता रहते हुए उनके अपने-अपने विषयों से उनके संपर्क को रोकना असंभव है। जैसे ही संपर्क स्थापित होता है संवेदना उत्पन्न होती ही है।

लेकिन हां एक ऐसा बिंदु है जिस पर शृंखला को तोड़ा जा सकता है। निर्णायक कड़ी संवेदना का बिंदु है। प्रत्येक संवेदना राग-द्वेष उत्पन्न करती है। ये राग-द्वेष की क्षणिक अचेतन प्रतिक्रियाएं तुरंत बहुगुणित हो जाती हैं जो घनीभूत राग-द्वेष और आसक्ति के रूप में अब और भविष्य में दुःख उत्पन्न करती हैं। यह एक अंध स्वभाव बन जाता है जिसे हम यंत्रवत बार-बार दुहराते रहते हैं।

तदपि विपश्यना भावना के अभ्यास से हम प्रत्येक संवेदना के प्रति जागरूकता का विकास करते हैं, हम समता का विकास करते हैं, प्रतिक्रिया नहीं करते। बिना प्रिय या अप्रिय माने, बिना राग, द्वेष या आसक्ति के हम संवेदना

को साक्षीभाव से देखते हैं। इससे नयी प्रतिक्रियाओं को जन्म देने की बजाय, प्रत्येक संवेदना अब सिर्फ हमारी प्रज्ञा को जन्म देती है: संवेदना अनित्य है, इसका परिवर्तन होना ही है, उदय-व्यय होना ही है।

यों शृंखला टूट गई है, दु:ख समाप्त हो गया है। अब कोई नया राग-द्वेष नहीं है, इसलिए कोई कारण नहीं जिससे दु:ख उत्पन्न हो सके। दु:ख का कारण कर्म है, मानसिक कर्म, अर्थात राग-द्वेष के प्रति अंध प्रतिक्रिया, अर्थात संस्कार। जब मन संवेदना को जानता है और समता में स्थित रहता है तब ऐसी प्रतिक्रिया नहीं होती है, ऐसा कारण नहीं होता है जो दु:ख पैदा करे। हमने अपने लिए दु:ख उत्पन्न करना बंद कर दिया है।

बुद्ध ने कहा है–

"सब्बे संङ्खारा अनिच्चा"ति, यदा पञ्ञाय पस्सति।
अथ निब्बिन्दति दुक्खे, एस मग्गो विसुद्धिया॥

सारे संस्कार अनित्य हैं। इस सच्चाई को जब तुम विपश्यना (प्रज्ञा) से देख-जान लेते हो तब तुमको दु:ख से निर्वेद प्राप्त होता है– ऐसा है यह विशुद्धि का मार्ग।[६]

यहां संखार (संस्कार) शब्द का बहुत व्यापक अर्थ है। मन की अंध प्रतिक्रिया संखार है परंतु उस प्रतिक्रिया का परिणाम, फल भी संखार है, जैसा बीज, वैसा फल। हर एक चीज जिससे जीवन में हमारा संपर्क होता है, अंततोगत्वा हमारे अपने मानसिक कर्मों का ही फल है। इसलिए व्यापक अर्थ में संखार का अर्थ है इस प्रतीत्य-समुत्पन्न संसार में जो कुछ भी उत्पन्न, रचित, संघटित है वह संखार ही है। 'सभी संस्कार अनित्य हैं'– संसार की हर चीज चाहे वह भौतिक हो या मानसिक। विपश्यना भावना के अभ्यास द्वारा प्राप्त भावनामयी प्रज्ञा से जब इस सत्य को कोई देखता है तो दु:ख समाप्त हो जाता है क्योंकि दु:ख के कारणों से वह मुँह मोड़ लेता है, राग-द्वेष उत्पन्न करने की आदत को वह छोड़ देता है। यही मुक्ति का मार्ग है।

सारा प्रयास यह सीखना है कि कैसे प्रतिक्रिया न करें, कैसे नया संस्कार उत्पन्न न करें। जब संवेदना प्रकट होती है, राग-द्वेष शुरू हो जाता है। यदि हम असावधान हैं तो यह क्षणिक पल दुबारा आता है, राग और द्वेष बन जाता है, प्रबल प्रवृत्ति बन जाती है और अंततः हमारे चेतन मन को अभिभूत कर देती है। हम इससे आक्रांत हो जाते हैं और ठीक से निर्णय करने की हमारी शक्ति ही गायब हो जाती है। परिणाम यह होता है कि हम अपने को अकुशल वाचिक और

कायिक कर्म करते हुए पाते हैं जिनसे दूसरों की और अपनी हानि होती है। एक क्षण की अंध प्रतिक्रिया के कारण हम अपने लिए जिस दुःख की सृष्टि करते हैं, उससे अभी और भविष्य में भी दुःखी होते रहते हैं।

परंतु यदि हम उस बिंदु के प्रति जागरूक हैं, जहां प्रतिक्रिया की प्रक्रिया आरंभ होती है (अर्थात् यदि हम संवेदना के प्रति जागरूक हैं) तो न तो हम कोई प्रतिक्रिया करेंगे और न उसे घनीभूत होने देंगे। जब हम बिना किसी प्रतिक्रिया के, बिना राग-द्वेष के, संवेदना को देख सकते हैं तब संवेदना का राग-द्वेष अथवा प्रबल प्रवृत्ति में, जो हमें अभिभूत कर दे, विकसित होने की कोई संभावना नहीं रहती। इसका मात्र उदय-व्यय होता है। चित्त संतुलित, शांत बना रहता है। अब हम सुखी हैं और भविष्य में सुख की प्रत्याशा कर सकते हैं क्योंकि हमने प्रतिक्रिया नहीं की है।

प्रतिक्रिया न करने की यह क्षमता बहुत मूल्यवान है। जब हम शरीर की संवेदना के प्रति जागरूक हैं और उस समय समता भी बनाए रखते हैं, उस क्षण मन संस्कार-मुक्त रहता है। संभवतः प्रारंभ में यह केवल क्षणिक हो सकता है और शेष समय संवेदनाओं, राग, द्वेष और दुःख के पुराने चक्र की प्रतिक्रिया की पुरानी आदत में निमग्न रहता है। परंतु निरंतर अभ्यास से ये कतिपय संक्षिप्त क्षण, सेकेंड और मिनट बन जायेंगे। अंततः प्रतिक्रिया की पुरानी आदत नष्ट हो जाती है और चित्त निरंतर शांत बना रहता है। इसी प्रकार संपूर्ण दुःख का निरोध किया जा सकता है। इस तरह हम अपने लिए दुःख उत्पन्न करना बंद कर सकते हैं।

प्रश्नोत्तर

प्रश्न – 'हमें शरीर पर अपना ध्यान एक निश्चित क्रम में ही क्यों ले जाना चाहिए?'

स. ना. गोयन्का – 'क्योंकि मन और शरीर की संपूर्ण सच्चाई की गवेषणा का काम कर रहे हो। ऐसा करने के लिए तुम्हें यह अनुभव करने की क्षमता का विकास भी करना ही होगा कि शरीर के प्रत्येक अंग में क्या हो रहा है; कोई अंग छूटना नहीं चाहिए। संवेदनाओं के पूरे क्षेत्र को देखने की क्षमता का विकास भी करना होगा। बुद्ध ने साधना का इस रूप में आख्यान किया है, 'शरीर की सीमा के भीतर, जहां कहीं भी शरीर में जीवन है, हर जगह हम संवेदना का अनुभव करते हैं।'[७] यदि आप अपने ध्यान को बेतरतीब ढंग से एक अंग से दूसरे अंग, एक संवेदना से दूसरी

संवेदना पर ले जाते हैं तो स्वभावतः यह उस स्थान की ओर आकर्षित होगा जहां संवेदना की तीव्रता है। आप शरीर के कुछ अंगों की उपेक्षा करेंगे और आप सूक्ष्मतर संवेदनाओं को देखना नहीं सीखेंगे। आपका निरीक्षण आंशिक, अपूर्ण, सतही होगा। इसलिए यह हमेशा आवश्यक है कि हम अपने ध्यान को निश्चित क्रम में आगे बढ़ाएं।

हमें कैसे पता चले कि हम स्वयं संवेदनाओं का निर्माण नहीं कर रहे हैं?

आप खुद जांच कर सकते हैं । यदि आपको अनुभूत संवेदना की सच्चाई के संबंध में संदेह है तो आप अपने आपको दो या तीन आदेश अथवा स्वतः सुझाव दे सकते हैं। यदि आप देखते हैं कि संवेदनाएं आपके आदेशानुसार बदल रही हैं तब आप जान सकते हैं कि वे वास्तविक नहीं हैं। ऐसी स्थिति में आपको पूरे अनुभव को दूर फेंक देना चाहिए और कुछ देर के लिए आनापान का अभ्यास कर पुनः संवेदनाओं को देखना शुरू कर देना चाहिए। लेकिन यदि आप पाएं कि आप संवेदनाओं को नियंत्रित नहीं कर सकते हैं और वे आपकी इच्छा के अनुसार नहीं बदलती हैं तो अपने संदेह को दूर कर दीजिए और यह स्वीकार कीजिए कि आपका अनुभव वास्तविक है।

अगर ये संवेदनाएं वास्तविक हैं तो सामान्य जीवन में हम उनका अनुभव क्यों नहीं करते ?

आप करते हो, लेकिन अचेतन चित्त के स्तर पर । चेतन मन इसे नहीं जानता । अचेतन मन हर क्षण शरीर पर होने वाली संवेदनाओं को अनुभव करता है और प्रतिक्रिया भी करता है । दिन में चौबीसों घंटे यह प्रक्रिया चलती रहती है लेकिन विपश्यना के अभ्यास से आप चेतन और अचेतन मन के बीच की दीवार को तोड़ते हो। जो कुछ भी इस नाम-रूपात्मक संरचना के भीतर होता है, आप उसके प्रति जागरूक हो जाते हो और अपने अनुभव के प्रति भी जागरूक हो जाते हो ।

जान-बूझकर अपने द्वारा शारीरिक पीड़ा का अनुभव करना अपने द्वारा पहुँचायी गयी पीड़ा के सुख का अनुभव करने के लिए कहने जैसा लगता है।

ऐसा होता यदि आपको केवल पीड़ा के अनुभव के लिए कहा जाता । परंतु बजाय इसके आपको तटस्थभाव से पीड़ा को देखने के लिए कहा जाता है। जब आप बिना प्रतिक्रिया के देखते हो तब मन स्वतः पीड़ा की सतही सच्चाई के आगे उसकी सूक्ष्म प्रकृति का भेदन करने लगता है जो हर क्षण उदय-व्यय होने वाले स्पंदन के अतिरिक्त और कुछ नहीं है और जब आप इस सूक्ष्म सच्चाई का अनुभव करते हो तब दर्द आपका मालिक

नहीं रह जाता बल्कि आप अपने मालिक बन जाते हो और पीड़ा-मुक्त हो जाते हो।

परंतु जब वस्तुतः शरीर के किसी अंग में रक्त-प्रवाह बंद यानी शून्य हो जाने से पीड़ा हो सकती है तब क्या इस संकेत की उपेक्षा करना बुद्धिमानी है?

हां, हमने पाया है कि इस अभ्यास से कोई हानि नहीं होती। अगर होती तो हम इसकी अनुशंसा नहीं करते। हजारों लोगों ने इस विधि का अभ्यास किया है। मैं ऐसा एक भी उदाहरण नहीं जानता जिसमें ठीक ढंग से अभ्यास करने वाले किसी साधक ने अपने को हानि पहुँचायी हो। सामान्य अनुभव यह है कि शरीर और अधिक नमनीय और लचीला बन जाता है। जब आप पीड़ा का सामना संतुलित मन से करना सीखते हो, तब पीड़ा अपने आप चली जाती है।

क्या विपश्यना का अभ्यास छः ज्ञानेंद्रियों में से किसी एक द्वार पर पर्यवेक्षण करना, उदाहरण के लिए नेत्र से रूप या कान से ध्वनि के संपर्क का पर्यवेक्षण करना संभव नहीं है?

उत्तर – निश्चय ही, परंतु फिर इस देखने में संवेदना के प्रति जागरूकता होनी चाहिए। जब छः ज्ञानेंद्रियों नेत्र, कान, नाक, जीभ, शरीर तथा मन में से किसी का उसके विषय से संपर्क होता है, तब संवेदना की उत्पत्ति होती है। यदि आप इससे अनभिज्ञ हैं तो आप उस बिंदु को पकड़ नहीं पाते जहां प्रतिक्रिया प्रारंभ होती है। अधिकांश ज्ञानेंद्रियों में संपर्क निरंतर नहीं, अंतराल के साथ होता है जैसे– आपके कान किसी समय कोई ध्वनि सुन सकते हैं, किसी समय नहीं, परंतु गहनतम स्तर पर प्रत्येक क्षण मन और उसके विषय का संपर्क बना रहता है और लगातार संवेदना उत्पन्न होती रहती है। इस कारण उस संवेदना को देखना अधिक सुलभ तथा जीवंत साधन है जिससे हम अनित्यता का अनुभव कर सकते हैं। अन्य ज्ञानेंद्रियों के द्वारों पर देखने के प्रयास से पहले आपको इसकी कुशलता प्राप्त कर लेनी चाहिए।

यदि हम जो कुछ जैसा हो रहा है, उसे उसी रूप में स्वीकार करें और उसका निरीक्षण करें, तो फिर प्रगति कैसे होती है?

प्रगति का मापदंड यह है कि आप समता का विकास कर रहे हैं या नहीं । समता को छोड़कर कोई विकल्प नहीं है। क्योंकि आप न तो संवेदनाओं को बदल सकते हैं और न उनकी सृष्टि कर सकते हैं। जो कुछ भी होता है, अपने आप होता है । यह सुखद अथवा दुःखद, ऐसा या वैसा हो सकता है परंतु यदि आप अपनी समता बनाए रखते हैं, तो निश्चित रूप

से मार्ग पर प्रगति कर रहे हैं । आप प्रतिक्रिया की अपनी पुरानी प्रकृति को दुर्बल बना रहे हैं।

यह तो रही साधना की बात, लेकिन जीवन से इसका क्या संबंध है?

जब दैनिक जीवन में कोई समस्या उत्पन्न होती है तब संतुलित मन से कुछ क्षणों के लिए संवेदनाओं को देखिए। जब मन शांत और संतुलित हो तब आप जो भी निर्णय लेंगे, अच्छा होगा। जब मन असंतुलित है तो जो निर्णय आप लेंगे, वह आपकी प्रतिक्रिया होगी। नकारात्मक प्रतिक्रिया से सकारात्मक कर्म करने की ओर अपने आपको बदलने के लिए अपनी जीवन पद्धति को बदलने के लिए सीखना होगा।

अर्थात यदि आप क्रोध अथवा आलोचना नहीं करते हैं लेकिन समझते हैं कि कोई चीज दूसरे ढंग से की जा सकती है, और अच्छी तरह से की जा सकती है तो आप रुकते नहीं, अपना काम पूरा करते हैं?

हां, आपको ऐसा करना चाहिए। जीवन कर्म के लिए है। आपको निष्क्रिय नहीं बनना चाहिए। परंतु संतुलित चित्त से काम किया जाना चाहिए।

आज मैं शरीर के एक अंग पर संवेदना को देखने का काम कर रहा था जो संवेदनाशून्य था। जैसे ही संवेदना प्रकट हुई मेरे मन में खुशी की लहर दौड़ गयी । इतनी खुशी हुयी कि लगा खेल में गोटी लाल हो गयी। मेरा मन खुशी के मारे कह उठा - 'अच्छा'! और तब मैंने सोचा, 'नहीं', मुझे इस प्रकार की प्रतिक्रिया नहीं करनी चाहिए।' लेकिन मुझे संदेह है कि संसार में वापस जाकर मैं प्रतिक्रिया किए बिना बेसबाल और फुटबाल कैसे खेल सकता हूं?

आप क्रिया करोगे प्रतिक्रिया नहीं । फुटबाल भी आप बिना प्रतिक्रिया किए खेल सकते हो और पाओगे कि आपको इसमें सचमुच का आनंद आ रहा है। प्रतिक्रिया के तनाव से मुक्त आनंद ही सच्चा आनंद है।

तो मैं उछल कूद सकता हूं और हिपहिप हुर्रे कर सकता हूं?

हां, समता के साथ, समता के साथ उछलो-कूदो।

यदि मेरी टीम हारती है तो क्या करूं?

तब भी मुस्कराओ और कहो, 'मंगल हो!' प्रत्येक स्थिति में खुश रहो।

दो अंगूठियां

एक धनी बूढ़ा आदमी मर गया। उसके दो पुत्र थे। कुछ समय तक दोनों सौमनस्यतापूर्वक संयुक्त परिवार में एक साथ रहे। तत्पश्चात् वे झगड़ने लगे और सारी संपत्ति को आपस में बांटकर अलग होने का फैसला किया। हर एक चीज आधा-आधा बांट दी गई और वे अपने काम में लग गए। परंतु समझौता हो जाने के बाद उन्हें एक छोटी सी पोटली मिली जिसे उनके पिता ने सावधानीपूर्वक छिपाकर रखी थी। उन्होंने पोटली खोली और उसके अंदर दो अँगूठियां मिलीं, एक बहुमूल्य हीरे से जड़ी हुई और दूसरी कुछ रुपयों की चांदी की मामूली अंगूठी।

हीरे को देखकर बड़े भाई के मन में लोभ जाग गया। वह अपने छोटे भाई को समझाने लगा, 'मुझे ऐसा लगता है कि यह अंगूठी हमारे पिता की कमाई नहीं है अपितु उनके पूर्वजों से उत्तराधिकार में मिली है। इसी कारण उन्होंने इसे अपनी जायदाद से अलग रखा और क्योंकि हमारे परिवार में पीढ़ियों से रखी आ रही है, यह भावी पीढ़ियों के लिए रखी जानी चाहिए। इसलिए बड़ा होने के नाते, इसे मैं संभाल कर रखूंगा। अच्छा हो तुम चांदी वाली अंगूठी रखो'।

छोटा भाई मुस्कराया और कहा, 'ठीक है, आप हीरे वाली अंगूठी से खुश रहें। मैं चांदी वाली से खुश रहूंगा!' दोनों ने अंगूठियाँ अंगुलियों में डाल लीं और अपने-अपने काम में लग गये।

छोटे भाई ने अपने मन में सोचा, 'यह तो मेरी समझ में आसानी से आता है कि मेरे पिता ने हीरे वाली अंगूठी रखी, यह इतनी मूल्यवान है लेकिन उन्होंने यह मामूली चांदी वाली अंगूठी क्यों रखी? उसने गौर से उस अंगूठी को देखा और उस पर खुदे हुए कुछ शब्द देखे, 'यह भी बदल जायगा'। ओह! मेरे पिता की यह सीख है, यह भी बदल जायगा। उसने अंगूठी दुबारा पहन ली।

दोनों भाई जीवन के चढ़ाव-उतार का सामना करते रहे। जीवन में जब बसंत आता, बड़ा भाई अपने मन का संतुलन खोकर उछलने लगता। जब पतझड़ यानी बुरा समय आता तब अपना मानसिक संतुलन खोकर गहरी निराशा में डूब जाता। वह तनावग्रस्त हो गया और उसे उच्च रक्तचाप की बीमारी हो गयी । रात की अनिद्रा के कारण वह नींद की गोलियां, प्रशांतक (ट्रांक्विलाईजर) तथा

अधिक तेज दवाएं लेने लगा ।अंततोगत्वा वह ऐसी स्थिति में पहुँच गया जहां उसे बिजली के झटके देने की जरूरत पड़ी। यह हीरे की अंगूठी वाला भाई था।

चांदी की अंगूठी वाले छोटे भाई ने जब भी बसंत आया, इसका आनंद उठाया, इससे दूर नहीं भागा। उसने आनंद मनाया, परंतु अपनी अंगूठी को देखा और याद किया कि, 'यह भी बदल जाएगा।' और जब यह बदल गया तब वह मुस्कराता और कहता 'ठीक है, मुझे पता था, यह बदलने वाला है, यह बदल गया, तो इससे क्या?' जब पतझड़ यानी कुसमय आता, तब फिर वह अपनी अंगूठी को देखता और याद करता, 'यह भी बदल जायगा'। और देखा सचमुच बदल गया, गुजर गया। जीवन के सभी उतार-चढ़ाव, सुख-दुःख के बारे में वह जानता रहता कि कुछ भी शाश्वत नहीं है, हर एक चीज जाने के लिए आती है। वह अपने मन का संतुलन नहीं खोता और शांत, सुखी जीवन व्यतीत करता।

यह चांदी की अंगूठी वाला भाई था।

अध्याय ८

सजगता और समता

सजगता और समता, यह विपश्यना ध्यान है। जब दोनों का एक साथ अभ्यास किया जाता है तब इससे हमें दुःखों से मुक्ति मिलती है। यदि इनमें से कोई कमजोर है अथवा किसी की कमी है तो उस लक्ष्य के मार्ग पर प्रगति करना संभव नहीं। दोनों वैसे ही आवश्यक हैं जैसे उड़ने के लिए एक पक्षी के दो पंख अथवा चलने के लिए किसी गाड़ी के दो पहिए। वे दोनों समान रूप से मजबूत होने चाहिए। यदि पक्षी का एक पंख कमजोर और दूसरा मजबूत है, वह ठीक ढंग से उड़ नहीं सकता। यदि किसी गाड़ी का एक पहिया छोटा और दूसरा बड़ा है तो वह ठीक ढंग से न चलकर टेढ़ी-मेढ़ी चलेगी ।साधक को जागरूकता और समता दोनों का एक-सा विकास करना चाहिए जिससे कि साधना के मार्ग पर समुचित प्रगति होती रहे।

हमारे लिए नाम और रूप की समग्रता तथा उनके सूक्ष्मतम स्वरूप के प्रति जागरूकता आवश्यक है। इस उद्देश्य के लिए शरीर और मन के सतही पहलुओं जैसे कि शरीर की गतिशीलता और मन में उठने वाले विचारों के प्रति सावधान रहना पर्याप्त नहीं है। हमें पूरे शरीर की संवेदनाओं के प्रति जागरूकता और समता का विकास करना है।

हम सजग तो हैं परंतु हममें समता का अभाव है, तब हम जितना ही अधिक अपने अंदर की संवेदनाओं के प्रति सचेत और संवेदनशील होते हैं तो उतनी ही तीव्र प्रतिक्रिया करके अपने दुःख को बढ़ाते हैं। दूसरी ओर हममें समता है परंतु हम अपने अंदर की संवेदनाओं के बारे में कुछ नहीं जानते, तब समता केवल सतही है जो मन की गहराइयों में अज्ञात रूप से लगातार चलने वाली प्रतिक्रियाओं को छिपाकर रखती है। अतः मन की गहराई में जागरूकता और समता दोनों को हमें विकसित करना आवश्यक है। इसलिए हर एक चीज जो अंदर घटित हो रही है उसके प्रति सजग-सचेत होना चाहते हैं और साथ ही यह समझते हुए कि यह भी बदल जायगा, इसके प्रति प्रतिक्रिया नहीं करते।

यही सच्ची प्रज्ञा है (अर्थात अपने आपकी प्रकृति की समझ, अपने अंतर्तम की सच्चाई के प्रत्यक्ष अनुभव से प्राप्त प्रज्ञा)। इसे ही बुद्ध ने ‘यथाभूत ज्ञानदर्शन’ कहा है। प्रज्ञा वह जो सच्चाई को उसके वास्तविक स्वरूप में देखने से उत्पन्न होती है। इस प्रज्ञा के द्वारा ही हम दुःखों से उबर सकते हैं क्योंकि होने वाली प्रत्येक

संवेदना अनित्यता के प्रति हमारी समझ को विकसित करेगी। ऐसा होने पर ही सारी प्रतिक्रियाएं; राग, द्वेष के सारे संस्कार निरुद्ध हो जाते हैं। सच्चाई को साक्षीभाव से देखना सीखकर व्यक्ति अपने लिए दु:ख उत्पन्न करना बंद कर देता है।

भूतकालिक प्रतिक्रियाओं का भंडार – (पुराने संस्कार)

सजगता तथा समता नये संस्कारों, दु:ख के नये स्रोतों को उत्पन्न होने से रोकने का मार्ग है। परंतु हमारे दु:खों का एक दूसरा आयाम है जिस पर विचार किया जाना चाहिए। इस क्षण के बाद प्रतिक्रिया करना समाप्त कर देने पर हम दु:खों के और कारणों की उत्पत्ति नहीं करते हैं परंतु हममें से प्रत्येक के पास संस्कारों का एक भंडार है, भूतकालिक प्रतिक्रियाओं का समुच्चय है। यदि हम इस भंडार में कुछ नया नहीं भी जोड़ते हैं तो भी पुराने संस्कारों का समुच्चय हमें दु:ख पहुँचाता रहेगा।

संस्कार शब्द का अनुवाद है 'कर्मसंग्रह', कर्मसंग्रह करने का काम और जो कुछ संगृहीत हुआ है, दोनों। प्रत्येक प्रतिक्रिया मानसिक प्रक्रिया क्रम का परिणाम है, अंतिम चरण है, परंतु यह एक नये मानसिक प्रक्रिया क्रम की उत्पत्ति का प्रथम चरण (कारण) भी हो सकता है। प्रत्येक संस्कार इसे उत्पन्न करने वाली प्रक्रियाओं से संस्कारित (अनुबंधित) है जो उसका अनुगमन करने वाली प्रक्रिया को भी संस्कारित करती है।

संस्कार दूसरी मानसिक क्रिया संज्ञा (देखिए अध्याय २) को प्रभावित कर क्रियाशील होता है। चेतना (विज्ञान) मूलतः अलग करने वाली, भेद करने वाली नहीं होती, इसका प्रयोजन केवल मन अथवा शरीर पर हुए संपर्क को मात्र सूचित (पंजीकृत) करना है। संज्ञा इनमें भेद करती है, एक दूसरे से अलग करती है। यह भूतकालिक अनुभवों के भंडार के आधार पर नए तथ्यों का मूल्यांकन तथा वर्गीकरण करती है। भूतकालिक प्रतिक्रियाएं संदर्भ बिंदु बन जाती हैं जिनसे हम नए अनुभव को पुराने संस्कारों के आधार पर समझते हैं, और वर्गीकरण करते हैं।

इस प्रकार राग, द्वेष की पुरानी प्रतिक्रियाएं हमारी वर्तमान संज्ञा को प्रभावित करती हैं। सच्चाई को जैसी है वैसी देखने की बजाय हम एक रंगीन चश्मे से देखते हैं। हमारे आंतरिक और बाह्य संसार की संज्ञा हमारे भूतकालिक संस्कारों, हमारी प्राथमिकताओं और पूर्वाग्रहों से धुँधली और विकृत हो जाती है। इस विकृत संज्ञा के अनुरूप तत्त्वतः अदु:खदअसुखद संवेदना तुरंत प्रिय और अप्रिय बन जाती है। इस संवेदना के प्रति हम पुनः प्रतिक्रिया करते हैं, पुनः नए

संस्कार बनाते हैं जो हमारी आगे की संज्ञा को फिर विकृत बनाती हैं। इस प्रकार प्रत्येक प्रतिक्रिया भावी प्रतिक्रियाओं का कारण बनती है जो भूतकाल से संस्कारित होती है और फिर भविष्य को संस्कारित करती है।

संस्कार का यह दुहरा काम कारण-कार्य श्रृंखला (प्रतीत्यसमुत्पाद) में बताया गया है। श्रृंखला की दूसरी कड़ी संस्कार है जो मानस की चार प्रक्रियाओं में प्रथम विज्ञान का आसन्न कारण है । तदपि संस्कार मानसिक प्रक्रिया क्रम में सबसे अंत में अर्थात विज्ञान, संज्ञा और वेदना के बाद आता है।

यों संस्कार राग-द्वेष की प्रतिक्रिया के रूप में श्रृंखला में संवेदना के बाद आता है। राग या द्वेष आसक्ति बनता है जो नई अवस्था की मानसिक और शारीरिक गतिविधि का प्रेरक बल होता है। इस प्रकार यह प्रक्रिया अपने-आप पुष्ट होती रहती है। प्रत्येक संस्कार घटनाओं की एक श्रृंखला का प्रवर्तन करता है जिसका परिणाम है नया संस्कार, जिससे घटनाओं की एक नयी श्रृंखला प्रवर्तित होती है, जिसकी बार-बार पुनरावृत्ति होती है और एक दुष्चक्र चल पड़ता है । हर बार जब हम प्रतिक्रिया करते हैं, हम प्रतिक्रिया की मानसिक प्रवृत्ति को बलवती बनाते हैं। हर बार जब हम राग, द्वेष का विकास करते हैं, हम उनके पुनः उत्पादन की मानसिक प्रवृत्ति को बलशाली बनाते हैं। एक बार जब मानसिक पैटर्न स्थापित हो जाता है, हम उसमें फँस जाते हैं ।

उदाहरण के लिए एक व्यक्ति किसी दूसरे को अपनी इच्छित वस्तु प्राप्त करने से रोकता है। विफल व्यक्ति यह विश्वास करता है कि अमुक व्यक्ति बहुत बुरा है और उससे घृणा करता है। यह विश्वास उस व्यक्ति के चरित्र के आधार पर नहीं अपितु इस तथ्य पर आधारित है कि उसने उसकी (दूसरे व्यक्ति की) इच्छा को विफल कर दिया है। विफल व्यक्ति के अचेतन मन में इस विश्वास का गहरा असर पड़ता है। उस व्यक्ति से प्रत्येक परवर्ती (भावी) संपर्क उस विश्वास से रंजित होता है जिससे पुनः दुःखद संवेदना उत्पन्न होती है जो नये द्वेष को जन्म देती है तथा उस व्यक्ति के बारे में उसकी धारणा को और अधिक बलवती बनाती है। यदि वे बीस वर्ष के बाद भी परस्पर मिलते हैं तो बहुत पहले का विफल व्यक्ति तुरंत सोचने लगता है कि यह आदमी बहुत बुरा है और फिर उससे घृणा करने लगता है। हो सकता है इन बीस वर्षों में उस पहले व्यक्ति का चरित्र पूर्णतः परिवर्तित हो गया हो परंतु दूसरा आदमी अपने पुराने अनुभवों के आधार पर ही उस व्यक्ति का मूल्यांकन करता है। यह प्रतिक्रिया स्वयं उस व्यक्ति के प्रति नहीं अपितु पहले की अंध प्रतिक्रिया के आधार पर बने उसके बारे में बनी धारणा के प्रति है, अतः पूर्वाग्रहपूर्ण है।

दूसरे मामले में एक व्यक्ति किसी दूसरे आदमी की उसकी इच्छित वस्तु प्राप्त करने में सहायता करता है। जिस आदमी ने सहायता प्राप्त की वह विश्वास करता है कि वह व्यक्ति बहुत अच्छा है और उसे पसंद करता है। यह विश्वास इस तथ्य पर आधारित है कि उसने उस व्यक्ति की इच्छा को पूरा करने में सहायता की है न कि यह विश्वास उस व्यक्ति के चरित्र पर सावधानीपूर्वक विचार करने से उत्पन्न हुआ है। यह सकारात्मक विश्वास उस व्यक्ति के अचेतन मन पर अंकित हो जाता है जो उस व्यक्ति से परवर्ती संपर्कों को रंजित करता है। इससे सुखद-संवेदना उत्पन्न होती है जो उसके प्यार को और अधिक बढ़ाती है और उस व्यक्ति के प्रति उसके विश्वास को दृढ़ बनाती है। इसका कोई महत्त्व नहीं कि वे कितने साल बाद फिर मिलते हैं। प्रत्येक नए संपर्क से वही प्रवृत्ति दुहरायी जाती है। दूसरा आदमी उस व्यक्ति के प्रति प्रतिक्रिया नहीं करता है अपितु उसके प्रति अपनी पुरानी अंध प्रतिक्रिया पर आधारित अपनी धारणा के प्रति प्रतिक्रिया करता है।

इस प्रकार संस्कार तुरंत भी और दूर भविष्य में भी नई प्रतिक्रिया को जन्म देता है। प्रत्येक अनुवर्ती प्रतिक्रिया आगे की प्रतिक्रिया का कारण बनती है जो और अधिक दुःख लाने के अतिरिक्त कुछ नहीं करती। यह प्रतिक्रिया को तथा दुःख को और अधिक बार-बार दुहराने की प्रक्रिया है। हम मानते हैं कि हम बाहरी सच्चाई पर विचार कर रहे हैं जबकि वस्तुतः हम अपनी भूत या वर्तमान संवेदनाओं के प्रति प्रतिक्रिया कर रहे हैं जो हमारी संज्ञा से संस्कारित हैं और जो स्वयं हमारी प्रतिक्रियाओं से संस्कारित है। अगर हम इसी क्षण से नए संस्कार उत्पन्न करना बंद कर देते हैं तब भी हमें भूतकाल के संगृहीत संस्कारों का सामना करना पड़ता है। इस पुराने भंडार के कारण प्रतिक्रिया करने की प्रवृत्ति बनी रहेगी और किसी भी समय प्रभावकारी हो सकती है जो हमारे लिए नए दुःख उत्पन्न करती है। जितने समय तक ये पुराने संस्कार बने रहते हैं हम दुःखों से पूरी तरह मुक्त नहीं हो पाते हैं।

हम इन पुरानी प्रतिक्रियाओं का क्षय कैसे करें? इस प्रश्न का उत्तर पाने के लिए विपश्यना साधना को और गहराई से समझना आवश्यक है।

पुराने संस्कारों का क्षय

विपश्यना करते समय हमारा काम है पूरे शरीर की संवेदनाओं को केवल देखना। किसी विशिष्ट संवेदना का कारण हमारे चिंतन के बाहर का विषय है। मात्र इतना समझना पर्याप्त है कि प्रत्येक संवेदना आंतरिक परिवर्तन की संकेतक

है। परिवर्तन मूलतः मानसिक अथवा शारीरिक या दोनों हो सकता है। मन और शरीर अन्योन्याश्रित रूप से काम करते हैं जो बहुधा परस्पर पृथक नहीं किए जा सकते। एक स्तर पर जो घटित होता है वही दूसरे स्तर पर प्रतिबिंबित होता है।

शारीरिक स्तर पर जैसा कि अध्याय दो में उल्लेख किया गया है, शरीर परमाणुओं (कलापों) – से बना है जो प्रतिक्षण तीव्र वेग के साथ उदय-व्यय होते रहते हैं। ऐसा करते हुए वे अनंत प्रकार के संगठनों में पदार्थ के आधारभूत गुण जैसे– राशि, संबद्धता, ताप और गति को अभिव्यक्त करते हैं जो हमारे अंदर संवेदनाओं के पूरे क्षेत्र को उत्पन्न करते रहते हैं।

कलापों की उत्पत्ति के चार संभावित कारण हैं– पहला है भोजन जो हम खाते हैं, दूसरा है पर्यावरण जिसमें हम रहते हैं। तीसरा मन में जो घटित होता है उसका प्रभाव भी शरीर पर होता है जो कलापों की उत्पत्ति के लिए उत्तरदायी होता है। अर्थात वर्तमान चिंतन-मनन यानी वर्तमान क्षण में हमारी मानसिक प्रतिक्रिया के परिणामस्वरूप वे (कलाप) उत्पन्न होते हैं। चौथा पुराने संस्कार, जो वर्तमान में मानसिक स्थिति को प्रभावित करते हैं।

काम करने के लिए शरीर को भोजन की आवश्यकता होती है। हम शरीर को भोजन देना बंद कर दें तब भी यह शीघ्र नष्ट नहीं होगा। यह आवश्यकतानुसार ऊतकों में संगृहीत ऊर्जा का भोग कर कई सप्ताहों तक अपना पोषण करता रहेगा। जब सारी संगृहीत ऊर्जा समाप्त हो जाती है तब शरीर की च्युति हो जाती है, और व्यक्ति मर जाता है। इस प्रकार भौतिक प्रवाह की समाप्ति हो जाती है।

इसी प्रकार चेतना के प्रवाह को बनाए रखने के लिए मन को क्रियाशीलता की आवश्यकता होती है। मानसिक क्रियाशीलता संस्कार है । प्रतीत्यसमुत्पाद के अनुसार विज्ञान प्रतिक्रिया से उत्पन्न होता है, प्रत्येक मानसिक प्रतिक्रिया विज्ञान के प्रवाह को प्रेरित करने के लिए उत्तरदायी है। कुछ अंतराल के बाद शरीर को भोजन की आवश्यकता होती है जबकि मन को अनवरत नए उद्दीपक की आवश्यकता होती है। इसके बिना विज्ञान का प्रवाह एक क्षण के लिए भी नहीं चल सकता। उदाहरण के लिए किसी विशेष क्षण में कोई द्वेष उत्पन्न करता है। दूसरे क्षण जो विज्ञान उत्पन्न होता है वह इस द्वेष का उत्पाद है। क्षण-प्रति-क्षण ऐसा चलता रहता है। वह व्यक्ति द्वेष की प्रतिक्रिया को एक क्षण से दूसरे क्षण बार-बार दुहराता रहता है और इस प्रकार चित्त को नया भोजन प्रदान करता है।

फिर भी, विपश्यना अभ्यास के द्वारा साधक प्रतिक्रिया न करना सीखता है। किसी विशेष क्षण में वह संस्कार नहीं बनाता है, चित्त को नया उद्दीपन नहीं देता

है। तब मानसिक प्रवाह का क्या होता है? यह तुरंत बंद नहीं होता। इस प्रवाह को बनाए रखने के लिए भूतकाल के संगृहीत संस्कारों में से कोई एक मन के स्तर पर आ जाता है। भूतकाल का एक संस्कार उत्पन्न होगा और अगले क्षण के लिए नया विज्ञान बन जायगा। एक विशेष प्रकार के कलाप को उत्पन्न करके संस्कार शारीरिक स्तर पर प्रकट होगा। संभवतः द्वेष का एक भूतकालिक संस्कार उत्पन्न होता है जो कलापों के रूप में अभिव्यक्त होता है, जिसका व्यक्ति शरीर के अंदर एक दुःखद जलन, संवेदना के रूप में अनुभव करता है। यदि व्यक्ति द्वेष के साथ इस संवेदना की प्रतिक्रिया करता है तो फिर नया द्वेष उत्पन्न होता है। फिर हमने विज्ञान के प्रवाह को नयी खुराक देना शुरू कर दिया है और चेतना के स्तर पर भूतकालिक संस्कार में से किसी के उत्पन्न होने का अवसर नहीं रह जाता है।

लेकिन जब एक दुःखद संवेदना प्रकट होती है और व्यक्ति प्रतिक्रिया नहीं करता है तब नये संस्कार उत्पन्न नहीं होते। फिर पुराने भंडार से उत्पन्न संस्कार समाप्त हो जाता है। दूसरे क्षण दूसरा पुराना संस्कार संवेदना के रूप में उत्पन्न होता है। फिर यदि व्यक्ति प्रतिक्रिया नहीं करता है तो वह भी समाप्त हो जाता है। इस प्रकार समता बनाए रखकर हम भूतकालिक संगृहीत संस्कारों को एक-एक करके मन के स्तर पर उत्पन्न होने देते हैं जो संवेदना के रूप में प्रकट होते हैं। धीरे-धीरे संवेदना के प्रति जागरूकता और समता बनाए रखकर हम पुराने संस्कारों का उन्मूलन कर देते हैं।

जब तक द्वेष का संस्कार बना रहता है, जीवन के किसी दुःखद अनुभव के आ जाने पर अचेतन मन की प्रवृत्ति द्वेष की प्रतिक्रिया करने की होगी। जब तक राग का संस्कार बना रहता है, सुखद स्थिति में मन की प्रवृत्ति सुखद प्रतिक्रिया करने की होगी। विपश्यना इन प्रतिक्रियाओं को मिटा देती है। जब हम विपश्यना का अभ्यास करते हैं, हमें सुखद और दुःखद संवेदनाओं का सामना करना पड़ता है। प्रत्येक संवेदना को समता के साथ देखकर कर हम धीरे-धीरे राग, द्वेष की प्रवृत्ति को कमजोर करते हैं और समाप्त कर देते हैं। जब एक विशेष प्रकार की प्रतिक्रिया का उन्मूलन हो जाता है, तब हम उस प्रकार के दुःख से मुक्त हो जाते हैं। जब एक के बाद दूसरी सभी प्रतिक्रियाओं का उन्मूलन हो जाता है, तब मन पूर्णतः मुक्त हो जाता है। जिसने इस प्रक्रिया को ठीक से समझा है उसने कहा है –

अनिच्चावत सङ्खारा उप्पादवयधम्मिनो।
उपज्जित्वा निरुज्झन्ति तेसं वूपसमो सुखो--

> संस्कार अनित्य हैं', इनका धर्म स्वयं उत्पन्न होना और व्यय होना है। उत्पन्न होकर जब वे निरुद्ध हो जाते हैं तब उनका शांत होना ही सुख है।[१]

प्रत्येक संस्कार का उदय-व्यय होता रहता है और फिर दूसरे क्षण उसका उदय होता है, अनंत आवृत्ति के रूप में। यदि हम प्रज्ञा का विकास कर लेते हैं और इनको द्रष्टाभाव से देखते हैं तो उनकी पुनरावृत्ति बंद हो जाती है और उन्मूलन आरंभ हो जाता है बशर्ते कि हम प्रतिक्रिया नहीं करें। जितने संस्कारों का उन्मूलन होता है, हम उतना सुख प्राप्त करते हैं, दुःखों से मुक्ति का सुख। यदि सभी भूतकालिक संस्कारों का उन्मूलन हो जाता है तब हमें पूर्ण मुक्ति के अनंत सुख का अनुभव होता है।

इसलिए विपश्यना ध्यान पुराने संस्कारों के उन्मूलन के लिए एकमात्र साधना है। अपने संपूर्ण जीवन के प्रत्येक क्षण में हमने प्रतिक्रिया ही की है। अब, अपने मन की जागरूकता और संतुलन के द्वारा हमें कुछ ऐसे क्षण प्राप्त होते हैं, जब हम प्रतिक्रिया नहीं करते हैं, नए संस्कार उत्पन्न नहीं करते हैं। ये कुछ क्षण चाहे जितने छोटे हों, बहुत शक्तिशाली हैं, वे विपरीत प्रक्रिया को गति प्रदान करते हैं, जो विशुद्धीकरण की प्रक्रिया है।

इस प्रक्रिया को प्रवर्तित करने के लिए हमें वस्तुतः कुछ करना नहीं है। बल्कि अपने आपको किसी नई प्रतिक्रिया करने से रोकना है। हम जिन संवेदनाओं का अनुभव करते हैं, उनका कोई भी कारण हो, उन संवेदनाओं को हम समता से देखते हैं। सजगता और समता से पुराने संस्कारों का उन्मूलन स्वतः हो जाता है ठीक उसी प्रकार जैसे कि दीपक जलाते ही कमरे का अंधेरा दूर हो जाता है।

बुद्ध ने एक बार एक ऐसे व्यक्ति की कहानी सुनाई जिसके पास दान की बहुत पारमिता थी, परंतु अंत में बुद्ध टिप्पणी करते हैं–

> यद्यपि उसने बहुत बड़ा दान दिया था, परंतु उसके लिए यह और अधिक फलदायी होता कि वह श्रद्धाभाव से सम्यकसंबुद्ध की, धम्म की और संघ की शरण में गया होता । और यदि उसने ऐसा किया होता तो उसके लिए यह और अधिक फलदायी होता कि वह श्रद्धाभाव से पंचशील को स्वीकार करता। और यदि उसने ऐसा किया होता तो यह उसके लिए उससे भी अधिक फलदायी होता कि वह सभी के प्रति सद्भाव बढ़ाता, कम से कम उतने समय के लिए जितना समय वह एक गाय को दुहने में लगाता है। यदि उसने यह सब किया होता तो उसके लिए उससे भी अधिक फलदायी क्षण तब होता जब वह अनित्यता की जागरूकता का विकास कम से कम उतने समय के लिए करता जितना समय चुटकी बजाने में लगता है।[२]

तात्पर्य यह कि क्षण भर की सजगता और समता करोड़ों के दान से भी अधिक फलदायी है।

अर्थात साधक यदि शरीर की संवेदनाओं के प्रति एक क्षण के लिए सजग रहता है और प्रतिक्रिया नहीं करता क्योंकि वह उनकी क्षणभंगुर प्रकृति को जानता है तब इस छोटे क्षण का भी बहुत प्रबल प्रभाव होगा। धैर्यपूर्वक बार-बार निरंतर अभ्यास के द्वारा समता के क्षणों में वृद्धि होगी और प्रतिक्रिया के क्षणों का ह्रास होगा। धीरे-धीरे मन की प्रतिक्रिया करने की आदत टूटेगी और पुराने संस्कारों का उन्मूलन होगा तब तक जब तक कि चित्त अतीत और वर्तमान के सभी संस्कारों से पूर्णतया मुक्त, यानी सभी दुःखों से विमुक्त नहीं हो जाता है।

प्रश्नोत्तर

प्रश्न – 'आज अपराह्न मैंने नयी मुद्रा (आसन) में बैठने का प्रयास किया, इसमें बिना हिले-डुले कमर को सीधा रखकर देर तक बैठना आसान था। लेकिन मैं अधिक संवेदनाओं का अनुभव नहीं कर सका। मुझे संदेह है कि संवेदनाएं वस्तुतः प्रकट होंगी भी या नहीं? क्या मुझे फिर पुरानी मुद्रा में ही बैठना चाहिए?'

स. ना. गोयन्का– 'जान-बूझकर कष्टदायक मुद्रा (विशेष आसन) का चुनाव करके संवेदनाओं को उत्पन्न करने की कोशिश नहीं करनी चाहिए। यदि साधना का यह सही ढंग होता तो हम आपसे कांटों की सेज पर सोने के लिए कहते। इन अतिवादों से कोई सहायता नहीं मिलेगी। एक सुखप्रद आसन का चुनाव कीजिए जिसमें शरीर सीधा हो और संवेदनाओं को स्वाभाविक रूप से आने दीजिए। उन्हें बलपूर्वक पैदा करने की बजाय स्वतः प्रकट होने दीजिए। वे प्रकट होंगी क्योंकि वे वहां विद्यमान हैं। ऐसा हो सकता है कि आप वैसी संवेदनाएं खोज रहे हों जिस प्रकार की संवेदना का आपने पहले कभी अनुभव किया था, और अब वैसा न होकर कुछ भिन्न हों।'

'पहले की अपेक्षा सूक्ष्मतर संवेदनाएं थीं। पहले की मुद्रा में बिना हिले-डुले देर तक बैठना मुश्किल था।'

'तब ठीक है। शायद आपने अधिक उपयुक्त मुद्रा का चुनाव किया है। अब आप संवेदनाओं को निसर्ग पर छोड़ दीजिए। संभवतः कुछ स्थूल संवेदनाएं गुजर गई हैं, अब आपको सूक्ष्मतर संवेदनाओं पर काम करना है, परंतु आपका मन अभी इतना तीक्ष्ण नहीं है कि उनका अनुभव कर

सके। उसे तीक्ष्ण बनाने के लिए कुछ देर आनापान पर काम कीजिए। इससे आपकी एकाग्रता बढ़ेगी और सूक्ष्म संवेदनाओं की अनुभूति आसान हो जायगी।'

'मैंने सोचा, संवेदनाएं स्थूल हों तो इसका अर्थ होगा कि कोई पुराना संस्कार ऊपर आ रहा है?'

'आवश्यक नहीं, कुछ विकार सूक्ष्म संवेदनाओं के रूप में भी प्रकट होते हैं। स्थूल संवेदनाओं की लालसा क्यों करें? स्थूल अथवा सूक्ष्म जो कुछ भी प्रकट होता है, आपका काम है केवल देखना।'

'क्या हमें यह पहचान करने का प्रयत्न करना चाहिए कि किस संवेदना का संबंध किस प्रतिक्रिया से है?'

'यह ऊर्जा का निरर्थक अपव्यय होगा। यह ऐसा ही होगा जैसे कोई गंदा कपड़ा धोते हुए रुककर यह सोचे कि कपड़े के हर एक धब्बे का क्या कारण है? साबुन का काम है केवल कपड़ा साफ करना, कारणों की खोज से इसमें कोई सहायता नहीं मिलेगी। इस उद्देश्य के लिए महत्त्वपूर्ण यह है कि हम धोने का एक साबुन लें और उसका सही ढंग से प्रयोग करें। यदि कोई व्यक्ति कपड़े को सही ढंग से धोता है तो सारी गंदगी दूर हो जाती है। इसी प्रकार आपको विपश्यना का साबुन मिला है। अब मन के सारे विकारों को दूर करने के लिए इसका प्रयोग करें। यदि आप संवेदना विशेष के कारणों की खोज करेंगे तो आप एक बौद्धिक खेल खेलेंगे तथा अनित्य और अनात्म की उपेक्षा करेंगे । दुःख से बाहर निकलने के लिए यह बौद्धिकता आपकी सहायता नहीं कर सकती है।'

'मुझे इस बारे में दुविधा है कि कौन किसका अथवा क्या निरीक्षण कर रहा है?'

'कोई भी बौद्धिक उत्तर आपको संतुष्ट नहीं कर सकता। आपको स्वयं खोज करनी है कि यह 'मैं' क्या है? कौन है जो यह सब कुछ कर रहा है? इसकी खोज और विवेचना-विश्लेषण स्वयं कीजिए। देखिए कि क्या कोई 'मैं' प्रकट होता है, यदि 'हां' तो, इसको देखिये । यदि कुछ नहीं प्रकट होता है, तो स्वीकार कीजिए कि, अरे यह 'मैं' तो एक भ्रांति है।'

'क्या कुछ मानसिक संस्कार कुशल नहीं हैं? उन्हें मिटाने की कोशिश क्यों करें?'

'कुशल संस्कार दुःखों से मुक्ति के काम के लिए हमें उत्प्रेरित करते हैं। परंतु जब लक्ष्य पूरा हो जाता है, तब सारे संस्कार कुशल तथा अकुशल पीछे छूट जाते हैं। ये नदी पार करने के लिए एक नाव की तरह हैं। नदी पार कर लेने पर कोई व्यक्ति अपनी यात्रा जारी रखते हुए उस नाव को अपने सिर पर नहीं ढोता। नाव का प्रयोजन पूरा हो गया । अब इसकी

कोई जरूरत नहीं, इसे पीछे छोड़ देना चाहिए।[3] इसी प्रकार जो पूर्ण मुक्त हो गया है उसको कुशल संस्कार की भी कोई आवश्यकता नहीं। व्यक्ति कुशल संस्कारों से नहीं अपितु चित्त विशुद्धि से मुक्त होता है।'

'जब हम विपश्यना आरंभ करते हैं तब पहले स्थूल संवेदनाएं और बाद में सूक्ष्म संवेदनाएं क्यों आती हैं?'

'विपश्यना पहले स्थूलतम विकारों के उन्मूलन का काम करती है। जब आप किसी फर्श को साफ करते हैं तब पहले बड़े-बड़े कूड़े-करकट और गंदगी को झाड़ू लगाते हैं और बाद में पुनः झाड़ू लगाते हैं तब छोटे धूल के कण इकट्ठा करते हैं। ऐसा ही विपश्यना अभ्यास में करते हैं। पहले मन के स्थूल विकारों का उन्मूलन होता है, बाद में सूक्ष्मतर विकार सुखद संवेदना के रूप में प्रकट होते हैं। लेकिन इन सुखद वेदनाओं के प्रति राग जगाने में खतरा है। इसलिए आपको सुखद ऐंद्रिय अनुभूति को अंतिम लक्ष्य न समझने के प्रति सावधान किया जाता है। आपको प्रत्येक संवेदना को तटस्थ रूप से देखना चाहिए जिससे कि आप सभी संस्कारों का उन्मूलन कर सकें।'

'आपने कहा कि हमारे अपने गंदे कपड़े हैं जिन्हें साफ करने के लिए साबुन भी है। आज मुझे ऐसा लग रहा है कि मेरा साबुन समाप्त हो चुका है। सुबह मेरी साधना बड़ी बलवती थी परंतु अपराह्न में मैं वस्तुतः बहुत निराशा और क्रोध का अनुभव करने लगा और सोचने लगा कि, 'अरे, इससे क्या लाभ!' यह ऐसा हुआ कि जब मेरी साधना प्रबल थी, मेरे अंदर के शत्रु, संभवतः अहंकार ने जो उस साधना के समान प्रबल था, मुझे पराजित कर दिया है । और तब मैंने अनुभव किया कि मुझमें उससे लड़ने की शक्ति नहीं है । क्या इससे बचने का कोई रास्ता है जिससे कि मुझे इतना कठोर संघर्ष न करना पड़े, कोई समझदारी का रास्ता?'

'समता बनाये रखें, यह सर्वाधिक होशियारी का रास्ता है। आपने जो कुछ अनुभव किया है, वह बिल्कुल स्वाभाविक है। जब आपको लगा कि आपका ध्यान ठीक तरह से चल रहा है आपका मन संतुलित था और इसने गहन अचेतन का भेदन किया। इस गहन ऑपरेशन (शल्यक्रिया) के परिणामस्वरूप एक पुरानी प्रतिक्रिया को धक्का लगा जो मन की सतह पर प्रकट हुई और दूसरी बैठक में आपको नकारात्मकता के तूफान का सामना करना पड़ा। ऐसी स्थिति में समता बनाये रखना आवश्यक है। नहीं तो नकारात्मकता आप पर हावी हो जायगी और आप काम नहीं कर सकेंगे। यदि समता कमजोर है तो आनापान का काम करें। जैसे समुद्र में कोई बड़ा तूफान आता है तो आपको अपना लंगर डालकर तूफान के

गुजरने की प्रतीक्षा करनी होती है। सांस आपका लंगर है। इस पर काम कीजिए तूफान गुजर जायगा। अच्छा है कि यह नकारात्मकता ऊपरी सतह पर आ गई है और आपको इसके उन्मूलन का अवसर मिला है। यदि आप समता बनाए रखें, यह आसानी से चला जायगा।'

'यदि मैं दु:ख का अनुभव नहीं करता हूं तो क्या साधना से मैं इतना अधिक लाभ पा रहा हूं?'

'यदि आप जागरूक और संतुलित हैं, तब दु:ख हो या नहीं वस्तुतः आपकी प्रगति हो रही है। ऐसा नहीं कि साधना के मार्ग पर प्रगति के लिए आपको दु:ख का अनुभव करना ही चाहिए। अगर दु:ख अनुभव नहीं हो रहा है तो मानें कि इस समय दु:ख नहीं है। जो जैसा है, उसको उसी रूप में देखें।'

कल मुझे एक ऐसा अनुभव हुआ जिसमें मुझे ऐसा लगा कि मेरा पूरा शरीर भंग हो गया है। मुझे ऐसा लगा कि यह सर्वत्र स्पंदनों का एक पुंज है।

'हां, ठीक है।'

'और जब ऐसा हुआ, मुझे याद आया कि जब मैं बच्चा था, मुझे ऐसा ही अनुभव हुआ था। इन सभी सालों में मैं उस अनुभव को पुनः प्राप्त करने की तलाश में था। और यह अब मुझे दुबारा मिला है।'

'हां, ठीक है।'

'अतः वस्तुतः मैं चाहता था कि यह अनुभव जारी रहे। मैं इसे बहुत देर तक रखना चाहता था। लेकिन यह बदल गया और समाप्त हो गया। और तब मैं इसे वापस लाने का काम कर रहा था लेकिन यह वापस नहीं आया। इसकी बजाय, आज सुबह मैंने केवल स्थूल संवेदनाओं को अनुभव किया।'

'हां, यह भी ठीक है।' जब जैसा, तब तैसा।

'तब मैंने समझा कि उस अनुभव को पुनः प्राप्त करने का प्रयत्न करके मैं अपने को कितना दु:खी बना रहा था?'

'हां, सही समझा।'

'और तब मैंने समझा कि वस्तुतः हम यहां किसी विशेष अनुभव की प्राप्ति के लिए नहीं हैं। क्या मैं ठीक कह रहा हूं?'

'हां, ठीक।'

'वस्तुतः हम यहां प्रत्येक अनुभव को बिना प्रतिक्रिया किये देखने के लिए हैं। क्या मैं ठीक हूं?'

'हां, ठीक हो।'

'इस प्रकार यह साधना वस्तुतः समता विकास की है, मैं ठीक कह रहा हूं।'

बिल्कुल 'ठीक।'

'मुझे ऐसा लगता है कि हमें एक-एक करके संस्कारों के उन्मूलन में हमेशा लगा ही रहना पड़ेगा?'

'ऐसा तब होगा जब एक क्षण की समता को पुराने संस्कारों में से एक की कमी को मापते रहेंगे। वास्तव में विपश्यना आपको चित्त के उस गहनतम स्तर तक ले जाती है और सभी संस्कारों का उन्मूलन कर देती है। इस प्रकार अपेक्षाकृत कम समय में आप संस्कारों के समस्त समूह का उन्मूलन कर सकते हैं बशर्ते कि आपकी सजगता और समता बलवती हो।'

'तब इस प्रक्रिया में कितना समय लगना चाहिए?'

'यह इस पर निर्भर करता है कि आपको संस्कारों के कितने बड़े भंडार का उन्मूलन करना है और आपकी साधना कितनी बलवती है। आप अपने पुराने संस्कारों के भंडार को माप नहीं सकते लेकिन निश्चिंत हो सकते हैं कि आप जितनी गंभीर साधना करते हैं, उतना ही शीघ्र मुक्ति के पथ पर आप आगे बढ़ते हैं। उस लक्ष्य की ओर बढ़ने के लिए दृढ़तापूर्वक काम करते रहिए। देर-सवेर वह समय आयगा ही जब आप अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेंगे।'

केवल देखना

आज जहां मुंबई स्थित है वहां एक बड़ा संन्यासी, संत पुरुष रहता था। जो लोग उससे मिलते, उसके चित्त की निर्मलता देखकर उसका बहुत आदर करते और बहुत से लोग दावा भी करते कि वह एक मुक्त पुरुष है। अपने बारे में इतनी ऊंची बातें सुनकर स्वाभाविक रूप से यह आदमी विश्वास करने लगा कि संभवतः मैं सचमुच ही अरहंत हूं। परंतु एक ईमानदार आदमी होने के कारण उसने सावधानीपूर्वक आत्मनिरीक्षण किया और पाया कि उसके चित्त में अब भी विकारों के अवशेष हैं। सचमुच जब तक ये विकार लेशमात्र भी हैं, तब तक कोई अरहंत नहीं हो सकता। इसलिए जो लोग उसके पास श्रद्धा प्रकट करने आते उनसे वह पूछता, 'क्या संसार में कोई अन्य ऐसा व्यक्ति भी है जो पूर्णमुक्त (अरहंत) समझा जाता है?

'हां है, श्रीमान' किसी ने उत्तर दिया, 'एक गौतम भिक्षु हैं जो बुद्ध के रूप में प्रसिद्ध हैं, और श्रावस्ती नगर में रहते हैं। वे अरहंत हैं और वे ऐसी विधि भी सिखाते हैं जिसके द्वारा कोई भी व्यक्ति मुक्ति प्राप्त कर सकता है।"

मुझे उस व्यक्ति के पास अवश्य जाना चाहिए, संन्यासी ने दृढ़ निश्चय किया, 'पूर्ण मुक्त बनने का तरीका मुझे उनसे सीखना ही चाहिए।' इसलिए वे मुंबई से अपनी यात्रा आरंभ कर सारा मध्य भारत पार करते हुए अंत में श्रावस्ती पहुँचे जो आजकल उत्तर भारत के उत्तर प्रदेश राज्य में है। श्रावस्ती पहुँचकर वे बुद्ध के ध्यान केंद्र पहुँचे और पूछा कि वे उनसे कहां मिल सकते हैं?

एक भिक्षु ने उत्तर दिया कि वे भिक्षाटन के लिए बाहर नगर गए हैं। आप यहां विश्राम कीजिए। वे शीघ्र ही वापस आ जाएँगे।'

'ओह, नहीं मैं विश्राम नहीं कर सकता। मेरे पास समय नहीं, जिस रास्ते से वे गए हैं, मुझे दिखा दीजिए न, मैं उनके पीछे-पीछे जाऊंगा'।

'ठीक है, यदि आप जिद करते हैं, तो कहता हूं । वे इस रास्ते से गए । आप चाहें तो उन्हें रास्ते में ढूंढ़ने का प्रयास कर सकते हैं!' एक क्षण भी बर्बाद किए बिना संन्यासी फिर चल पड़ा और नगर के बीच पहुँच गया। वहां उसने एक भिक्षु को घर-घर भोजन के लिए भिक्षा मांगते देखा। उस भिक्षु के चारों ओर जो शांत, सामंजस्यपूर्ण वातावरण था उससे संन्यासी को विश्वास हो गया कि यह बुद्ध ही

हैं। वहां से गुजरने वाले एक व्यक्ति से पूछने पर उन्हें मालूम हुआ कि ये वस्तुतः बुद्ध ही हैं।

वहां गली के बीच में संन्यासी बुद्ध के पास पहुँचे, उनके सामने झुके और उनके चरण पकड़ लिये। उन्होंने कहा, 'भंते, मुझे मालूम हुआ है कि आप पूर्णमुक्त पुरुष हैं और आप मुक्ति प्राप्त करने का मार्ग बताते हैं। कृपा करके यह विधि मुझे सिखाइए।'

बुद्ध ने कहा, 'हां, मैं ऐसी विधि सिखाता हूं और इसे आपको भी सिखाऊंगा। परंतु यह उचित समय अथवा स्थान नहीं है। आप मेरे ध्यान केंद्र पर जाइए और वहां मेरी प्रतीक्षा कीजिए। मै जल्द ही वापस आऊंगा और आपको विधि सिखाऊंगा।'

'नहीं, भंते, मैं प्रतीक्षा नहीं कर सकता'।

'क्या, आधे घंटे के लिए भी नहीं?।

'नहीं, भंते, मैं प्रतीक्षा नहीं कर सकता। कौन जानता है? आधे घंटे में मेरी मृत्यु हो सकती है। आधे घंटे में आपकी मृत्यु हो सकती है। आधे घंटे में आपके प्रति मेरी सारी श्रद्धा समाप्त हो सकती है तब फिर आप से यह विधि सीखने योग्य नहीं रह पाऊंगा। भंते, यही समय है, कृपया मुझे अभी सिखाइए'।

बुद्ध ने उसका अवलोकन किया और जान लिया, 'हां इस व्यक्ति के पास बहुत थोड़ा समय बचा है। वह कुछ ही मिनटों में मर जायगा। उसे यहीं और इसी वक्त धम्म दिया जाना चाहिए।" पर सड़क के बीचो-बीच खड़े होकर उसे कैसे धम्म सिखाएं? वे कुछ शब्द ही बोले, लेकिन उन शब्दों में उनकी पूरी शिक्षा थी 'आपके देखने में केवल देखना होना चाहिए, आपके सुनने में केवल सुनना, आपके सूंघने में केवल सूंघना, आस्वादन करने, स्पर्श करने में, केवल आस्वादन करना, केवल स्पर्श करना और आपके जानने में केवल जानना होना चाहिए।"

जब छः इंद्रियों में से किसी एक का उसके विषय से संपर्क स्थापित होता है तब कोई मूल्यांकन नहीं होना चाहिए और न उसे संज्ञा से देखना चाहिए। एक बार जब संज्ञा द्वारा किसी अनुभव का अच्छे या बुरे के रूप में मूल्यांकन आरंभ होता है, तब व्यक्ति अपनी पुरानी अंध प्रतिक्रिया के कारण संसार को विकृत रूप में देखता है। सारे संस्कारों से अपने मन को मुक्त रखने के लिए व्यक्ति को पुराने संस्कारों के आधार पर मूल्यांकन नहीं करना चाहिए और बिना मूल्यांकन तथा प्रतिक्रिया किये सिर्फ उसके बारे में जागरूक रहना चाहिए।

पूर्व पुण्य पारमी संपन्न संन्यासी इतने निर्मल चित्त का व्यक्ति था कि मार्गदर्शन के ये कुछ शब्द ही उसके लिए पर्याप्त थे। सड़क के किनारे वहीं बैठ गया और अपनी अंतर्निहित सच्चाई पर उसने अपना ध्यान केंद्रित किया। कोई मूल्यांकन नहीं, कोई प्रतिक्रिया नहीं, उसने अपने अंदर के परिवर्तन की प्रक्रिया को केवल देखा और जीवन के बचे हुए कुछ मिनटों में ही उसने परम लक्ष्य निर्वाण की प्राप्ति कर ली, वह पूर्णमुक्त हो गया, अरहंत हो गया।[४]

लक्ष्य

'जो उत्पन्न होता है, वह नष्ट होता ही है।'[१] इस सच्चाई का अनुभव बुद्ध की शिक्षा का सारतत्त्व है। चित्त (नाम) और शरीर (रूप) उन प्रक्रियाओं का पुंज (समूह) मात्र हैं जो निरंतर उत्पन्न होती हैं और नष्ट हो जाती हैं। हमारा दुःख तब उत्पन्न होता है जब हम उन प्रक्रियाओं के प्रति, जो वस्तुतः क्षणभंगुर तथा निस्सार हैं, आसक्ति करते हैं । यदि हम इन प्रक्रियाओं की अनित्यता का प्रत्यक्ष अनुभव कर सकें और इनके प्रति तटस्थ बने रहें तब इनके प्रति हमारी आसक्ति समाप्त हो जाती है। साधक यही काम करते हैं। वे अपने अंदर की क्षण-क्षण बदलती संवेदनाओं को देखकर उनकी अनित्य प्रकृति को समझते हैं और जब कोई संवेदना प्रकट होती है तब वे प्रतिक्रिया नहीं करते अपितु समता बनाए रखते हैं। ऐसा करके वे अपने चित्त के पुराने संस्कारों को ऊपरी सतह पर आने पर नष्ट हो जाने देते हैं। जब सारे संस्कार और आसक्ति समाप्त हो जाती है, तब दुःख समाप्त हो जाता है और हम मुक्ति का अनुभव करते हैं। यह एक लंबे समय का काम है जिसमें लगातार अभ्यास की आवश्यकता होती है। साधना मार्ग के प्रत्येक चरण पर लाभ प्रकट होते हैं लेकिन उनकी प्राप्ति के लिए लगातार बार-बार प्रयास करने की आवश्यकता होती है। केवल धैर्य और दृढ़तापूर्वक निरंतर काम करके साधक अपने लक्ष्य की ओर आगे बढ़ता है।

परम सत्य का प्रतिवेधन

इस मार्ग पर प्रगति के तीन चरण हैं। पहला है केवल विधि (तकनीक) के बारे में जानना कि यह क्यों और कैसे की जाती है। दूसरा है इसका अभ्यास। तीसरा है प्रतिवेधन, अपने बारे में सच्चाई का गहराई तक प्रतिवेधन करने के लिए विधि का प्रयोग करते हैं जिससे कि परम लक्ष्य निर्वाण तक पहुँचा जा सके।

बुद्ध ने प्राणियों के– अपने तथा अन्यों के आकार, रूप, रंग, स्वाद, गंध, दुःख, सुख, विचार और चित्तवृत्तियों के प्रकट संसार के अस्तित्व को इनकार नहीं किया । उन्होंने केवल इतना कहा कि ये परम सत्य नहीं हैं, बल्कि ये क्षणभंगुर हैं। सामान्य दृष्टि से हम केवल बड़े पैमाने वाले ढांचे को समझते हैं जिसमें अधिक सूक्ष्म प्रपंच का अपने आप आविर्भाव होता रहता है। केवल ढांचे को देखने से और उनके अंतर्निहित घटकों को न देखने से, हम प्रथमतः उनकी

भिन्नताओं से परिचित होते हैं। अतः उनमें भेद करते हैं, उन पर लेबल लगाते हैं, उनके प्रति अभिरुचि और पूर्वाग्रह रखते हैं, उनको पसंद-नापसंद करना प्रारंभ करते हैं जो प्रक्रिया अंततः राग-द्वेष में विकसित होती है।

राग-द्वेष की आदत से उबरने के लिए न केवल एक संपूर्ण दृष्टि का होना आवश्यक है, बल्कि वस्तुस्थित को उनकी गहराई में देखना, अंतर्निहित तथ्यों को समझना भी आवश्यक है, जो प्रकट सत्य का निर्माण करते हैं। ठीक यही बात विपश्यना का अभ्यास हमें करने के लिए कहता है।

स्वभावतः आत्मनिरीक्षण स्वयं के सर्वाधिक स्पष्ट रूप– शरीर के विभिन्न भाग, विभिन्न अंग तथा अवयव से आरंभ होता है। गहरे (पैने) निरीक्षण से प्रकट होता है कि शरीर के कुछ भाग ठोस, कुछ द्रव, कुछ गतिशील अथवा स्थिर हैं। संभवतः हम शरीर के तापमान को अपने चारों ओर के वातावरण के तापमान से भिन्न समझते हैं। ये सभी निरीक्षण अधिक आत्मजागरूकता के विकास में सहायता कर सकते हैं तदपि वे सभी आत्मनिरीक्षण, भासमान सत्य को संघटित आकार अथवा रूप में देखने के परिणाम हैं। परिणामस्वरूप, भेद जैसे- अभिरुचि, पूर्वाग्रह, राग तथा द्वेष बने रहते हैं।

साधक के रूप में अपने अंदर की संवेदनाओं को देखने का अभ्यास करके हम आगे बढ़ते हैं। ये संवेदनाएं वस्तुतः एक सूक्ष्मतर सच्चाई को प्रकट करती हैं जिनके बारे में पहले हम कुछ नहीं जानते थे । प्रथमतः हम शरीर के विभिन्न भागों में भिन्न-भिन्न प्रकार की संवेदनाओं से परिचित होते हैं। जो उत्पन्न होतीं हैं, कुछ देर के लिए रुकती हैं और अंततः नष्ट हो जाती हैं। यद्यपि हम सतही स्तर से आगे निकल गए हैं, फिर भी अभी हम प्रकट, भासमान सत्य के सामूहिक ढांचे को ही देख रहे हैं। इस कारण हम अभी भेदभाव तथा राग, द्वेष से मुक्त नहीं हुए हैं।

यदि हम परिश्रमपूर्वक अभ्यास जारी रखें, तो देर-सवेर हम एक ऐसी अवस्था पर पहुँचते हैं जहां संवेदनाओं का स्वभाव बदलता है। अब हम सारे शरीर में एक तरह की सूक्ष्म संवेदनाओं को जानते हैं जो बहुत तेज गति से उत्पन्न और नष्ट होती हैं। हमने संघटित ढांचे से परे प्रतिवेधन किया है जिससे हम उस अंतर्निहित तथ्य को, नन्हें-नन्हें परमाणु कणों को, जिनसे सभी पदार्थ बने हैं, जिनसे उनकी रचना हुई है, को समझ सकें। हम इन कणों की क्षणभंगुर प्रकृति को, इनके निरंतर उदय-व्यय होने का प्रत्यक्ष अनुभव करते हैं। अब हम अंदर जो कुछ देखते हैं, रक्त अथवा अस्थि, ठोस, द्रव, गैस चाहे सुंदर अथवा असुंदर, उन सबको एक कंपन ही कंपन समझते हैं जिनमें एक दूसरे से भेद नहीं किया जा सकता। अंततोगत्वा उनके भेदीकरण और लेबल लगाने की प्रक्रिया समाप्त हो

जाती है। हमने अपने शरीर में ही पदार्थ के परमार्थ सत्य, उसकी निरंतर गतिशीलता, तथा उदय-व्यय का अनुभव कर लिया।

इसी प्रकार मानसिक प्रक्रियाओं के भासमान सत्य का सूक्ष्मतर स्तर पर प्रतिवेधन किया जा सकता है। रुचि-अरुचि की प्रतिक्रिया होती है। दूसरे क्षण मन रुचि तथा अरुचि की प्रतिक्रिया को दुहराता है और इसे बलवती बनाता है जब तक कि ये राग-द्वेष नहीं बन जाती हैं। हमें केवल घनीभूत प्रतिक्रिया की जानकारी होती है। इस सतही समझ से हम उनकी पहचान करने लगते हैं और उनको सुखद-दुःखद, अच्छा-बुरा, चाही-अनचाही रूप में देखने लगते हैं। परंतु जैसा कि भासमान भौतिक शारीरिक सच्चाई के मामले में होता है, वैसे ही चित्त की ठोस वृत्तियों में भी होता है जब हम अंदर की संवेदनाओं को देखने लगते हैं, ये विघटित हो जाते हैं। जैसे रूप उप आणविक कणों की तरंगों के सिवा और कुछ नहीं, उसी तरह प्रबल मनोवेग भी क्षणिक रुचि-अरुचि, संवेदनाओं की क्षणिक प्रतिक्रियाओं का केवल संघटित रूप है। एक बार जब प्रबल मनोवेग भी सूक्ष्मतर रूप में विघटित हो जाता है तो अभिभूत करने की इनकी शक्ति नहीं रह जाती है।

शरीर के विभिन्न भागों में विभिन्न स्थूल संवेदनाओं को देखने से हमें लगातार उदय-व्यय होने वाली एक तरह की संवेदनाओं की जानकारी होती है। पूरे शरीर की संवेदनाएं बड़ी तीव्र गति से उत्पन्न और नष्ट होती हैं, उनका अनुभव कंपनों के प्रवाह की तरह, पूरे शरीर में बहने वाली धारा की तरह किया जा सकता है। हम जब कभी अपना ध्यान शारीरिक संरचना के अंदर ले जाते हैं, हमें उदय-व्यय के अतिरिक्त किसी और चीज का ज्ञान नहीं होता है। जब मन में कोई विचार प्रकट होता है तब हमें उसके सहचारी शारीरिक संवेदनाओं के उदय-व्यय की जानकारी होती है। शरीर और मन का भासमान घनत्व पिघल जाता है और हमें रूप, नाम और संस्कारों के परमार्थ सत्य का अनुभव होता है जो कंपन, दोलन और तीव्र वेग के साथ होने वाले उदय-व्यय के अतिरिक्त कुछ नहीं।

इस सत्य का अनुभव करने वाले (बुद्ध) ने कहा है ---

सब्बो आदीपितो लोको, सब्बो लोको पधूपितो।
सब्बो पज्जलितो लोको, सब्बो लोको पकम्पितो॥[२]

सारे लोक संतप्त ही संतप्त हैं, सारे लोक संतापित ही संतापित हैं।
सारे लोक प्रज्वलित ही प्रज्वलित हैं, सारे लोक प्रकंपित ही प्रकंपित हैं।

भंग के इस सोपान पर पहुँचने के लिए साधक को जागरूकता तथा समता के विकास के अतिरिक्त और कुछ करने की आवश्यकता नहीं। जिस प्रकार एक वैज्ञानिक अधिक सूक्ष्म तथ्यों को अपने माइक्रोस्कोप के ताल लैंस को बढ़ाकर देखता है, उसी प्रकार जागरूकता और समता का विकास करके साधक अपने अंदर की सूक्ष्मतर सच्चाइयों को देखने के लिए अपनी क्षमता को बढ़ाता है।

यह अनुभव जब होता है, वस्तुतः बहुत सुखद होता है। सभी दर्द और पीड़ाएं मिट जाती हैं, संवेदना-विहीन सभी क्षेत्र लुप्त (गायब) हो जाते हैं। व्यक्ति शांति, सुख और परमानंद का अनुभव करता है। बुद्ध इसका वर्णन इस प्रकार करते हैं–

यतो यतो सम्मसति, खन्धानं उदयब्बयं।
लभती पीतिपामोज्जं, अमतं तं विजानतं॥[३]

साधक (सम्यक सावधानता के साथ) जब-जब (शरीर और चित्त) स्कंधों के उदय-व्यय रूपी अनित्यता की विपश्यना द्वारा अनुभूति करता है, तब-तब उसे प्रीति-प्रमोद (रूपी अध्यात्मक-सुख) की उपलब्धि होती है। ज्ञानियों के लिए यह अमृत है।

साधना के मार्ग पर आगे बढ़ने से परमसुख का उदय होना ही है, जब मन और शरीर का भासमान घनत्व (ठोसपना) पिघल जाता है। इस सुखद स्थिति के आह्लाद से हम यह सोच सकते हैं कि यह अंतिम लक्ष्य है। लेकिन यह केवल मार्ग के बीच का पड़ाव (स्टेशन) है। इस बिंदु से, हम मन और शरीर के परे परमार्थ सत्य के अनुभव के लिए, दुःख से पूर्ण मुक्ति की प्राप्ति के लिए और आगे बढ़ते हैं ।

बुद्ध के इन शब्दों का अर्थ हमारी अपनी विपश्यना साधना से बहुत स्पष्ट हो जाता है। प्रकट सत्य से सूक्ष्म सत्य का प्रतिवेधन करते हुए हम सारे शरीर में कंपनों के धाराप्रवाह का रस लेना शुरू कर देते हैं। यों करते हुए जब अचानक धाराप्रवाह गायब हो जाता है तब फिर शरीर के कुछ भागों में घनीभूत, दुःखद संवेदना का अनुभव करते हैं और दूसरे भागों में संभवतः कोई संवेदना नहीं भी होती है तब हम फिर मन में प्रबल वृत्तियों का अनुभव करते हैं। इस प्रकार यदि हम इस नयी स्थिति के प्रति द्वेष अनुभव करने लगते हैं और धारा-प्रवाह के वापस लौटने की लालसा करते हैं, तो हमने विपश्यना को नहीं समझा। हमने इसे एक खेल बना दिया जिसमें हमारा लक्ष्य सुखद संवेदनाओं को प्राप्त करना और दुःखद को दूर करना है। यह तो वही खेल हुआ जिसे हम जिंदगी भर खेलते रहे,

खींच-तान, आकर्षण-विकर्षण का कभी न खत्म होने वाला चक्कर, जो दुःख के अलावा और कुछ नहीं देता है।

फिर भी, जैसे-जैसे प्रज्ञा बढ़ती है, हम समझते हैं कि भंग के अनुभव के बाद भी स्थूल संवेदनाओं का फिर लौटना हमारे पीछे जाने का नहीं अपितु आगे बढ़ने का संकेतक है। हम विपश्यना की साधना किसी विशेष प्रकार की संवेदना के अनुभव के उद्देश्य से नहीं करते हैं अपितु चित्त को सभी संस्कारों से मुक्त बनाने के लिए करते हैं। यदि हम किसी संवेदना के साथ प्रतिक्रिया करते हैं, तो हम अपना दुःख बढ़ाते हैं। यदि हम समता में रहते हैं तो कुछ संस्कार गुजर जाते हैं, संवेदना हमारे लिए दुःखों से मुक्त करने का साधन बन जाती है। बिना किसी प्रतिक्रिया के दुःखद संवेदनाओं को देखकर हम द्वेष का उन्मूलन करते हैं। बिना किसी प्रतिक्रिया के सुखद संवेदनाओं को देखकर हम राग का उन्मूलन करते हैं। बिना किसी प्रतिक्रिया के अदुःख-असुख संवेदनाओं को देखकर हम मोह, अज्ञान का उन्मूलन करते हैं। अतः कोई भी संवेदना, कोई भी अनुभव तत्त्वतः अच्छा या बुरा नहीं है। यदि हम समता में हैं तो हर संवेदना अच्छी है, यदि हम अपनी समता खोते हैं, तो यह बुरी है।

इस समझ के साथ हम प्रत्येक संवेदना का उपयोग संस्कार-उन्मूलन के लिए एक उपकरण के रूप में करते हैं। हर अवस्था संस्कार-उपेक्षा यानी सभी संस्कारों के प्रति समता भाव की है जो विभिन्न चरणों से गुजरती हुयी क्रमशः मुक्ति के चरम सत्य निर्वाण तक पहुँचाती है।

मुक्ति की अनुभूति

मुक्ति संभव है। व्यक्ति सभी संस्कारों, सभी दुःखों से मुक्ति प्राप्त कर सकता है। बुद्ध ने इसकी व्याख्या की है –

“अत्थि भिक्खवे, तदायतनं, यत्थ नेव पथवी, न आपो, न तेजो, न वायो, न आकासानञ्चायतनं, न विञ्ञाणञ्चायतनं, न आकिञ्चञ्ञायतनं, न नेवसञ्ञानासञ्ञायतनं, नायं लोको, न परलोको, न उभो चन्दिमसूरिया। तत्रापाहं, भिक्खवे, नेव आगतिं वदामि, न गतिं न ठितिं, न चुतिं, न उपपत्तिं; अप्पतिट्ठं, अप्पवत्तं, अनारम्मणमेवेतं। एसेवन्तो दुक्खस्सा”ति।[४]

> यह एक ऐसा अनुभव क्षेत्र है जो संपूर्ण रूप जगत, संपूर्ण नाम जगत से परे है, जो न तो इहलोक है, न परलोक है और न दोनों है। न चंद्रमा है, न सूर्य है। इसे मैं न तो उदय-व्यय, न स्थिर, न जन्म, न पुनर्जन्म कहता हूं। यह बिना आधार का, बिना विकास का, बिना नींव का है । यह दुःख-निरोध है।[४]

उन्होंने यह भी कहा–

“अत्थि, भिक्खवे, अजातं अभूतं अकतं असङ्खतं। नो चेतं, भिक्खवे, अभविस्स अजातं अभूतं अकतं असङ्खतं, नयिध जातस्स भूतस्स कतस्स सङ्खतस्स निस्सरणं पञ्ञायेथ। यस्मा च खो, भिक्खवे, अत्थि अजातं अभूतं अकतं असङ्खतं, तस्मा जातस्स भूतस्स कतस्स सङ्खतस्स निस्सरणं पञ्ञायती”ति।[५]

> निर्वाण, अजात, अभूत, अकृत, असंस्कृत है। यदि वह अजात, अभूत, अकृत, असंस्कृत नहीं होता तो जातकृत, भूतकृत, संस्कृत से मुक्ति नहीं जानी जाती। क्योंकि वह अजात.... है इसलिए जात, भूत....से मुक्ति जानी जाती है।[५]

निर्वाण कोई ऐसी अवस्था नहीं है जहां मृत्यु के पश्चात लोग जाते हैं। इसका अनुभव हमें यहीं, अभी, हमारे अंदर होता है। निषेध के रूप में इसका समस्त वर्णन नकारात्मक शब्दों में किया जाता है इसलिए नहीं कि यह एक निषेधात्मक अनुभव है अपितु इसलिए कि इसके वर्णन के लिए हमारे पास और कोई रास्ता नहीं है। प्रत्येक भाषा के पास भौतिक और मानसिक तथ्यों के क्षेत्र को अभिव्यक्त करने के लिए शब्द होते हैं परंतु जो कुछ मन और शरीर के परे है उसके वर्णन के लिए शब्द अथवा अवधारणाएं नहीं होतीं। यह (निर्वाण) सभी प्रकार की श्रेणियों, सभी प्रकार की भिन्नताओं का खुले आम विरोध करता है। हम इसका वर्णन, जो कुछ यह नहीं है, उसके कथन द्वारा ही कर सकते हैं।

वस्तुतः निर्वाण की व्याख्या करना निरर्थक है। कोई भी वर्णन भ्रामक होगा। इसके लिए विवेचना और तर्क करने की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण है इसका अनुभव करना। बुद्ध ने कहा–

इदं दुक्खनिरोधं अरियसच्च’न्ति मे, भिक्खवे पुब्बे अननुस्सुतेसु धम्मेसु चक्खुं उदपादि, ञाणं उदपादि, पञ्ञा उदपादि, विज्जा उदपादि, आलोको उदपादि।[६]

कि ‘दुःख निरोध आर्य सत्य’ का अनुभव स्वयं करना है। जब किसी ने निर्वाण का अनुभव कर लिया तभी यह उसके लिए वास्तविक है। तब उससे संबंधित सभी तर्क अप्रासंगिक हो जाते हैं।

मुक्ति के परम सत्य के अनुभव के लिए हमारे लिए पहले प्रकट सच्चाई के परे का प्रतिवेधन और शरीर तथा मन की भंगावस्था का अनुभव करना आवश्यक है। साधक प्रकट सत्य से परे जितना अधिक प्रतिवेधन करता है उतना अधिक राग, द्वेष और आसक्ति को छोड़ता है तथा परमार्थ सत्य के अधिक निकट पहुँचता है। विभिन्न चरणों में काम करते हुए साधक स्वाभाविक रूप से

एक ऐसे सोपान पर पहुँचता है जहां अंतिम चरण निर्वाण का अनुभव है। इसके लिए लालायित होने की कोई बात नहीं, उसके आने के बारे में संदेह करने का कोई कारण नहीं। इसे उन सबके पास आना ही चाहिए जो सही ढंग से धर्म धारण करते हैं। यह कब आयगा कोई नहीं कह सकता। यह अंशतः प्रत्येक व्यक्ति में संचित संस्कार पर और अंशतः उनके उन्मूलन के लिए किए गए उसके प्रयास पर निर्भर करता है। लक्ष्य प्राप्ति के लिए कोई इतना ही कर सकता है और इतना ही करना आवश्यक है कि बिना प्रतिक्रिया किए प्रत्येक संवेदना को देखना जारी रखे।

हम यह तय नहीं कर सकते कि हम परम सत्य निर्वाण का अनुभव कब करेंगे। परंतु यह सुनिश्चित कर सकते हैं कि हम इसकी ओर प्रगति करते जा रहे हैं। हम चित्त की वर्तमान अवस्था का नियंत्रण कर सकते हैं। हमारे बाहर या भीतर जो कुछ भी होता हो, अपनी समता बनाए रखकर हम इसी क्षण मुक्ति प्राप्त करते हैं। बुद्ध ने या जिसने भी इस परम सत्य को प्राप्त किया, यही कहा है– **"यो खो, आवुसो, रागक्खयो दोसक्खयो मोहक्खयो- इदं वुच्चति निब्बान"न्ति**[७] 'राग का निरोध, द्वेष का निरोध, मोह का निरोध, निर्वाण है।' उस सीमा पर पहुँच कर जहां चित्त इनसे मुक्त हो जाता है, साधक मुक्ति का अनुभव करता है।

प्रत्येक क्षण जब हम ठीक प्रकार से विपश्यना का अभ्यास करते हैं, इस मुक्ति का अनुभव कर सकते हैं। आखिर धम्म की परिभाषा ही है कि मुक्ति का फल यहीं और अभी मिलना चाहिए, न कि भविष्य में। साधना के मार्ग के प्रत्येक चरण पर हमें इसके लाभ का अनुभव होना चाहिए। प्रत्येक चरण सीधे लक्ष्य की ओर बढ़ना ही चाहिए। इस क्षण संस्कारों से मुक्त जो चित्त है, वह परम शांत होता है। ऐसा प्रत्येक क्षण हमें पूर्ण मुक्ति के निकट ले जाता है।

हम निर्वाण के विकास के लिए प्रयास नहीं कर सकते क्योंकि निर्वाण का विकास नहीं होता है, यह एक अवस्था है। लेकिन हम उस गुण के विकास की कोशिश कर सकते हैं जो हमें निर्वाण तक ले जाता है। यह गुण है समता। प्रत्येक क्षण जब हम प्रतिक्रिया किए बिना सच्चाई का निरीक्षण करते हैं, परम सत्य का प्रतिवेधन करते हैं। सच्चाई की पूर्ण जागरूकता पर आधारित समता मन का सर्वोच्च गुण है।

वास्तविक सुख

एक बार बुद्ध से यह समझाने के लिए कहा गया कि वास्तविक सुख क्या है? उन्होंने अनेक कुशल कर्मों के नाम गिनाये जो ऐसे सुख के उत्पादक हैं, जो

वास्तविक उत्तम मंगल है। इन मंगल धर्मों की दो श्रेणियां हैं – अर्थात परिवार और समाज के प्रति अपने उत्तरदायित्व की पूर्ति करते हुए ऐसे कर्म करना जो दूसरों का हित संपादन करते हैं और ऐसे कर्म करना जो चित्त को निर्मल बनाते हैं। दूसरों के हित से अपना हित अलग नहीं किया जा सकता है। अंत में उहोंने कहा––

फुट्ठस्स लोकधम्मेहि, चित्तं यस्स न कम्पति।
असोकं विरजं खेमं, एतं मंगलमुत्तमं॥[८]

जिसका चित्त लोकधर्मों (लाभ-हानि, निंदा-प्रशंसा, यश-अपयश, सुख-दुःख) से कंपित नहीं होता, वह निःशोक, निर्मल तथा निर्भय रहता है – यह उत्तम मंगल है।

अपने शरीर-स्कंध और चित्त-स्कंध के छोटे-से-छोटे भाग में अथवा बाहरी दुनिया में कुछ भी होता हो, बिना तनाव के अथवा बिना राग, द्वेष किये, पूरी सहजता और मुस्कान के साथ व्यक्ति उसका सामना करने में समर्थ होता है। प्रत्येक स्थित में चाहे वह सुखद-दुःखद हो, इच्छित-अनिच्छित हो उसे कोई चिंता नहीं होती। अनित्यता की समझ के साथ वह पूर्ण सुरक्षित अनुभव करता है, यह उत्तम मंगल है।

यह जानते हुए कि आप स्वयं अपना मालिक हैं और कुछ भी आपको अभिभूत नहीं कर सकता, जीवन जो कुछ आपको देता है, उसे मुस्कराते हुए आप स्वीकार कर सकते हैं– यह मन की पूर्ण समता है, यह वास्तविक मुक्ति है। विपश्यना अभ्यास के द्वारा इसे हम यहीं और अभी प्राप्त कर सकते हैं। वास्तविक समता केवल अभावात्मक अथवा निष्क्रिय अलगाव नहीं है। यह किसी ऐसे व्यक्ति की अंध स्वीकृति अथवा भावशून्यता नहीं है जो जीवन की समस्याओं से पलायन चाहता है, अथवा जो रेत में अपना सिर छिपाने की कोशिश करता है बल्कि यह चित्त के वास्तविक संतुलन, समस्याओं के प्रति पूर्ण जागरूकता तथा सच्चाई के सभी स्तरों की जागरूकता पर आधारित है।

राग अथवा द्वेष के अभाव का अभिप्राय निर्मम उदासीनता की मनोवृत्ति नहीं है जिसमें व्यक्ति स्वयं की मुक्ति का आनंद लेता है और दूसरों के दुःखों पर कोई ध्यान नहीं देता। इसके विपरीत वास्तविक समता को ठीक ही 'पवित्र उपेक्षा' कहा गया है। यह एक गत्यात्मक गुण है, चित्त-विशुद्धि की अभिव्यक्ति है। मन जब अंध प्रतिक्रिया की आदत से मुक्त हो जाता है, तब सचमुच सकारात्मक कर्म कर सकता है जो रचनात्मक, उत्पादक एवं स्वयं तथा दूसरों के लिए लाभकारी ही

होता है। उपेक्षा के साथ विशुद्ध मन के अन्य गुण उपजते हैं; मैत्री अर्थात बदले में कोई चीज चाहे बिना दूसरों का हित संपादन करना, दूसरों की विफलता और दुःख में उनके प्रति करुणा और उनकी सफलता और सौभाग्य में मुदिता। ये चार गुण (ब्रह्म विहार) विपश्यना अभ्यास के अपरिहार्य परिणाम हैं।

पहले व्यक्ति हमेशा जो कुछ अपने लिए अच्छा था, उसे अपने पास रखने की कोशिश करता था और जो कुछ अनिच्छित था, उसे दूसरों के लिए छोड़ देता था। अब वह समझ गया है कि दूसरों की खुशी की कीमत पर अपनी खुशी प्राप्त नहीं की जा सकती है। दूसरों को खुशी देने में ही स्वयं को खुशी मिलती है। इसलिए व्यक्ति के पास जो कुछ अच्छा है, वह उसे दूसरों के साथ बांटना चाहता है। दुःखों से उबरने और मुक्ति का अनुभव करने पर व्यक्ति समझता है कि यही सबसे बड़ा मंगल है। इस प्रकार व्यक्ति चाहता है कि दूसरे भी इस मंगल का अनुभव करें और अपने दुःखों से बाहर निकलने का रास्ता ढूंढ़ निकालें।

विपश्यना ध्यान की तार्किक परिणति है– मेत्ता भावना अर्थात दूसरों के प्रति मैत्री का विकास। पहले इस भावना के प्रति कोई दिखावटी प्रेम दिखाता होगा परंतु उसके अंतर्मन की गहराई में राग, द्वेष की वही पुरानी प्रक्रिया चलती रहती थी। अब कुछ सीमा तक प्रतिक्रिया की प्रक्रिया बंद हो गई है। अहंकार की पुरानी आदत चली गई है और अंतर्मन की गहराई से सद्भावना का स्रोत स्वाभाविक रूप से प्रवाहित होने लगा है। इसके पीछे लगी शुद्ध चित्त की संपूर्ण शक्ति के साथ यह सद्भावना सबके हित के लिए एक शांत, सामंजस्यपूर्ण वातावरण निर्माण करने के लिए बहुत बलशाली हो सकती है।

कुछ ऐसे लोग हैं जो यह सोचते हैं कि सदा संतुलित बने रहने अर्थात समता में बने रहने का अर्थ यह है कि व्यक्ति जीवन के संपूर्ण वैविध्य का आनंद नहीं उठा सकता मानो कि एक चित्रकार के पास विविध रंगों से भरी रंगपट्टिका है और वह केवल भूरे रंग का प्रयोग करना चाहे अथवा किसी के पास पियानो है और वह केवल मध्य 'सी' का स्वर बजाना चाहे। यह समता की गलत समझ है। वास्तविकता यह है कि पिआनो बेसुरा है और हम उसे बजाना नहीं जानते। आत्माभिव्यक्ति के नाम पर महज कुंजियों को दबाने से केवल बेसुरापन उत्पन्न होगा। लेकिन यदि हम उस वाद्ययंत्र का सुर मिलाना सीख लें और उसे ठीक ढंग से बजाएं तो हम संगीत उत्पन्न कर सकते हैं। जब निम्नतम स्वर से उच्चतम स्वर तक कुंजी पटल की पूरी श्रेणी का हम उपयोग करते हैं तब प्रत्येक स्वर जिसे हम बजाते हैं, सौंदर्य एवं समरसता की सृष्टि करता है।

बुद्ध ने कहा कि चित्त-शुद्धि तथा पूर्ण प्रज्ञा प्राप्ति के द्वारा व्यक्ति उल्लास, परमानंद, प्रश्रब्धि, जागरूकता, पूरी समझ और सच्चे सुखों का अनुभव करता है।[९] एक संतुलित चित्त से, समताभरे चित्त से हम जीवन का और अधिक आनंद उठा सकते हैं। जब एक सुखद स्थिति प्रकट होती है, तब हम वर्तमान क्षण की पूर्ण एवं निर्विघ्न जागरूकता के साथ, इसका पूरा स्वाद ले सकते हैं। लेकिन जब यह अनुभव समाप्त हो जाता है, तब दुःखी नहीं होते हैं। यह समझते हुए कि इसका परिवर्तन होना ही था, हम मुस्कराते रहते हैं। इसी प्रकार जब कोई दुःखद स्थिति प्रकट होती है, तब परेशान नहीं होते हैं। इसकी बजाय, हम इसे समझते हैं और ऐसा करके संभवतः इसको बदलने का कोई रास्ता ढूंढते हैं। यदि यह हमारे सामर्थ्य में नहीं है तो भी यह अच्छी तरह जानते हुए कि यह अनुभव अनित्य है और इसे समाप्त होना ही है, हम शांत बने रहते हैं। इस प्रकार अपने मन को तनावमुक्त रखकर, हम अधिक आनंददायक और रचनात्मक जीवन जी सकते हैं।

एक कहानी है कि बर्मा में लोग सयाजी ऊ बा खिन के शिष्यों की यह कहकर आलोचना करते थे कि उनमें विपश्यना साधना करने वाले व्यक्ति के उपयुक्त गंभीर आचरण का अभाव है। एक शिविर में आलोचकों ने स्वीकार किया कि जैसा चाहिए था वैसा उन्होंने गंभीरतापूर्वक काम किया और बाद में वे हमेशा प्रसन्नता से मुस्कराते रहे। जब यह आलोचना देश के एक सर्वाधिक आदरणीय भिक्षु बेबू सयाडो के पास पहुँची, उन्होंने उत्तर दिया, 'वे मुस्कराते हैं, इसलिए कि वे मुस्करा सकते हैं।' यह मुस्कराहट आसक्ति अथवा मोह की न होकर धम्म की थी। जिसने अपने चित्त को शुद्ध कर लिया है वह अपना तेवर चढ़ाकर नहीं घूमता फिरेगा। जब दुःख का निवारण हो जाता है, तब मुस्कराना स्वाभाविक है। जब कोई मुक्ति का मार्ग सीख लेता है तब यह स्वाभाविक है कि वह सुख का अनुभव करता है।

यह हार्दिक मुस्कराहट शांति, समता और सद्भावना की अभिव्यक्ति करती है, जो मुस्कराहट प्रत्येक स्थिति में विद्यमान रहती है, वही वास्तविक प्रसन्नता है। यही धम्म का लक्ष्य है।

प्रश्नोत्तर

प्रश्न – 'मुझे इसमें संदेह है कि कष्टदायी विचारों को शारीरिक पीड़ा के समकक्ष माना जाय?'

स. ना. गोयन्का– ‘बस इस तथ्य को स्वीकार करो कि मन में कष्टदायी विचार अथवा चित्तवृत्ति है। यह कुछ ऐसा है कि जिसे मन की गहराई में दबा दिया गया था और अब चेतन स्तर पर प्रकट हुआ है। इसके विस्तार में मत जाओ। बस, चित्तवृत्ति को चित्तवृत्ति के रूप में स्वीकार करो। इसके साथ तुम किस प्रकार की संवेदना का अनुभव करते हो? शरीर के स्तर पर संवेदना के बिना कोई चित्तवृत्ति नहीं हो सकती है। उस संवेदना को देखना शुरू करो।’

‘तब फिर क्या हम उस विशेष चित्तवृत्ति से जुड़ी संवेदना को देखें?’

‘कोई भी संवेदना जो प्रकट होती है, उसे देखो। तुम यह पता नहीं लगा सकते कि कौन सी संवेदना उस समय किस चित्तवृत्ति से जुड़ी है इसलिए ऐसा मत करो । जब कभी मन में जो भी चित्तवृत्ति है, जिस शारीरिक संवेदना का अनुभव करते हो, उसका संबंध उस चित्तवृत्ति से है। बस, उन संवेदनाओं को देखो और यह समझो कि ‘ये संवेदनाएं अनित्य हैं, यह चित्तवृत्ति भी अनित्य है, देखें यह कब तक रहती है। तुम देखोगे कि तुमने चित्तवृत्ति की जड़ काट दी है और यह समाप्त हो जाती है।’

‘क्या आप यह कहना चाहेंगे कि चित्तवृत्ति और संवेदना एक ही चीज है?’

‘वे एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। चित्तवृत्ति मानसिक है, संवेदना शारीरिक है। लेकिन दोनों एक दूसरे से जुड़ी हुई हैं। वस्तुतः प्रत्येक चित्तवृत्ति के साथ, मन में जो कुछ उत्पन्न होता है, शरीर में संवेदना उत्पन्न होती ही है। यह निसर्ग का नियम है।’

‘परंतु चित्तवृत्ति अपने आप में मन का विषय है?’

‘अवश्य, यह मन का ही विषय है।’

‘यानी मन संपूर्ण शरीर भी है?’

‘यह पूरे शरीर से घनिष्ठ रूप से जुड़ा हुआ है।’

‘क्या चेतना वस्तुतः शरीर के अणु-अणु में है?’

‘हां, इसीलिए किसी विशेष चित्तवृत्ति से जुड़ी हुई संवेदना शरीर में कहीं भी प्रकट हो सकती है। यदि आप पूरे शरीर में संवेदनाओं को देख रहे हैं, तो आप निश्चित रूप से उस चित्तवृत्ति से जुड़ी संवेदना को देख रहे हैं। और फिर आप उस चित्तवृत्ति से बाहर निकल आते हैं।’

‘यदि हम साधना के लिए बैठे हुए हैं परंतु किसी संवेदना के अनुभव में सक्षम नहीं हैं, तो क्या फिर भी साधना से कोई लाभ है?’

‘यदि आप बैठें हैं और सांस को देख पाते हैं तो यह आपके मन को शांत और एकाग्र बनाएगा। परंतु आप जब तक संवेदना का अनुभव नहीं

करते हैं तब तक गहन स्तर पर मन की शुद्धि की प्रक्रिया का काम नहीं कर सकते। मन की गहराई में संवेदना के साथ प्रतिक्रिया शुरू हो जाती है जो लगातार चलती रहती है।'

'हमारे दैनिक जीवन में यदि हमारे पास कुछ क्षण हैं तो क्या उस समय शांत रहकर संवेदनाओं को देखने से कुछ सहायता मिल सकती है?'

'आंख खुली रखकर, जब आपके पास कोई दूसरा काम नहीं होता है, आपको अपने अंदर की संवेदनाओं के प्रति जागरूक रहना चाहिए।'

'कोई आचार्य यह कैसे समझता है कि शिष्य को निर्वाण का अनुभव हो गया है?'

'जब वस्तुतः कोई निर्वाण का अनुभव कर रहा है तो उसे जांचने के लिए कई तरीके हैं। इसके लिए आचार्य को समुचित रूप से प्रशिक्षित होना चाहिए।'

'साधक अपने आप कैसे जान सकता है?'

'जीवन में आने वाले परिवर्तन के द्वारा। जिन लोगों ने सचमुच निर्वाण का अनुभव कर लिया है वे संत प्रकृति और निर्मल चित्त वाले हो जाते हैं। अब वे मूलभूत पंचशीलों को किसी बड़े पैमाने पर नहीं तोड़ते, और अपनी किसी गलती को छिपाते नहीं अपितु उसे खुले रूप में स्वीकार करते हैं और इसे फिर न दुहराने की भरसक कोशिश करते हैं। धार्मिक अनुष्ठान और कर्मकांड में उनकी निष्ठा समाप्त हो जाती है क्योंकि वे समझते हैं कि ये वास्तविक अनुभव से शून्य केवल बाहरी दिखावा है। जिस पथ पर चलकर उन्होंने मुक्ति पायी है, उसमें उनका अडिग विश्वास होता है और वे किसी दूसरे पथ की खोज में नहीं लगे रहते हैं। और अंततः उनमें अंतर्निहित अहंकार का भ्रम चकनाचूर हो जाएगा। यदि लोग निर्वाण के अनुभव का दावा करते हैं परंतु उनका मन पहले जैसा मलीन है, उनके कर्म पहले जैसे अकुशल हैं, तो कहीं कुछ गड़बड़ है। उनकी जीवन पद्धति से यह प्रदर्शित होना ही चाहिए कि उन्होंने वस्तुतः इसका अनुभव कर लिया है।

एक आचार्य के लिए यह उचित नहीं है कि वह साधकों को यह बताये कि उन्होंने निर्वाण की प्राप्ति कर ली है, उन्हें प्रमाण पत्र दे। इससे आचार्य और साधकों में अहंकार बढ़ाने की होड़ लग जाती है। साधक मात्र एक प्रमाणपत्र प्राप्त करने का प्रयास करता है और आचार्य जितने अधिक प्रमाणपत्र वितरित करता है, उतनी अधिक उसकी ख्याति होती है। निर्वाण का अनुभव गौण हो जाता है और प्रमाणपत्र को प्राथमिक महत्त्व मिल जाता है । इस प्रकार यह सब कुछ पागलपन का खेल बन जाता है।

शुद्ध धर्म केवल लोगों की सहायता करना है और सबसे बड़ी सहायता यह देखना है कि साधक को वस्तुतः निर्वाण का अनुभव हो और वह एक मुक्त पुरुष बन जाय। आचार्य और इस विद्या का एकमात्र प्रयोजन है लोगों की सही रूप में सहायता करना, न कि उनके अहंकार को बढ़ावा देना। यह कोई खेल नहीं है।'

'आप मनोविश्लेषण और विपश्यना की तुलना कैसे करेंगे?'

'मनोविश्लेषण में आप उन पिछली घटनाओं को, जिनका मन को संस्कारित करने में शक्तिशाली प्रभाव होता है, उन्हें चेतना के स्तर पर याद करने का प्रयत्न करते हैं। दूसरी ओर विपश्यना साधक को मन के उस गहनतम स्तर तक ले जाती है जहां वस्तुतः संस्कार आरंभ होते हैं। जिस प्रसंग को आप मनोविश्लेषण में याद करने का प्रयास करते हैं, वह शारीरिक स्तर पर एक संवेदना को भी अभिव्यक्त करता है। पूरे शरीर में समता के साथ संवेदनाओं को देखकर साधक संस्कारों की अनगिनत परतों को उदय-व्यय होने का अवसर देता है। वह संस्कारों से उनकी जड़ों पर निपटता है और उनसे अपने को जल्द और आसानी से मुक्त कर लेता है।'

'वास्तविक करुणा क्या है?'

'यह लोगों की सेवा करने की, दुःखों से बाहर निकलने में उनकी सहायता करने की इच्छा है। परंतु यह आसक्ति रहित होनी चाहिए। यदि आप दूसरों के दुःखों पर रोना-धोना शुरू कर देते हैं तो आप अपने को केवल दुःखी बनाते हैं। यह धम्म का तरीका नहीं है। यदि आप में वास्तविक करुणा है तो आप पूरे प्यार और अपनी पूरी क्षमता के साथ दूसरों की सहायता करने का प्रयास करते हैं। यदि आप विफल होते हैं, आप मुस्कराते हैं और दूसरे ढंग से सहायता का प्रयास करते हैं। आप फल की चिंता किए बिना सेवा करते हैं। यह वास्तविक करुणा है जो एक संतुलित मन से उत्पन्न होती है।'

'क्या आप कहेंगे कि विपश्यना बोधि प्राप्ति का एकमात्र मार्ग है?'

'स्वयं की परीक्षा तथा संस्कारों के निरोध से बोधि की प्राप्ति होती है। ऐसा करना विपश्यना है, आप इसे कोई भी नाम दे सकते हैं। कुछ लोगों ने विपश्यना का कभी नाम तक नहीं सुना है, फिर भी यह प्रक्रिया उनमें स्वतः क्रियाशील हो जाती है। भारत में अनेक संतपुरुषों के, उनके अपने शब्दों को जांचने से लगता है कि यहां अनेक मामलों में ऐसा हुआ लगता है। परंतु चूंकि उन्होंने इस प्रक्रिया को चरणबद्ध ढंग से नहीं सीखा वे इसे

स्पष्टतः दूसरों को समझा नहीं सके। यहां आपको विभिन्न चरणों में इस साधना को सीखने का अवसर मिला है जो आपको बोधि प्राप्ति करायेगा।'

'आप विपश्यना को जीवन जीने की सार्वभौमिक कला बताते हैं। लेकिन क्या इससे दूसरे धर्मवालों को, जो इसका अभ्यास करते हैं, उलझन नहीं होगी?'

'विपश्यना प्रच्छन्न धर्म नहीं है जिसकी दूसरे धर्मों से कोई प्रतिस्पर्धा हो। साधकों को किसी दार्शनिक सिद्धांत के अंध अनुमोदन के लिए नहीं कहा जाता। इसकी बजाय उनसे कहा जाता है कि वे वही स्वीकार करें जिसे वे सही समझते हैं। इसमें सबसे अधिक महत्त्व सिद्धांत का नहीं, साधना का है। जिसका अभिप्राय है नैतिक आचरण (शील), समाधि और चित्त शुद्ध करने वाली प्रज्ञा। किसी धर्म को इससे क्या आपत्ति हो सकती है? इससे किसी को क्या उलझन हो सकती है? आप अभ्यास को महत्त्व दें और देखेंगे कि सभी संदेहों का समाधान स्वतः हो गया है।'

तेल की बोतल

एक मां ने अपने बेटे को एक खाली बोतल और दस रुपये के एक नोट के साथ पास की पंसारी की दुकान से तेल खरीदने के लिए भेजा। लड़का गया और बोतल को भरवा लिया। लेकिन जब वह वापस लौट रहा था, गिर गया और बोतल हाथ से छूटकर नीचे गिर पड़ी। बोतल का आधा तेल बह गया। आधी खाली बोतल के साथ वह अपनी मां के पास रोता हुआ पहुँचा, 'ओह मां! मैंने आधा तेल बहा दिया, मैंने आधा तेल बहा दिया।' वह बहुत दुःखी था।

मां ने अपने दूसरे बेटे को दूसरी बोतल और दस रुपये के दूसरे नोट के साथ भेजा। उसने भी बोतल भरवायी। वापस आते हुए वह भी गिर पड़ा और बोतल को नीचे गिरा दिया फिर आधा तेल बह गया। बोतल उठाकर वह अपनी मां के पास आया। वह बहुत खुश था 'ओह मां! देखो मैंने आधा तेल बचा लिया है। बोतल नीचे गिर पड़ी थी और टूट भी जाती। तेल बहने लगा था, सारा तेल बह जाता। लेकिन मैंने जल्द उठकर आधा तेल बचा लिया।' दोनों लड़के अपनी मां के पास एक ही हालत में आए, एक जैसी बोतल के साथ, जो आधी खाली और आधी भरी थी। एक आधी खाली बोतल पर रो रहा था, दूसरा आधी भरी बोतल पर खुश था।

तब मां ने तीसरे बेटे को दूसरी बोतल और दस रुपये के नोट के साथ भेजा। लौटते हुए वह भी गिर गया और बोतल नीचे गिर पड़ी। आधा तेल बह गया। उसने बोतल को उठाया और दूसरे बेटे की तरह वह भी खुशी के साथ अपनी मां के पास गया, 'मां, मैंने आधा तेल बचा लिया है।' लेकिन यह एक विपश्यी लड़का था, न केवल आशा अपितु यथार्थता से भी भरा हुआ। उसने समझा, 'ठीक है, आधा तेल बच गया, लेकिन आधा नष्ट भी हो गया। इसलिए उसने अपनी मां से कहा, 'अब मैं बाजार जाऊँगा, दिन भर कड़ी मेहनत करूंगा और शाम तक मैं इस बोतल को भरवा कर लाऊंगा।' यही विपश्यना है। निराशा नहीं आशा, पर यथार्थता और कर्मठता।

अध्याय १०

जीवन जीने की कला

हमारे अपने बारे में सारी पूर्वधारणाओं में सबसे आधारभूत यह है कि 'मैं' की सत्ता है। इस मान्यता के आधार पर हममें से प्रत्येक इस 'मैं' को सर्वोच्च महत्त्व देता है और इसे अपनी दुनिया का केंद्र बनाता है। हम ऐसा करते हैं, यद्यपि हम बहुत आसानी से देख सकते हैं कि हमारी दुनिया अनगिनत लोकों में से केवल एक है और संसार के अनगिनत प्राणियों में से हम केवल एक हैं। इस 'मैं' को हम चाहे जितनी हवा दें परंतु काल और अनंत आकाश के सामने इसका आकलन करने पर यह नगण्य ही है। 'मैं' के बारे में हमारी अवधारणा स्पष्टतः त्रुटिपूर्ण है। फिर भी हम इसे सुखी रखने तथा आत्म परितोष के लिए अपना जीवन समर्पित कर देते हैं। इससे भिन्न ढंग से रहने का विचार अस्वाभाविक तथा भयावह तक लगता है।

लेकिन जिस किसी ने 'मैं' रूपी चेतना और इसकी यातना का अनुभव किया है, वह जानता है कि यह कितना बड़ा दुःख है। हम जब तक अपनी इच्छाओं, भयों और अपनी विशिष्टताओं में तल्लीन हैं, तब तक दुनिया और जीवन से कटे हुए 'मैं' के तंग कैदखाने में बंद हैं। इस 'मैं' के मोह से ऊपर उठना सचमुच ही बंधन से छुटकारा है जो हमें संसार में कदम रखने, जीवन तथा दूसरों के प्रति निष्पक्ष होने और वास्तविक परितोष पाने के योग्य बनाता है। हमें 'मैं' को नकारने अथवा 'मैं' का दमन करने की नहीं, अपितु इसकी भ्रांतिपूर्ण अवधारणा से मुक्त होने की आवश्यकता है। इससे छुटकारे का रास्ता अनुभव के स्तर पर यह समझना है कि जिसे हम 'मैं' कहते हैं वह नश्वर, क्षणभंगुर और निरंतर परिवर्तनशील है।

विपश्यना ध्यान इस अंतर्दृष्टि (पूरी जानकारी) की प्राप्ति का एक मार्ग है। जब तक व्यक्ति स्वयं शरीर और मन की क्षणभंगुर प्रकृति का अनुभव नहीं करता है, वह अहंभाव में अवश्य ही फँसा रहता है । परिणाम स्वरूप दुःखी बना रहता है। लेकिन जब एक बार नित्यता का भ्रम चकनाचूर हो जाता है, तब 'मैं' का भ्रम स्वतः समाप्त हो जाता है और दुःख का अंत हो जाता है। विपश्यी साधक के लिए अनित्यता, 'मैं', और संसार की क्षणभंगुर प्रकृति का बोध, वह कुंजी है जो मुक्ति का द्वार खोल देती है।

अनित्यता के बोध का महत्त्व एक ऐसा विषय है जो एक सर्वसामान्य लड़ी की तरह बुद्ध की पूरी शिक्षा में पिरोया हुआ है। उन्होंने कहा--

यो च वस्ससतं जीवे, अपस्सं उदयब्बयं।
एकाहं जीवितं सेय्यो, पस्सतो उदयब्बयं॥[1]

पंचस्कंधों के उदय-व्यय को न देखने वाले के सौ वर्ष के जीवन से उदय-व्यय को देखने वाले का एक दिन का जीवन श्रेयस्कर होता है।

उन्होंने अनित्यता के प्रति जागरूकता की तुलना किसान के हल के फाल से की है जो खेत को जोतते हुए सारी जड़ों को काट देता है, ढाल वाली छत को थाम कर रखने वाले सर्वोच्च शिखर स्तंभ (गृहकूट) से की है, अपने अधीन राजाओं पर प्रभुत्व रखने वाले शक्तिशाली शासक से की है, अपने प्रकाश से सितारों की आभा को निस्तेज करने वाले चंद्रमा से की है, आकाश के संपूर्ण अंधकार को छिन्न करने वाले उदय होते सूर्य से की है।[2] जीवन की अंतिम वेला में, अंतिम शब्द जो उन्होंने कहे, वे थे– 'वयधम्मा सङ्खारा, अप्पमादेन सम्पादेथ।' सारे संस्कार अनित्य हैं, प्रमादरहित होकर इस सत्य का साक्षात्कार करो।

अनित्यता के सत्य को केवल बुद्धि के स्तर पर स्वीकार नहीं किया जाना चाहिए। इसे केवल भावुकतावश अथवा भक्तिभाव के आधार पर भी नहीं स्वीकार किया जाना चाहिए। हममें से प्रत्येक को अपने अंदर अनित्यता की सच्चाई का अनुभव करना चाहिए। अनित्यता के प्रत्यक्ष ज्ञान, साथ ही दुःख और अनात्म के भ्रामक स्वभाव के बोध से वास्तविक अंतर्दृष्टि की प्राप्ति होती है, जो मुक्ति की ओर ले जाती है। यह सम्यकदृष्टि है।

साधक शील, समाधि, प्रज्ञा के चरम उत्कर्ष के रूप में इस मुक्तिदायिनी बोधि का अनुभव करता है। जब तक वह इन तीनों का अभ्यास नहीं करता है, जब तक साधना मार्ग के प्रत्येक चरण पर नहीं चलता, उसे प्रज्ञा की पकड़ और दुःखों से मुक्ति नहीं मिल सकती। परंतु अभ्यास आरंभ करने से पहले भी, साधक को कुछ प्रज्ञा तो होनी ही चाहिए, संभवतः दुःख सत्य की जानकारी बुद्धि के स्तर पर तो होनी ही चाहिए। इस जानकारी के बिना, भले ही वह कितना ही सतही हो, मन में दुःखों से मुक्ति प्राप्त करने का विचार कभी उत्पन्न ही नहीं होगा। इसीलिए बुद्ध ने कहा. 'सम्यकदृष्टि पहले आती है।'[4]

अतः आर्य अष्टांगिक मार्ग के प्रारंभिक सोपान वस्तुतः सम्यकदृष्टि और सम्यकसंकल्प हैं। हमें समस्याओं को पहले समझना और फिर उनसे निपटने का फैसला करना है। तभी धम्म के वास्तविक अभ्यास पर कदम उठाना संभव है।

साधना मार्ग पर चलने के लिए हम पहले नैतिकता के अभ्यास से काम शुरू करते हैं, अपने आचरण को नियंत्रित करने के लिए पंचशील का पालन करते हैं। समाधि के अभ्यास के लिए मन के संकल्प-विकल्पों से निपटते हुए आनापान स्मृति के द्वारा इसका विकास करते हैं। सारे शरीर में संवेदनाओं को देखने से हम अनुभूति के स्तर पर प्रज्ञा का विकास करते हैं जो चित्त को संस्कारों से मुक्त करती है।

और अब जब अपने अनुभव से सम्यक दृष्टि उत्पन्न होती है तब वह साधना मार्ग का प्रथम सोपान बन जाती है। विपश्यना अभ्यास के द्वारा अपनी सतत परिवर्तनशील प्रकृति की समझ से साधक अपने मन को राग, द्वेष और मोह से मुक्त कर लेता है। ऐसे विशुद्ध चित्त से दूसरों की हानि के बारे में सोचना भी असंभव है। इसकी बजाय व्यक्ति के विचार सबके प्रति मैत्री तथा करुणा से भर जाते हैं। वह अपनी वाणी, कर्म और आजीविका से निर्दोष, प्रश्रब्ध और शांत जीवन जीता है। नैतिकता के अभ्यास से उत्पन्न प्रश्रब्धि के कारण समाधि का विकास आसान हो जाता है। समाधि जितनी अधिक दृढ़ होगी उतनी अधिक प्रतिवेधक प्रज्ञा होगी। इस प्रकार यह रास्ता मुक्ति की ओर ले जाने वाला, उत्तरोत्तर आगे बढ़ाने वाला रास्ता है। तीनों प्रकार की शिक्षाएं तिपाई के पैर की तरह एक दूसरे की सहायता करती हैं। तिपाई के तीनों पैर मजबूत और समान लंबाई के नहीं हों तो तिपाई टिक नहीं सकती। इसी प्रकार साधक के लिए शील, समाधि और प्रज्ञा का साथ-साथ अभ्यास आवश्यक है जिससे कि साधना मार्ग के सभी पक्षों का समुचित विकास हो सके। बुद्ध ने कहा है–

> सम्यक दृष्टि से सम्यक **संकल्प** की उत्पत्ति होती है।
> सम्यक संकल्प से सम्यक **वाणी** की उत्पत्ति होती है।
> सम्यक वाणी से सम्यक **कर्मांत** की उत्पत्ति होती है।
> सम्यक कर्मांत से सम्यक **आजीविका** की उत्पत्ति होती है।
> सम्यक आजीविका से सम्यक **व्यायाम** की उत्पत्ति होती है।
> सम्यक व्यायाम से सम्यक **स्मृति** की उत्पत्ति होती है।
> सम्यक स्मृति से सम्यक **समाधि** की उत्पत्ति होती है।
> सम्यक समाधि से सम्यक **प्रज्ञा** की उत्पत्ति होती है।
> सम्यक प्रज्ञा से दुःखमुक्त **निर्वाण** की उत्पत्ति होती है।[५]

विपश्यना साधना का यहीं और अभी गंभीर व्यावहारिक मूल्य भी है। दैनिक जीवन में ऐसी असंख्य स्थितियां आती हैं जो मन की समता के लिए खतरे

उत्पन्न करती हैं। अप्रत्याशित कठिनाइयां प्रकट होती हैं। लोग हमारा अप्रत्याशित विरोध करते हैं। अंततः केवल विपश्यना सीख लेने से हम यह दावा नहीं कर सकते कि आगे जीवन में कोई समस्या नहीं होगी। जैसे जहाज का चलाना मात्र सीख लेने से हमारी यात्रा निर्विघ्न नहीं होगी। आंधी आयगी ही, समस्याएं आयेंगी ही। उनसे पलायन करना व्यर्थ और आत्म पराजय है। इसकी बजाय सही रास्ता यह है कि तूफान से बच निकलने के लिए जो कुछ बन सकता है, उसका अभ्यास करें।

ऐसा करने के लिए समस्या के सही स्वभाव को हमें पहले समझना होगा। जब कोई कठिनाई आती है तब हमारा अज्ञान इस कठिनाई का स्रोत किसी बाहरी घटना या दूसरे व्यक्ति को समझकर उसे दोष देता है और बाह्य स्थिति को बदलने के लिए हमारी सारी ऊर्जा को उस ओर मोड़ता है। लेकिन विपश्यना के अभ्यास से यह बात अच्छी तरह समझ में आ जायगी कि अपने दुःख या सुख के लिए हम स्वयं जिम्मेवार हैं, दूसरा कोई नहीं है । समस्या की जड़ है अंध प्रतिक्रिया करने की आदत। अतः मन में उठने वाले उस तूफान पर ध्यान देना होगा जो संस्कारजन्य प्रतिक्रिया से उठता है। मात्र यह संकल्प करना कि हम प्रतिक्रिया नहीं करेंगे– इससे काम नहीं बनेगा। जब तक संस्कार अचेतन मन में हैं, देर या सवेर इनकी प्रतिक्रिया होगी और यह मन को अभिभूत करेगी। हमारे सारे संकल्प धरे-के-धरे रह जायेंगे। इसलिए समस्या का सच्चा समाधान देखना सीखकर अपने को बदलना है।

इतना समझना बहुत आसान है परंतु इसे अमल में लाना बहुत कठिन है। प्रश्न वहीं-का-वहीं रहता है । कोई स्वयं का निरीक्षण कैसे करे? मन में एक नकारात्मक प्रतिक्रिया– क्रोध, भय अथवा घृणा शुरू हो गई है– यह याद आने से पहले कि इसे देखना है, हम इनसे अभिभूत हो जाते हैं और बदले में नकारात्मक ढंग से बोलते अथवा काम करते हैं। बाद में जब नुकसान हो जाता है तब हम अपनी गलती महसूस करते हैं और पश्चात्ताप करते हैं। परंतु दूसरी बार फिर वही गलती कर बैठते हैं।

अथवा मान लीजिए यह जानते हुए कि क्रोध की प्रतिक्रिया शुरू हो गयी है, व्यक्ति वस्तुतः इसको देखने का प्रयास करता है। जैसे ही वह प्रयास शुरू करता है उसे उस व्यक्ति या स्थिति का जिस पर उसे क्रोध है, मन में ख्याल आ जाता है। इस पर विचार करने से क्रोध और अधिक घनीभूत हो जाता है। इस प्रकार कारण अथवा स्थिति से अलग करके चित्तवृत्ति को देखना अधिकांश लोगों की सामर्थ्य के बाहर है।

लेकिन मन और शरीर (नाम और रूप) के परमार्थ सत्य की खोज करके बुद्ध ने पाया कि जब कभी मन में कोई प्रतिक्रिया उत्पन्न होती है, तब शारीरिक स्तर पर दो प्रकार के परिवर्तन होते हैं– उनमें एक बहुत स्पष्ट है, सांस थोड़ी तेज हो जाती है। दूसरा परिवर्तन कुछ अधिक सूक्ष्म है– शरीर में जीवरासायनिक प्रतिक्रिया अथवा संवेदना प्रकट होती है। उचित शिक्षण से एक सामान्य समझवाला व्यक्ति सांस और संवेदना को देखने की क्षमता का विकास आसानी से कर सकता है। सांस और संवेदना में परिवर्तन को हम एक चेतावनी के रूप में ले सकते हैं जिससे कि नकारात्मक प्रतिक्रिया के एक खतरनाक शक्ति का रूप धारण करने से पहले हम सावधान हो जायं। और फिर यदि हम सांस और संवेदना को देखना जारी रखते हैं तो नकारात्मकता से आसानी से उबर जाते हैं।

निस्संदेह प्रतिक्रिया की आदत की जड़ गहरी है जिसे तुरंत दूर नहीं किया जा सकता। फिर भी दैनिक जीवन में जैसे-जैसे हम विपश्यना ध्यान के अभ्यास में पूर्णता प्राप्त करते हैं, हम कम-से-कम कुछ ऐसे अवसर देखते हैं जब अनजाने प्रतिक्रिया करने की बजाय, संवेदना के माध्यम से हम अपने को देख सकते हैं। धीरे-धीरे देखने के ये क्षण बढ़ते हैं और प्रतिक्रिया की गतिशीलता कम हो जाती है। यदि हम नकारात्मक प्रतिक्रिया करते भी हैं तो उसकी अवधि और प्रबलता में कमी आ जाती है । अंततः बहुत उत्तेजक या भड़काऊ स्थिति में भी हम सांस और संवेदना को देखने में सक्षम होने लगते हैं जिससे कि संतुलित और शांत बने रहते हैं।

मन के गहन स्तर पर इस शांति तथा समता के द्वारा पहली बार कोई व्यक्ति सही काम के योग्य बनता है। सही काम सदा सकारात्मक और रचनात्मक होता है। उदाहरण के लिए दूसरों की नकारात्मकता का जबाब नकारात्मकता में देने की बजाय हम इस प्रकार के जवाब का चुनाव कर सकते हैं जो सर्वाधिक लाभकारी हो। क्रोध में जलते हुए किसी व्यक्ति का सामना होने पर अज्ञानी पुरुष स्वयं क्रोधी हो जाता है जिसका नतीजा होता है झगड़ा, जिससे दोनों को दुःख पहुँचता है। परंतु यदि हम शांत, संतुलित बने रहते हैं, तो क्रोध से उबरने में हम उस व्यक्ति की भी सहायता कर सकते हैं और समस्या से रचनात्मक ढंग से निपट सकते हैं।

अपनी संवेदनाओं को देखकर हम यह सीखते हैं कि जब कभी हम नकारात्मकता से अभिभूत होते हैं, हम दुःखी होते हैं। इसलिए जब कभी हम दूसरों को नकारात्मक प्रतिक्रिया करते हुए देखते हैं, हम जानते हैं कि वे दुःखी हैं। इस समझदारी के साथ हम उनके प्रति करुणा का भाव जगाते हैं और कष्ट से

मुक्त होने में उनकी सहायता कर सकते हैं, न कि उन्हें और अधिक दु:खी बनाते हैं। हम शांत और सुखी बने रहते हैं और दूसरों को भी शांत, सुखी बनने में सहायता करते हैं।

जागरूकता और समता विकसित करने से हम साग-सब्जी की तरह जड़, अचेतन और अकर्मण्य नहीं बन जाते, जिससे कि दुनिया जो चाहे हमारे साथ कर सकती है। और न हम आंतरिक शांति की खोज में इतना तल्लीन हो जाते हैं कि दूसरों के कष्टों के प्रति उदासीन बन जाते हैं। धम्म हमें अपने कल्याण के साथ-साथ दूसरों के कल्याण का भी उत्तरदायित्व लेना सिखाता है। दूसरों की सहायता के लिए जो कुछ भी आवश्यक है, हम उसे संतुलित चित्त से करते हैं। एक बच्चे को बलुआ दलदल में धँसते हुए देखकर एक मूर्ख व्यक्ति घबरा जाता है, बच्चे के पीछे छलांग लगाता है और खुद भी धँस जाता है जबकि एक चतुर व्यक्ति शांत और संतुलित रहकर एक मजबूत टहनी खोजता है जो उस बच्चे तक पहुँच सके और जिससे वह उसे सुरक्षित निकाल सके। दूसरों की भांति राग, द्वेष के बलुआ दलदल में छलांग लगाने से किसी की सहायता नहीं होती है। हमें दूसरों को मानसिक संतुलन के ठोस धरातल पर लाना है।

जीवन में कई बार कठोर कार्यवाही जरूरी हो जाती है। उदाहरण के लिए हम मृदु, विनम्र भाषा में किसी को कह सकते हैं कि वह गलती कर रहा है लेकिन वह व्यक्ति कठोर शब्द और कठोर कार्यवाही के अतिरिक्त और कुछ न समझ सकने के कारण मेरे कहे की उपेक्षा करता है। ऐसी स्थिति में जो भी कठोर कार्यवाही आवश्यक है, हम अवश्य करेंगे। फिर भी ऐसा करते हुए हमें अपने आप में यह देखना चाहिए कि क्या हमारा मन संतुलित है, समता में है और दुर्व्यवहार करने वाले व्यक्ति के प्रति भी प्रेम और करुणा है या नहीं। यदि ऐसा है तभी कार्यवाही सहायक हो सकती है। यदि ऐसा नहीं है तो यह किसी की सहायता नहीं करेगी। यदि हम प्रेम और करुणा से काम करते हैं तो हम गलत नहीं कर सकते।

जब हम किसी ताकतवर आदमी को किसी कमजोर आदमी पर हमला करते हुए देखते हैं तो इस गलत काम को रोकने का उत्तरदायित्त्व हमारे ऊपर है। कोई भी सामान्य व्यक्ति संभवत: पीड़ित के प्रति दया और हमलावर के प्रति क्रोध के कारण ऐसा करेगा। विपश्यी साधक दोनों के प्रति समान करुणाभाव रखेगा, यह जानते हुए कि पीड़ित व्यक्ति की हानि पहुँचने से उसकी रक्षा होनी चाहिए और आक्रमणकारी की भी उसके गलत काम से उसकी हानि होने से रक्षा की जानी चाहिए।

इसलिए किसी कड़ी कार्यवाही के पहले अपने मन को जांचना अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। बाद में उस कार्यवाही का सिंहावलोकन कर उसको उचित ठहराना पर्याप्त नहीं है। यदि हम स्वयं अपने अंदर शांति, समता का अनुभव नहीं करते हैं तो हम किसी और में शांति, समता का विकास नहीं कर सकते हैं। विपश्यी साधक के रूप में हम प्रतिबद्ध अनासक्ति का अभ्यास करना सीखते हैं। साथ ही यह भी सीखते हैं कि हममें संवेदनशीलता तथा निष्पक्षता दोनों हों। जागरूकता और समता के विकास का काम करके हम सबके कल्याण का काम करते हैं। यदि हम संसार में तनाव की मात्रा को बढ़ने से रोकने के अतिरिक्त और कुछ नहीं भी करते हैं, तो भी हम कुशल कर्म करते हैं। लेकिन वस्तुतः समता है या नहीं; यह कहने से नहीं होगा, यह प्रकट होगा उन दूरगामी प्रतिध्वनियों से जो बहुतों को सकारात्मक रूप से प्रभावित करेंगी ।

आखिर में हमारी अपनी और दूसरों की मानसिक नकारात्मकता संसार के दुःखों का मूल कारण है। जब चित्त शुद्ध हो जाता है, जीवन का अनंत क्षेत्र हमारे सामने खुल जाता है तब हम वास्तविक सुख का आनंद उठा सकते हैं और उसे दूसरों के साथ भी बांट सकते हैं।

प्रश्नोत्तर

प्रश्न – 'क्या हम दूसरों को भी विपश्यना ध्यान के बारे में बता सकते हैं?'

स. ना. गोयन्का – 'निश्चित रूप से, धम्म में कोई गोपनीयता नहीं है। आप किसी को भी इसके बारे में बता सकते हैं कि आपने यहां क्या किया है। लेकिन इसके अभ्यास के लिए लोगों का मार्गदर्शन करना बिल्कुल अलग चीज है जिसे अभी इस अवस्था में नहीं किया जाना चाहिए। जब तक आप इस विधि में पूरी तरह पक नहीं जाते हैं और दूसरों का मार्गदर्शन करने के लिए प्रशिक्षित नहीं हो जाते हैं, प्रतीक्षा करें। यदि आप किसी को विपश्यना के बारे में बताते हैं, जिसकी विपश्यना अभ्यास में रुचि है, उस व्यक्ति को किसी शिविर में आने की सलाह दीजिए। कम-से-कम पहली बार विपश्यना का अनुभव किसी योग्यताप्राप्त आचार्य के मार्गदर्शन में आयोजित दस दिवसीय शिविर में किया जाना चाहिए। इसके पश्चात तो आप स्वयं इसका अभ्यास कर सकते हैं।'

'मैं योगाभ्यास करता हूं। मैं इसे विपश्यना से कैसे जोड़ सकता हूं?'

'यहां शिविर में योगाभ्यास की अनुमति नहीं है क्योंकि दूसरों का ध्यान आकर्षित करके आप उनके लिए विघ्न पैदा करेंगे। लेकिन जब आप घर

वापस जाते हैं आप विपश्यना और योग दोनों कर सकते हैं। अर्थात योग के शारीरिक व्यायाम और सांस का नियंत्रण दोनों कर सकते हैं। योग शारीरिक स्वास्थ्य के लिए बहुत लाभकारी है। आप इसे विपश्यना के साथ कर सकते हैं। उदाहरण के लिए आप योग की मुद्रा में हैं और सारे शरीर में संवेदना को देख भी रहे हैं। इससे केवल योगाभ्यास से प्राप्त लाभ की अपेक्षा और बड़ा लाभ होगा। लेकिन योग-ध्यान की विधि में मंत्र और सजीव कल्पना का प्रयोग किया जाता है जो विपश्यना के बिल्कुल विरुद्ध है। उसका मिश्रण इस विधि में कदापि न करें।'

'भिन्न-भिन्न यौगिक क्रियाओं के बारे में आपके क्या विचार हैं ?'

'शारीरिक कसरत के रूप में वे सहायक हैं लेकिन इनको आनापान के साथ मिश्रित न करें । आनापान में आप स्वाभाविक सांस को ही देखें, इस पर नियंत्रण न करें । शारीरिक कसरत के रूप में सांस पर नियंत्रण रखें और आनापान का अभ्यास ध्यान के लिए करें ।'

'मैं, यह बुलबुला, क्या बोधि से आसक्त नहीं हो रहा हूं?'

'यदि ऐसा है तो आप इस विधि की विरोधी दिशा में दौड़ लगा रहे हैं। जब तक आप में आसक्ति है, आप कभी भी बोधि का अनुभव नहीं कर सकते हैं। सिर्फ यह समझें कि बोधि क्या है? और तब केवल इस क्षण की सच्चाई को देखते रहें और बोधि को अपने-आप आने दें। यदि यह नहीं आती है, घबरायें नही। बस, आप अपना काम करें और फल धम्म पर छोड़ दें। यदि आप इस प्रकार काम करते हैं तो आप बोधि से आसक्त नहीं हैं। यह निश्चित रूप से आएगी।'

'तब मैं अपना काम करने के लिए ध्यान करता रहूं?'

'हां, अपने चित्त को निर्मल रखना आपका उत्तरदायित्त्व है। इसे एक उत्तरदायित्त्व के रूप में लें। लेकिन इसे बिना आसक्ति के करें।'

'क्या यह किसी वस्तु की प्राप्ति नहीं है?'

'नहीं, जो कुछ आता है, अपने आप आयगा। इसे स्वाभाविक रूप से होने दें।'

'बच्चों को धम्म सिखाने के बारे में आपका क्या विचार है?'

'इसके लिए सबसे अच्छा समय जन्म के पूर्व का है। गर्भावस्था में मां को विपश्यना का अभ्यास करना चाहिए जिससे कि बच्चा भी इसे ग्रहण करे और एक धम्म शिशु के रूप में उसका जन्म हो। लेकिन यदि आपके बच्चे पहले से ही हैं तो उनको आप धम्म की बातें बता सकती हैं । उदाहरण के लिए विपश्यना साधना के समापन के अवसर पर आपने मेत्ता भावना की

विधि सीखी, अपनी शांति और सौमनस्यता को दूसरों को बांटना सीखा। यदि आपके बच्चे बहुत छोटे हैं, तब प्रत्येक साधना के अंत में और सोते समय उन्हें अपनी मैत्री दें। इस प्रकार आपके धर्मधारण से उन्हें भी लाभ होगा। और यदि वे बड़े हैं, तो उन्हें ध्यान के बारे में थोड़ा-बहुत इस ढंग से समझाइए कि वे इसे समझ सकें और स्वीकार कर सकें। यदि वे कुछ अधिक समझ सकते हैं तो कुछ मिनट के लिए उन्हें आनापान करना सिखाइए। किसी भी रूप में बच्चों पर दबाव मत डालिये। बस, उन्हें अपने साथ कुछ मिनटों के लिए बैठने और सांस को देखने दीजिए। तत्पश्चात उन्हें जाने और खेलने दीजिए। तब ध्यान उनके लिए खेल की तरह होगा और इसे करने में उन्हें आनंद आयगा। सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि आपको स्वयं एक स्वस्थ धम्म जीवन व्यतीत करना चाहिए और अपने बच्चों के लिए एक अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करना चाहिए। अपने घर में आपको शांत तथा समरसतापूर्ण वातावरण का निर्माण करना ही चाहिए जो उन्हें स्वस्थ और सुखी व्यक्ति के रूप में बढ़ने में सहायक होगा। यह सबसे अच्छी चीज है जो आप अपने बच्चों के लिए कर सकती हैं।'

'इस अद्भुत धम्म के लिए आपका बहुत-बहुत धन्यवाद।'

'धम्म को धन्यवाद! धम्म महान है। मैं केवल एक वाहन हूं। और अपने आपको धन्यवाद दो। आपने कड़ी मेहनत की इसलिए आप इस विधि को ग्रहण कर सके। एक आचार्य बताता रहता है, समझाता रहता है। लेकिन यदि आप काम नहीं करते तो आपको कुछ नहीं मिलता। सुखी हो, खूब मेहनत करो, खूब मेहनत करो।

विपश्यना का डंका बजा

मैं अपने आपको बहुत सौभाग्यशाली समझता हूं कि मेरा जन्म धम्म देश बर्मा में हुआ जहां एक अद्भुत ध्यान-विधि शताब्दियों से अपने मूल रूप में सुरक्षित रखी गई है। लगभग एक सौ वर्ष पहले मेरे दादा भारत से यहां आए और यहां बस गए और इस तरह मैं यहां पैदा हुआ और मैंने अपनी किशोरावस्था से धन कमाना शुरू किया। धन कमाना मेरे जीवन का प्रमुख उद्देश्य था। मैं भाग्यशाली था कि किशोरावस्था में ही मैं धन कमाने में बहुत सफल हुआ। यदि मैंने स्वयं संपन्नता के जीवन को नहीं जाना होता तो इस प्रकार के जीवन के खोखलेपन का व्यक्तिगत अनुभव नहीं हुआ होता और यदि यह अनुभव नहीं हुआ होता तो मेरे मन के एक कोने में यह विचार रह गया होता कि सच्चा सुख पैसे में है। जब लोग संपन्न हो जाते हैं, तब उन्हें समाज में विशेष दर्जा और ऊंचा स्थान दिया जाता है और वे बहुत सारे संगठनों के पदाधिकारी बनते हैं। मुझे भी मेरी बीसी के दिनों से ही सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त करने का पागलपन सवार हो गया। स्वाभाविक रूप से मेरे जीवन में इन तनावों ने मुझमें एक मनोदैहिक बीमारी माइग्रेन के भयंकर सिर दर्द को जन्म दिया। हर पंद्रह दिन बाद मुझे इस बीमारी का दौरा पड़ता जिसका कोई उपचार नहीं था। मैं अपने आपको बहुत भाग्यवान समझता हूं कि मैं इस बीमारी का शिकार हुआ।

बर्मा के अच्छे-से-अच्छे डॉक्टर भी मेरी बीमारी को दूर नहीं कर सके। दौरे के प्रभाव से कुछ राहत देने के लिए उनके पास मॉर्फिया के इंजेक्शन का ही एकमात्र उपचार था। हर पंद्रह दिन बाद मुझे मॉर्फिया इंजेक्शन की जरूरत पड़ती। और फिर बाद में इसके परिणामस्वरूप मुझे मिचली आती, उल्टी होती और यातना भोगनी पड़ती।

इस रोग के कुछ वर्ष बाद डॉक्टर मुझे चेतावनी देने लगे। अभी आप अपनी बीमारी के दौरे से राहत के लिए मॉरफीन ले रहे हो लेकिन अगर इसी तरह लेते रहे तो जल्द ही आपको मॉरफीन लेने की लत लग जायगी और आपको इसे रोज लेना पड़ेगा। इस संभावना से मुझे बहुत धक्का लगा। जीवन भयावह हो जायगा। डॉक्टरों ने मुझे सलाह दी कि आप व्यापार के लिए बहुधा विदेश जाते रहते हो। एक बार अपने स्वास्थ्य के लिए जाओ। हमारे पास आपके रोग का कोई इलाज नहीं है और न हमें इसकी कोई विशेष जानकारी है। दूसरे देशों के डॉक्टरों से

मिलो। संभवतः उनके पास दौरे से राहत के लिए कोई और दर्दनाशक (पेन किलर) होगा जो मॉरफीन पर निर्भरता के खतरे से आपको बचा सकता है। उनकी सलाह मानते हुए मैंने स्विटजरलैंड, जर्मनी, इंग्लैंड, अमरीका तथा जापान की यात्रा की। इन देशों के अच्छे-से-अच्छे डॉक्टरों ने मेरा इलाज किया। मैं बहुत भाग्यशाली हूं कि वे सभी नाकामयाब रहे। जाने के समय से भी बुरी हालत में मैं घर वापस लौटा।

इस असफल यात्रा से वापस लौटने के पश्चात एक दयालु मित्र मेरे पास आए और उन्होंने मुझे सलाह दी कि ''विपश्यना साधना के दस दिवसीय शिविरों में से किसी शिविर में बैठकर क्यों नहीं देखते? इस शिविर का संचालन ऊ बा खिन करते हैं जो एक सरकारी अधिकारी और तुम्हारी तरह एक गृहस्थ संत पुरुष हैं। मुझे लगता है कि तुम्हारी बीमारी का कारण वस्तुतः मानसिक है और विपश्यना एक ऐसी विधि है जो मन को तनावों से मुक्त करती है। इसके अभ्यास से संभवतः तुम्हारी बीमारी दूर हो सकती है।' सभी जगह नाकामयाब होकर मैंने फैसला किया कि विपश्यना के इस आचार्य से मैं कम-से-कम मिल तो लूं। आखिर मुझे इससे कुछ खोना नहीं था।

मैं उनके ध्यान केंद्र गया और इस असाधारण पुरुष से मिलकर बातें कीं। उस स्थान के शांत, पवित्र वातावरण और स्वयं उनकी शांत उपस्थिति से बहुत गहराई तक प्रभावित होकर मैंने उनसे कहा, 'महोदय! मैं आपके किसी शिविर में सम्मिलित होना चाहता हूं। क्या कृपाकर आप मुझे स्वीकार करेंगे?'

'निश्चित रूप से, यह विधि हर एक के लिए है। शिविर में सम्मिलित होने के लिए आपका स्वागत है।'

मैंने अपनी बात जारी रखते हुए आगे कहा,'कई सालों से मैं एक असाध्य रोग, भयंकर माइग्रेन के सिरदर्द से पीड़ित हूं। मुझे आशा है कि इस साधना विधि से मेरा रोग दूर हो सकता है।'

'नहीं, बिल्कुल नहीं,' उन्होंने अचानक कहा, 'मेरे पास मत आना। आप किसी शिविर में सम्मिलित नहीं हो सकते।' मुझे कुछ समझ में नहीं आया कि मैंने उन्हें नाराज कैसे कर दिया? लेकिन फिर बड़े करुण चित्त से उन्होंने समझाया, 'धम्म का प्रयोजन शारीरिक रोग को दूर करना नहीं है। अगर आप यही चाहते हैं तो अच्छा होता आप किसी अस्पताल में गए होते। धम्म का उद्देश्य जीवन के सभी दुःखों को दूर करना है। आपकी बीमारी आपके दुःखों का एक मामूली-सा हिस्सा है जो मानसिक शुद्धता के केवल एक उपफल के रूप में चली जाएगी। यदि इस उपफल को आप अपना प्राथमिक उद्देश्य बनाते हैं, तो आप धम्म का

अवमूल्यन करते हैं। शारीरिक रोग को दूर करने के लिए नहीं, मन को मुक्त करने के लिए आओ।'

उन्होंने मुझे पूर्ण आश्वस्त कर दिया था। मैंने कहा, 'हां, श्रीमान्, अब मैं समझ रहा हूं। मैं केवल मन की विशुद्धि के लिए आऊंगा। मेरी बीमारी चाहे दूर हो या नहीं, यहां जो शांति देखता हूं, उसका अनुभव करना चाहूंगा'। और उनसे वादा करके मैं घर वापस लौट आया।

लेकिन फिर भी मैंने शिविर में सम्मिलित होना स्थगित रखा। एक निष्ठावान कट्टरवादी हिंदू परिवार में जन्म लेकर मैं बचपन से ही इस श्लोक का पाठ करना सीख गया था– **स्वधर्मे निधनं श्रेयः, परधर्मो भयावहः –** अपने धर्म में मर जाना ठीक है, पराए धर्म में जाना ठीक नहीं।' मैंने अपने मन में सोचा, 'देखो, यह दूसरा धर्म है, बौद्ध धर्म। ये लोग नास्तिक हैं। ये ईश्वर में विश्वास नहीं करते और आत्मा की सत्ता को नहीं मानते (मानो ईश्वर अथवा आत्मा में विश्वास करने मात्र से हमारी सारी समस्याओं का समाधान हो जाएगा) । अगर मैं नास्तिक हो गया तो मेरा क्या होगा? मेरे लिए स्वयं अपने धर्म में मर जाना बेहतर है। मैं उनके पास कभी नहीं जाऊंगा।"

इस प्रकार महीनों तक मेरी हिचक बनी रही। परंतु मैं सचमुच भाग्यवान हूं कि अंततः मैंने इस विधि को आजमाकर देखने का फैसला किया। मैं अगले शिविर में सम्मिलित हुआ और दस दिन गुजार दिये। इससे मुझे बहुत लाभ हुआ। अब मैं स्वधर्म, और दूसरों के धर्म का अर्थ समझ सकता था। मानवमात्र का धम्म ही किसी का अपना धम्म है। केवल मानव ही एक प्राणी है जो दुःखों से बाहर निकलने के लिए अपने को देखने (आत्मनिरीक्षण) की योग्यता रखता है, किसी निम्नतर प्राणी में यह क्षमता नहीं है। अपनी अंतर्निहित यथार्थता का निरीक्षण करना केवल मानव प्राणी का धम्म है। यदि हम इस क्षमता का प्रयोग नहीं करते तब निश्चय ही निम्नतर प्राणी का जीवन जीते हैं। हम अपना जीवन बर्बाद करते हैं जो वस्तुतः बहुत खतरनाक है।

मैं अपने आपको सदा बहुत धार्मिक पुरुष समझता आ रहा था। आखिर, मैं सभी आवश्यक धार्मिक कर्त्तव्यों की पूर्ति करता था। नैतिकता के नियमों का अनुसरण करता था और प्रचुर मात्रा में दान देता था। यदि मैं सचमुच धार्मिक पुरुष नहीं था तो अनेक धार्मिक संगठनों का प्रमुख क्यों बनाया गया? अतः मैं अवश्य ही बहुत धार्मिक हूं। लेकिन मैंने चाहे जितना भी दान दिया हो, जितनी भी सेवा की हो, अपनी वाणी और कर्मों से चाहे जितना भी सावधान रहा हूं तथापि जब मैंने इस विधि के द्वारा अपने अंतर्मन के अंधकक्ष का निरीक्षण करना

शुरू किया तब इसे सांपों, बिच्छुओं, कनखजूरों से भरा पाया, जिनके कारण ही मुझे इतना दु:ख झेलना पड़ा था। अब जबकि विकारों का क्रमश: उन्मूलन हो रहा था, मैं वास्तविक शांति का सुख लेने लगा। मैंने अनुभव किया कि इस अद्भुत साधना विधि को, इस धम्म रतन को पाकर मैं कितना सौभाग्यशाली हूं।

मैं बहुत भाग्यशाली था कि बर्मा में चौदह वर्षों तक अपने गुरु के सान्निध्य और मार्गदर्शन में इस विधि का अभ्यास कर सका। इसमें संदेह नहीं कि एक पारिवारिक व्यक्ति के रूप में मैंने अपने सारे सांसारिक उत्तरदायित्वों की पूर्त्ति की। इनके साथ ही रोज सुबह-शाम साधना भी करता रहा और प्रत्येक सप्ताहांत आचार्य जी के ध्यान केंद्र में जाता रहा। प्रत्येक वर्ष दस-दिवसीय अथवा उससे लंबे शिविरों में भी साधना का अभ्यास करता रहा।

सन् १९६९ के मध्य में मुझे भारत की यात्रा करनी पड़ी। कुछ साल पहले मेरे माता-पिता यहां चले आए थे और मेरी माता को स्नावयिक रोग हो गया था जिसे मैं समझता था कि विपश्यना साधना के अभ्यास द्वारा दूर किया जा सकता है। परंतु भारत में इसे सिखाने वाला कोई नहीं था। विपश्यना साधना विधि इस देश में, जहां इसका जन्म हुआ था, बहुत पहले लुप्त हो गई थी। यहां तक कि इसका नाम भी भुला दिया गया था। मैं बर्मी सरकार का आभारी हूं कि उन्होंने मुझे भारत आने की अनुमति दे दी। उन दिनों वे सामान्यत: अपने नागरिकों को विदेश यात्रा की अनुमति नहीं देते थे। मैं भारत सरकार का भी आभारी हूं कि उन्होंने मुझे अपने देश आने की अनुमति दी।

इस घटना से पूज्य गुरुदेव सयाजी ऊ बा खिन बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा भारत का हमारे ऊपर बहुत बड़ा ऋण है। उस ऋण से उऋण होने का यही रास्ता है कि भारत की खोयी हुई विद्या उसे वापस मिले। मैं भारत नहीं जा सकता तो क्या हुआ तुम मेरे प्रतिनिधि के रूप में जा रहे हो। तुम्हें वहां जाकर बहुत बड़ी जिम्मेदारी निभानी है। इस प्रकार जुलाई १९६९ में मुंबई में विपश्यना का पहला शिविर लगा जिसमें मेरे माता-पिता तथा दस अन्य लोग सम्मिलित हुए। मैं सौभाग्यशाली हूं कि मैं अपने माता-पिता की सेवा कर सका। उन्हें धम्म सिखाकर उनके प्रति कृतज्ञता के भारी ऋण से मैं उऋण हो गया।

मैं अपने घर बर्मा वापस जाने के लिए तैयार था लेकिन देखा कि जो अन्य लोग शिविर में बैठे थे, वे मुझपर दबाव डालने लगे कि मैं कुछ और शिविर लूं। वे अपने माता-पिता, पत्नी, पति, बच्चों तथा मित्रों के लिए शिविर चाहते थे। तब फिर दूसरा शिविर लगा तत्पश्चात् तीसरा और चौथा। और इस प्रकार धर्मशिक्षा का प्रसार आरंभ हो गया। पूज्य गुरुदेव का स्वप्न साकार होने लगा।

सन् १९७१ में जब मैं बोधगया में एक शिविर ले रहा था, मुझे रंगून से एक तार द्वारा सूचना मिली कि मेरे गुरुदेवजी का देहांत हो गया है। इस समाचार से मुझे सचमुच ही बहुत धक्का लगा जो कि बिल्कुल ही अप्रत्याशित तथा अत्यंत दु:खदायी था। लेकिन जिस धम्म की उन्होंने शिक्षा दी थी, उससे मेरा चित्त संतुलित बना रहा।

अब मुझे फैसला करना था कि मैं इस संत पुरुष ऊ बा खिन के प्रति अपनी कृतज्ञता का ऋण कैसे चुकाऊं? मेरे माता-पिता ने मुझे मनुष्य प्राणी के रूप में जन्म दिया था परंतु मैं अज्ञान की खोल में बंद था। यह केवल इस असाधारण महापुरुष की सहायता का ही फल था कि मैं इस खोल को तोड़ सका और अपनी अंतर्निहित यथार्थता को देखकर सत्य का साक्षात्कार कर सका। केवल इतना ही नहीं, उन्होंने १४ वर्षों तक मुझे प्रशिक्षित कर धर्म में बलवान बनाया था। मैं अपने इस धम्म पिता के प्रति कृतज्ञता का ऋण कैसे चुकाता? मुझे केवल इतना दिखाई दे सका कि उन्होंने जो कुछ सिखाया था, मैं उसका अभ्यास करूं, धम्म का जीवन व्यतीत करूं। यही उनकी सच्ची श्रद्धांजलि है। मैं अपने मन में जितनी अधिक पवित्रता, जितना अधिक प्यार और करुणा विकसित कर सकता था उससे शेष जीवन को दूसरों की सेवा में समर्पित करने का संकल्प लिया, क्योंकि वे मुझसे यही चाहते थे।

वे बहुधा बर्मा में प्रचलित एक परंपरागत विश्वास का संदर्भ देते थे कि बुद्ध के जीवन काल के २,५०० वर्ष पश्चात् धम्म अपने जन्म देश भारत वापस लौटेगा और वहां से सारे संसार में फैलेगा। उनकी इच्छा थी कि भारत आकर वहां विपश्यना ध्यान का अभ्यास कराएं और उस भविष्यवाणी को सत्य सिद्ध करें। वे कहा करते थे कि २,५०० वर्ष पूरे हो गए हैं और विपश्यना का डंका बज गया है। दुर्भाग्यवश, उनके परवर्त्ती जीवनकाल की राजनीतिक स्थिति ने उन्हें विदेश नहीं जाने दिया। परंतु जब मुझे भारत आने की अनुमति मिली, तब वे बहुत प्रसन्न हुए और मुझसे कहा, "गोयन्का, तुम नहीं, मैं जा रहा हूं।"

पहले मुझे लगा कि यह भविष्यवाणी महज एक संप्रदायवादी विश्वास है। आखिर, जब इसके पहले यह घटित नहीं हुई तो २५ शताब्दी पश्चात कोई खास बात क्यों घटित हो सकती है? लेकिन जब मैं भारत आया, मुझे यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि यद्यपि इस विशालदेश में मैं एक सौ लोगों को भी नहीं जानता था फिर भी हर एक पृष्ठभूमि के, हर एक मान्यता और संप्रदाय के हजारों लोग शिविर में आने लगे। केवल भारतीय ही नहीं, अनेक दूसरे देशों के हजारों लोगों ने आना शुरू कर दिया।

यह स्पष्ट हो गया कि कारण के बिना कुछ भी नहीं होता है। बिना जाने-बूझे अकारण ही कोई शिविर में नहीं आता है। संभवतः कुछ लोगों ने अपने पूर्वजन्म में मेरे साथ कुछ कुशल कर्म किये हैं जिनके परिणामस्वरूप उन्हें धम्म के बीज को प्राप्त करने का अवसर मिला है। दूसरों ने पहले ही धम्मबीज की प्राप्ति कर ली है। अब वे उसके पोषण-संवर्द्धन के लिए आए हैं। आप चाहे धम्म बीज की प्रप्ति के लिए आए हों अथवा पहले से प्राप्त धम्मबीज के संवर्द्धन के लिए आए हों, अपने मंगल के लिए, अपने कल्याण के लिए, अपनी स्वस्ति-मुक्ति के लिए धम्म में पुष्ट होते रहें। आप देखेंगे कि कैसे इससे दूसरों को भी लाभ पहुँचने लगा है। धम्म सबके लिए लाभकारी है।

शांति का यह मार्ग सर्वत्र, सभी दःुखी लोगों को प्राप्त हो। उन सबको दुःखों से, बंधनों से मुक्ति मिले। वे सभी विकारों तथा अशुभ कर्मों से अपने चित्त को मुक्त कर सकें।

विश्व के सभी प्राणी सुखी हों!!

सभी प्राणियों को शांति मिले!!!

सभी प्राणियों की स्वस्ति-मुक्ति हो!

परिशिष्ट 'क'

बुद्ध की शिक्षा में संवेदना का महत्त्व

बुद्ध की शिक्षा आत्मरूपान्तरण के साधन के रूप में आत्मज्ञान को विकसित करने का एक शास्त्र है, एक प्रणाली है। अपनी प्रकृति की सच्चाई को अनुभूति के स्तर पर जानकर, हमलोग वैसी गलतफहमियों को दूर कर सकते हैं जिनके चलते हम गलत तरीके से काम करते हैं और फलस्वरूप दुःखी होते हैं। हम लोग सच्चाई के अनुसार काम करना सीखते हैं और फलस्वरूप उर्वर, उपयोगी तथा सुखी जीवन जीते हैं।

सतिपट्ठानसुत्त में भगवान बुद्ध ने आत्मनिरीक्षण के द्वारा आत्मज्ञान को विकसित करने की एक व्यावहारिक विधि बतायी है। यह विधि विपश्यना साधना है।

अगर हम लोग अपने बारे में सच्चाई जानने की कोशिश करते हैं तो यह तुरंत मालूम होता है कि जिसको हम 'आत्मा' कहते हैं उसके दो पक्ष हैं। भौतिक और मानसिक, रूप और नाम। हमें दोनों को देखना सीखना चाहिए। लेकिन हम नाम और रूप की वास्तविक सच्चाई को सही रूप में कैसे अनुभव कर सकते हैं? दूसरों द्वारा कही गयी बातें काफी नहीं हैं और न बौद्धिक ज्ञान पर निर्भर करना ही काफी है। दोनों हमें आत्म-निरीक्षण में मार्ग-दर्शन दे सकते हैं, लेकिन हममें से प्रत्येक को अपने अंदर की सच्चाई को प्रत्यक्ष रूप से स्वयं खोजना और अनुभव करना चाहिए।

हम सभी शरीर की सच्चाई को शरीर पर उठी संवेदनाओं का अनुभव करके ही जान सकते हैं। दूसरी सच्चाई आंख बंद भी कर लेते हैं तो जानते हैं कि यह हमारा हाथ है, या ये शरीर के दूसरे अंग हैं, क्योंकि हम उनका अनुभव कर सकते हैं। जैसे किताब का एक बाहरी रूप है और उसका विषय उसके अंदर है। शरीरस्कंध की भी एक बाहरी और वस्तुगत सच्चाई काया है और एक आंतरिक सच्चाई संवेदना है। किताब के सारे शब्दों को पढ़कर हम किताब को आत्मसात करते हैं। उसी तरह हम काया का अनुभव संवेदनाओं का अनुभव करके करते हैं। संवेदनाओं की प्रत्यक्ष अनुभूति के बिना शरीर का प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं हो सकता। दोनों एक दूसरे से गुँथे हैं; एक से दूसरे को अलग नहीं किया जा सकता।

उसी तरह मन का विश्लेषण बाह्य रूप तथा अंतर्वस्तु में किया जा सकता है: चित्त बाह्य है और इस चित्त में जो कुछ भी होता है जैसे विचार, प्रवृत्ति, याददाश्त, आशा, भय तथा अन्य कोई मानसिक घटना वह अन्तर्वस्तु या धर्म है। जैसे शरीर और उस पर उठने वाली संवेदनाओं को अलग-अलग नहीं देखा जा सकता, वैसे ही चित्त को भी वहां उठने वाले विचार, प्रवृत्ति, आशा, भय से अलग कर नहीं देखा जा सकता। लेकिन काया और मन दोनों ही में अन्योन्याश्रय संबंध है। एक पर जो कुछ भी होता है उसका प्रभाव दूसरे पर अवश्य पड़ता है। यह बुद्ध की सबसे बड़ी खोज थी, जिसका उनकी शिक्षा में निर्णायक महत्त्व है। उनके शब्दों में सभी धर्म की अभिव्यक्ति संवेदना से होती है अर्थात धर्म और संवेदना में अन्योन्याश्रय संबंध है।[१] इसलिए संवेदना को देखकर हम अपने नाम रूपात्मक स्कंध को पूरा-का-पूरा देख सकते हैं।

सच्चाई के चार आयाम हर मनुष्य में पाये जाते हैं। ये हैं काया का भौतिक पहलू और उस पर उठने वाली संवेदना और मन और इसका धर्म। इस दृष्टिकोण से सतिपट्ठान सुत्त के चार भाग हैं, जिन पर काम करके हम अपनी स्मृति को प्रतिष्ठित कर सकते हैं। ये चार बिंदु हैं: कायानुपस्सना, वेदनानुपस्सना, चित्तानुपस्सना और धम्मानुपस्सना । अगर पूरा अन्वेषण (खोज) करना है तो इस पहलू को अनुभव पर उतारना चाहिए। और हम चारों का अनुभव संवेदना को देखकर ही कर सकते हैं।

इस कारण बुद्ध ने विशेषकर संवेदना सति को बहुत महत्त्व दिया। एक महत्त्वपूर्ण सुत्त ब्रह्मजाल-सुत्त में उन्होंने कहा – संवेदनाओं को जैसी वे हैं उन्हें देखकर, उनके उत्पाद-व्यय को, उनके आस्वाद को, उनसे होने वाले खतरे को और उनसे कैसे निस्सरण हो सकता है इन सबको अच्छी तरह देखकर तथागत उनसे पूरी तरह मुक्त हो गये हैं।[२]

वेदनानुस्मृति चार आर्यसत्यों को समझने के लिए पूर्वापेक्षित है – तथागत ने बताया। जो संवेदना को देखता है, उसका अनुभव करता है उनको मैं दु:ख, दु:ख समुदय, दु:ख निरोध, दु:ख निरोधगामिनी प्रतिपदा का साक्षात्कार करने के लिए मार्ग बताता हूं।[३]

संवेदना वस्तुत: है क्या? बुद्ध ने बहुत प्रकार से इसका वर्णन किया है। मानस के चार खंड हैं जिनसे चार प्रकार की क्रियाएं होती हैं, संवेदना को उन्होंने इन चार प्रक्रियाओं में सम्मिलित किया है (देखें अध्याय २) तथापि, जब वे इसको सूक्ष्मता से परिभाषित कर रहे थे उन्होंने संवेदना में शारीरिक तथा मानसिक दोनों ही पक्ष देखे।[४] अगर मन न हो तो अकेला रूप कुछ अनुभव नहीं कर सकता।

उदाहरण के लिए मृत शरीर में कोई संवेदना कौन अनुभव करे? मन ही अनुभव करता है लेकिन जो यह अनुभव करता है उसमें रूप इस तरह जुड़ा रहता है जिसका विमोचन नहीं किया जा सकता।

बुद्ध की शिक्षा का अभ्यास करने के लिए यह भौतिक तत्त्व रूप ही (प्रमुख) बड़े महत्त्व का है। अभ्यास का उद्देश्य हममें उस योग्यता को विकसित करना है जिससे हम संतुलित चित्त से, समता भाव से, जीवन में आने वाले उतार-चढ़ाव से निपट सकें। साधना में हमारे अंदर जो भी हो रहा है उसको समता से देखकर हम वैसा करना सीखते हैं। इस समता से हम अंध प्रतिक्रिया करने की आदत को तोड़ सकते हैं और बदले में किसी भी परिस्थिति में अच्छा रास्ता, लाभकारी रास्ता चुन सकते हैं।

हम जीवन में जो भी अनुभव करते हैं वे छः इंद्रिय द्वारों से आते हैं। उनमें पांच भौतिक और एक मानसिक इंद्रिय है। प्रतीत्यसमुत्पाद के नियम के अनुसार जैसे ही छः में से किसी भी इंद्रियद्वार पर स्पर्श होता है, जैसे ही किसी भौतिक या मानसिक तथ्य का हम सामना करते हैं, संवेदना उत्पन्न होती है। **(फस्स पच्चया वेदना)** शरीर पर जो कुछ होता है अगर हम इस पर ध्यान नहीं देंगे तो चेतन स्तर पर हमलोग संवेदना के बारे में अनजान (अनभिज्ञ) रह जायेंगे। अविद्या के अंधेरे में संवेदना के प्रति बिना जाने एक प्रतिक्रिया प्रारंभ होती है, जो क्षण भर के लिए प्रिय या अप्रिय होती है, जो राग या द्वेष में विकसित होती है। यह प्रतिक्रिया अनेकों बार, बार-बार होती है और प्रबल से प्रबलतर होती जाती है। और तब यह चेतन चित्त पर अतिक्रमण करती है। अगर साधक सिर्फ उसी पर ध्यान देते हैं जो चेतन मन पर घटित होता है, वे प्रतिक्रिया होने के बाद जब वह खतरनाक स्तर तक पहुँच जाती है और इतनी हो जाती है कि वह उन्हें अभिभूत कर ले तब प्रक्रिया के बारे में अवगत होते हैं। संवेदना की छोटी सी चिनगारी को बुझाने के पहले धधकती आग का रूप लेने देते हैं और इस तरह अनावश्यक रूप से अपने लिए कठिनाइयां पैदा करते हैं। लेकिन अगर वे शरीर पर वेदनाओं को तटस्थ भाव से देखना सीख जायं तो वे हर चिनगारी को बुझ जाने देते हैं जिसका फल होता है कि वह चिनगारी धधकती आग को उत्पन्न नहीं कर सकती। भौतिक पहलू को महत्त्व देकर वे संवेदना के प्रति उस समय जागरूक होते हैं जब वह उत्पन्न होती है। और इस तरह वे प्रतिक्रिया होने को रोक सकते हैं।

संवेदना का भौतिक पहलू विशेष महत्त्व का है क्योंकि यह अपने अंदर अनित्यता की सच्चाई को स्पष्ट रूप से अनुभव कराती है। हमारे अंदर हर क्षण परिवर्तन होता है जो तरह-तरह की संवेदनाओं के रूप में प्रकट होता है। इसी स्तर

पर अनित्यता का अनुभव किया जाना चाहिए। बार-बार बदलती संवेदनाओं को देखने से हमारी अपनी अनित्य प्रकृति की अनुभूति होती है। इस अनुभूति से यह स्पष्ट हो जाता है कि जो चीज इतनी क्षणभंगुर है उसके प्रति आसक्ति तो बेकार है। इस प्रकार अनित्यता की प्रत्यक्ष अनुभूति अपने आप निर्वेद (अनासक्ति) को जन्म देती है, जिससे कोई राग द्वेष की ताजा प्रतिक्रिया को ही नहीं रोकेगा, बल्कि प्रतिक्रिया करने की आदत को भी उखाड़ फेंकेगा। इस प्रकार व्यक्ति क्रमशः दुःख से मानस को मुक्त करता है। जब तक संवेदना के भौतिक पहलू पर ध्यान नहीं दिया जाता, उसके प्रति जागरूकता आंशिक और अधूरी रहती है।

इसलिए बुद्ध ने बार-बार शरीर पर होने वाली संवेदना के द्वारा अनित्यता के अनुभव पर जोर दिया। उन्होंने कहा –

येसञ्च सुसमारद्धा, निच्चं कायगता सति।
अकिच्चं ते न सेवन्ति, किच्चे सातच्चकारिनो।
सतानं सम्पजानानं, अत्थं गच्छन्ति आसवा॥[५]

> जिनकी कायानुस्मृति नित्य उपस्थित रहती है (याने, जो सतत कायानुपश्यना करते रहते हैं, काय के प्रति एवं काय में होने वाली संवेदनाओं के प्रति जागरूक रहते हैं), वे (साधक) कभी कोई अकरणीय काम नहीं करते, सदा करणीय ही करते हैं। (ऐसे) स्मृतिमान और प्रज्ञावान (साधकों) के आश्रव क्षय को प्राप्त होते हैं (उनके चित्त के मैल नष्ट होते हैं)।

दुःख का कारण तण्हा (तृष्णा) है। राग तथा द्वेष दोनों ही तृष्णा है। साधारणतया यह लगता है कि हमलोग राग और द्वेष की प्रतिक्रियाएं उन अनेक वस्तुओं के प्रति जगाते हैं जिनके संपर्क में हम अपनी छः इंद्रियों द्वारा आते हैं। तथापि बुद्ध ने यह खोज की कि वस्तु और उसके प्रति प्रतिक्रिया करने के बीच एक अदृश्य कड़ी है जो संवेदना है। हमलोग बाह्य वस्तुओं के प्रति प्रतिक्रिया नहीं करते, प्रतिक्रिया करते हैं अपने अंदर होने वाली संवेदना के प्रति। जब हम बिना राग-द्वेष किये संवेदना को देखना सीख जाते हैं, तब नये दुःख के कारण उत्पन्न नहीं होते और उत्पन्न हुआ दुःख समाप्त हो जाता है। इसलिए बुद्ध की शिक्षा का अभ्यास करने के लिए संवेदना को देखना आवश्यक है। और अगर **वेदनानुस्मृति** पूरी होनी है तो इसे हमें भौतिक स्तर पर देखना होगा। शारीरिक संवेदना के प्रति जागरूकता से हम समस्या की जड़ तक पहुँच सकते हैं और इसे दूर कर सकते हैं। हमलोग अपनी प्रकृति को गहराई में जाकर देख सकते हैं और अपने को दुःख से मुक्त कर सकते हैं।

बुद्ध की शिक्षा में **वेदनानुस्मृति** को प्रमुख महत्त्व का समझकर **सतिपट्ठान सुत्त** में कोई नयी अंतर्दृष्टि (प्रज्ञा) प्राप्त कर सकता है।[६] सुत्त के प्रारंभ में सतिपट्ठान का उद्देश्य बताया गया है– स्मृति को स्थापित करना। इसका उद्देश्य है, प्राणियों की विशुद्धि, शोक और परिदेव का समतिक्रमण (शारीरिक) दुःख और मानसिक दौर्मनस्य से छुटकारा, सत्य की राह पर चलने का अभ्यास और निर्वाण का साक्षात्कार।[७] फिर संक्षेप में बताया गया है कि इन लक्ष्यों की प्राप्ति कैसे हो सकती है। साधक लोक के प्रति राग और द्वेष का त्याग कर स्मृतिमान और संप्रज्ञ हो काया में काया को, संवेदना में संवेदना को, चित्त में चित्त को और धर्म में धर्म को देखते हुए विहार करता है।[८]

'काया में कायानुपश्यना', 'वेदना में वेदनानुपश्यना' आदि का क्या अर्थ है? विपश्यी साधक के लिए इसका अर्थ बिल्कुल स्पष्ट है। काया, संवेदना, चित्त और धर्म मनुष्य के चार आयाम हैं।

इस मानव प्रपंच को सही-सही समझने के लिए, हममें से प्रत्येक को अपनी वास्तविकता प्रत्यक्ष अनुभव करनी चाहिए। प्रत्यक्ष अनुभूति की प्राप्ति के लिए साधक को स्मृति और संप्रज्ञान इन दो गुणों का विकास करना चाहिए। इस प्रवचन को **'सतिपट्ठान सुत्त'** कहा जाता है, लेकिन बिना संप्रज्ञान के, बिना अपने स्वभाव की गहराई में जाकर प्राप्त अन्तर्दृष्टि के, बिना इस ज्ञान के कि जिसे कोई 'मैं' कहता है, वह अनित्य है, स्मृति अधूरी है। सतिपट्ठान के अभ्यास से साधक अपने अनित्य, क्षणभंगुर स्वभाव को जानते हैं। जब उनको यह प्रत्यक्ष ज्ञान या अनुभूति हो जाती है तब स्मृति पूरी तरह स्थापित हो जाती है – सम्यक स्मृति जो मुक्ति की ओर ले जाने वाली है। तब राग और द्वेष अपने आप समाप्त हो जाते हैं, न सिर्फ बाह्य दुनिया के प्रति बल्कि आंतरिक दुनिया के प्रति भी, जहां राग और द्वेष अनुशय के रूप में रहते हैं और अक्सर देखे नहीं जाते क्योंकि अविद्या के कारण अपने मन और काया के प्रति आंत्रिक आसक्ति रहती है। जब तक ये अनुशय क्लेश रहते हैं, व्यक्ति को दुःखों से मुक्ति नहीं हो सकती।

'सतिपट्ठानसुत्त' सर्वप्रथम कायानुपश्यना पर विचार करता है। यह नाम रूपात्मक स्कंध का सबसे प्रत्यक्ष पहलू है। इस कारण यही वह उचित बिंदु है, जहां से आत्म-निरीक्षण का काम करना चाहिए। यहीं से वेदनानुपस्सना, चित्तानुपस्सना तथा धम्मानुपस्सना स्वाभाविक रूप से भावित होती हैं। इस सुत्त में कायानुपस्सना करने के कई तरीके बताये गये हैं। पहला और सर्वमान्य है 'आनापान' – (सांस के आने-जाने को देखना)। दूसरा तरीका है ईर्यापथों के बारे में जागरूक होना अर्थात शरीरचर्या के बारे में स्मृतिमान होना। लेकिन कोई चाहे

जैसे भी यात्रा प्रारंभ करे, अंतिम लक्ष्य की प्राप्ति के लिए रास्ते में कुछ ऐसी अवस्थाएं हैं जिनसे होकर गुजरना ही पड़ता है। सुत्त के एक कठिन (बहुत ही महत्त्वपूर्ण) परिच्छेद में इनका वर्णन किया गया है।

> "इस प्रकार वह भीतर की ओर काया में कायानुपश्यी होकर विहार करता है, अथवा बाहर की ओर काया में कायानुपश्यी होकर विहार करता है अथवा भीतर-बाहर (सर्वत्र) काया में कायानुपश्यी होकर विहार करता है; अथवा समुदयधर्मानुपश्यी होकर काया में विहार करता है, अथवा व्ययधर्मानुपश्यी होकर काया में विहार करता है अथवा समुदयव्ययधर्मानुपश्यी होकर काया में विहार करता है; उसकी स्मृति (इस सच्चाई में) प्रतिष्ठापित हो जाती है– 'यह काया है!' जब तक मात्र ज्ञान, मात्र दर्शन बना रहता है तब तक अनाश्रित होकर विहरता है और लोक में कुछ भी ग्रहण नहीं करता। इस प्रकार भी (कोई) भिक्षु काया में कायानुपश्यी होकर विहार करता है।[९]

इस परिच्छेद का कितना महत्त्व है यह इस बात से पता चलता है कि यह सिर्फ कायानुपस्सना के हर पर्व के अंत में ही नहीं आया है, बल्कि वेदनानुपस्सना, चित्तानुपस्सना और धम्मानुपस्सना के हर भाग (खंड) में आया है। अंतिम तीन अनुपस्सनाओं में 'काया' की जगह क्रमशः 'संवेदना' 'चित्त' तथा 'धर्म' आया है। सतिपट्ठान के अभ्यास में, इसकी भावना करने में यह परिच्छेद सर्वमान्य पृष्ठभूमि का वर्णन करता है। चूंकि यह परिच्छेद कठिन है– इसकी व्याख्या भिन्न-भिन्न प्रकार से की गयी है, जिनमें बहुत अंतर है। तथापि जब यह समझा जाता है कि यह परिच्छेद **वेदनानुपस्सना** की बात करता है तब सारी कठिनाइयां दूर हो जाती हैं। सतिपट्ठान की भावना करने में, साधक अपनी प्रकृति के बारे में व्यापक एवं विचक्षण अंतर्दृष्टि प्राप्त करे – इस दृष्टि को प्राप्त करने की साधना **वेदनानुपस्सना** है जिसमें नामरूप स्कंधात्मक तथ्य के अन्य तीन आयाम भी समाहित हैं। इसलिए पहला कदम चाहे भिन्न हो, एक निश्चित बिंदु के बाद इसके अभ्यास का अर्थ है **वेदनानुपस्सना** संवेदना के प्रति जागरूकता।

इसलिए, इस परिच्छेद के अनुसार साधक काया के अंदर अथवा काया की बाहरी सतह पर अथवा दोनों जगह उठने वाली संवेदनाओं को देखकर इसका अभ्यास प्रारंभ करते हैं। अर्थात काया के कुछ भाग में संवेदनाओं को अनुभव कर तथा कुछ भागों में न अनुभव कर, वे धीरे-धीरे पूरी काया में संवेदनाओं को देखने की क्षमता का विकास करते हैं। जब वे अभ्यास का प्रारंभ करते हैं, हो सकता है वे पहले तीव्र संवेदनाओं को अनुभव करें जो उत्पन्न होकर कुछ देर तक ठहरती हैं। साधक उनके उत्पन्न होने को जानते हैं और कुछ देर के बाद वे जानते हैं कि वे समाप्त हो गयी हैं। इस अवस्था में वे नामरूपस्कंधात्मक काया के प्रकट सत्य को

जान रहे हैं। ऊपर से ठोस तथा नित्य दीखने वाली प्रकृति का अनुभव कर रहे हैं लेकिन जैसे अभ्यास आगे बढ़ाया जाता है एक ऐसी अवस्था आती है जहां घनत्व अपने आप पिघल जाता है, ठोसपना गायब हो जाता है और नाम तथा रूप की असली प्रकृति अनुभवगम्य होती है जो सिर्फ प्रकंपनों की राशि है, जो हर क्षण उत्पन्न और विनष्ट होती हैं। अब इस अनुभव से व्यक्ति अंततः जान लेता है कि काया, संवेदना, चित्त तथा धर्म वस्तुतः क्या हैं अर्थात ये निरंतर परिवर्तनशील, निर्वैयक्तिक तथ्य हैं।

नाम-रूप के परम सत्य का प्रत्यक्ष अनुभव सभी भ्रमों, भ्रांतियों तथा पूर्व धारणाओं को शनैः-शनैः को ध्वस्त कर देता है। यहां तक कि श्रद्धा और बुद्धि से मानी जाने वाली बातों का भी नया महत्त्व हो जाता है जब वे अनुभव पर उतारी जाती हैं। धीरे-धीरे अंदर की सच्चाई का साक्षात्कार कर वे सारे संस्कार जिनसे ज्ञान विकृत होता है, दूर हो जाते हैं। सिर्फ स्मृति (सति) और संप्रज्ञान रहते हैं।

जैसे-जैसे अज्ञान दूर होता है मन की गहराई में छिपे राग और द्वेष समूल उखाड़ दिये जाते हैं और साधक सभी आसक्तियों से मुक्त हो जाता है – यहां तक कि अपने नाम तथा रूप के प्रति जो गहरी आसक्ति है वह भी दूर हो जाती है। जब यह आसक्ति निःशेष हो जाती है, दुःख समाप्त हो जाता है और व्यक्ति मुक्त हो जाता है।

बुद्ध अक्सर कहते थे– जो कुछ अनुभव पर उतरता है या जो कुछ भी अनुभव किया जाता है वह दुःख से ही संबंधित है।[१०] इसलिए संवेदना दुःख सत्य को पूरी तरह जानने के लिए एक आदर्श साधन है।

दुःखद संवेदनाएं तो दुःख हैं ही, लेकिन सुखद संवेदनाएं भी एक प्रकार की सूक्ष्म अशांति हैं, दुःख ही हैं। हर संवेदना अनित्य है। अगर कोई सुखद संवेदनाओं के प्रति आसक्त है तो जब वे चली जाती हैं, तब दुःख रह जाता है। इस प्रकार हर संवेदना अपने में दुःख का बीज छिपाये है। इस कारण जब बुद्ध ने दुःख निरोधगामिनी प्रतिपदा की बात कही, उन्होंने उस मार्ग की बात कही जहां संवेदना का उदय-व्यय होता है।[११] जब तक व्यक्ति नाम और रूप के क्षेत्र में रहता है, जहां कारण-कार्य का नियम लागू होता है, संवेदनाएं और दुःख रहते ही हैं। वे तभी समाप्त होते हैं जब कोई इस क्षेत्र के पार चला जाता है जहां वह परम सत्य निर्वाण का अनुभव कर सके।

बुद्ध ने कहा –

> जो बहुत बोलता है इसका यह अर्थ नहीं कि वह धर्मधर हो गया। जो कोई थोड़ी सी बात सुनकर काया से धर्म का दर्शन करने लगता है अर्थात निसर्ग

> के नियम का अनुभव करने लगता है तब वह निःसंदेह धर्मधर होता है और वह धर्माचरण में प्रमाद नहीं करता।[१२]

हमारी अपनी काया इस सच्चाई का गवाह है। जब साधक अपने अंदर सत्य की खोज करते हैं, यह उनके लिए सत्य हो जाता है और वे इसके अनुसार जीते हैं। हममें से हर कोई अपने अंदर संवेदनाओं को देखना सीखकर सत्य का साक्षात्कार कर सकता है और ऐसा करके हम लोग दुःख से मुक्त हो सकते हैं।

परिशिष्ट 'ख'

सुत्तपिटक से संवेदना संबंधित परिच्छेद (उद्धरण)

अपने प्रवचनों (उपदेशों) में बुद्ध ने बार-बार वेदनानुपश्यना के महत्त्व को बताया है। इससे संबंधित नीचे लिखे कुछ परिच्छेद हैं।

आकाश में भिन्न-भिन्न प्रकार की हवाएं बहती हैं। पूरब से, पश्चिम से, उत्तर से, दक्षिण से, हवाएं बहती हैं। धूलभरी, धूलरहित, ठंढी, गर्म, मंद हवा और भयानक आंधी चलती है– इसी प्रकार इस काया में बहुत प्रकार की संवेदनाएं उत्पन्न होती हैं, सुखद, दुःखद तथा अदुःखदअसुखद। जब साधक उत्साहपूर्वक अभ्यास करता है और सम्पजञ्ञ (संप्रज्ञान) की जरा भी उपेक्षा नहीं करता, तब वह संवेदनाओं को संपूर्णरूप से जानता है। पूरी तरह से उन संवेदनाओं को जानकर वह इसी जीवन में सभी विकारों से मुक्त हो जाता है। जीवन के अंत में वैसा व्यक्ति जो धर्म में स्थापित है और पूरी तरह संवेदनाओं को जानता है इस संस्कृत संसार के पार चला जाता है और अवर्णनीय, अवचनीय की प्राप्ति करता है। (**संयुत्तनिकायपालि २.४.२६०, पठमआकाससुत्त**)

२. साधक कैसे काया में कायानुपश्यी हो विहरता है? साधक जंगल में, वृक्ष के नीचे या शून्यागार में पालथी मारकर शरीर को सीधा रखकर, स्मृति को नासिका के द्वार पर रखकर बैठता है। वह जागरूक रह सांस छोड़ता है, जागरूक रह सांस लेता है। लंबी सांस छोड़ते समय 'लंबी सांस छोड़ता हूं' जानता है। लंबी सांस लेते समय 'लंबी सांस लेता हूं' जानता है। छोटी सांस छोड़ते समय 'छोटी सांस छोड़ता हूं जानता है। छोटी सांस लेते समय 'छोटी सांस लेता हूं' जानता है। सारी काया को जानते हुए (अनुभव करते हुए) सांस छोड़ना सीखता है। सारी काया को जानते हुए सांस लेना सीखता है। काया के संस्कार (गति, क्रिया) को शांत करते सांस छोड़ना सीखता है। (**दीघनिकायपालि २.३७४, सतिपट्ठानसुत्त, आनापान पब्ब**)

३. साधक जब सुखद, दुःखद और अदुःखदअसुखद संवेदना अनुभव करता है वह जानता है– सुखद संवेदना या दुःखद संवेदना या अदुःखदअसुखद संवेदना मुझमें उत्पन्न हुयी है। यह प्रतीत्यसमुत्पन्न है, यह बिना कारण नहीं है। किस पर प्रतीत्य हो यह उत्पन्न हुयी है ? इसी काया पर प्रतीत्य हो।' इस प्रकार

अपनी काया के भीतर संवेदना के अनित्य स्वभाव को देखते हुए वह विहार करता है। **(संयुत्तनिकायपालि २.४.२५५, पठमगेलञ्ञसुत्त)**

४. साधक समझता है मुझमें मनाप (सुखद), अमनाप (दुःखद), और मनापामनाप (अदुःखदअसुखद) अनुभव उत्पन्न हुआ है। यह संस्कृत है, ओलारिक है और प्रतीत्यसमुत्पन्न है। लेकिन वस्तुतः क्या रहता है, क्या प्रणीत है, यह उपेक्षा है। चाहे साधक में सुखद अनुभव उत्पन्न हुआ हो या अमनाप (दुःखद) या मनापामनाप (अदुःखदअसुखद) वह निरुद्ध हो जाता है, उपेक्षा रह जाती है। **(मज्झिमनिकायपालि ३.४५३, इन्द्रियभावनासुत्त)**

५. तीन प्रकार की संवेदना है– सुखद वेदना, दुःखद वेदना और अदुःखदअसुखद वेदना। ये तीनों ही अनित्य हैं, संस्कृत हैं तथा प्रतीत्यसमुत्पन्न हैं, क्षयधर्मा, व्ययधर्मा, विरागधर्मा और निरोधधर्मा है। इस सच्चाई को देखकर आर्यमार्ग का अनुगामी तीनों ही प्रकार की संवेदनाओं के प्रति समताभाव रखता है। समता को भावित कर वह निर्वेद विकसित करता है और निर्वेद भावित कर मुक्त हो जाता है। **(मज्झिमनिकायपालि २.२०१, दीघनखसुत्त)**

६. अगर कोई साधक अपनी काया पर की सुखद संवेदना की अनित्यता को देखते हुए विहार करता है, उसके क्षय को, उसके विराग को, निरोध को और अपने द्वारा छोड़ी गयी सुखद संवेदना के प्रति उस आसक्ति को देखता है तो काया में सुख संवेदना के प्रति रागानुशय का प्रहाण होता है। उसी तरह अगर वह दुःखद संवेदना की अनित्यता को देखते हुए विहार करता है तो काया में दुःखद संवेदना के प्रति प्रतिघानुशय का प्रहाण होता है। इसी तरह अगर वह अदुःखदअसुखद संवेदना की अनित्यता को देखते हुए विहार करता है तो काया में अदुःखमसुखद संवेदना के प्रति अविद्यानुशय का प्रहाण होता है। **(संयुत्तनिकायपालि २.४.२५५, पठमगेलञ्ञसुत्त)**

७. जब साधक की सुखद संवेदना के लिए रागानुशय का दुःखद संवेदना के लिए प्रतिघानुशय का और अदुःखदअसुखद संवेदना के लिए अविद्यानुशय का प्रहाण होता है तब साधक पूरी तरह से अनुशयों से मुक्त होता है। उसने सत्य का साक्षात्कार कर लिया है, उसने तृष्णा को (राग द्वेष को) पूरी तरह काट डाला है, उसने सारे संयोजनों को काट डाला है, उसने अहं की भ्रामक प्रकृति को पूरी तरह समझ लिया है (मानाभिसमय), उसने दुःखों का अंत कर डाला है। **(संयुत्तनिकायपालि २.४.२४, पहानसुत्त)**

८. यथाभूत सत्य की दृष्टि उसकी सम्यक दृष्टि होती है ।यथाभूत सत्य का संकल्प उसका सम्यक संकल्प होता है। यथाभूत सत्य की ओर किया गया प्रयास सम्यक व्यायाम होता है, यथाभूत के प्रति जागरूकता सम्यक स्मृति होती है। यथाभूत पर की गयी समाधि सम्यक समाधि होती है। उसके कायिककर्म, वाचिककर्म और आजीविका सुपरिशुद्ध होती है। इस प्रकार उसमें आर्य अष्टांगिक मार्ग भावित होता है और पूर्णता को प्राप्त करता है। (**मज्झिमनिकायपालि ३.४२८-४३३, महासळायतनिकसुत्त**)

९. आर्य अष्टांगिक मार्ग पर श्रद्धापूर्वक चलने वाला प्रयत्न करता है और अपने प्रयत्नों में जुड़े रहने के कारण स्मृतिमान होता है, स्मृतिमान हो समाधि की प्राप्ति करता है और समाधि करते-करते सम्यक दृष्टि भावित करता है और ठीक से समझने पर सच्ची श्रद्धा विकसित करता है और यह जानने में वह आश्वस्त होता है 'कि उन सत्यों को जिनके बारे में पूर्व में मैंने सुना था, उन्हें इस काया में प्रत्यक्ष अनुभव कर मैं विहार करता हूं और मैं प्रतिवेधक प्रज्ञा से देखता हूं।' (**संयुत्तनिकायपालि ३.५.५२०, आपणसुत्त**)

परिशिष्ट 'ग'

शब्दावली

इस सूची में पालि के वे शब्द हैं जिनका उल्लेख इस पुस्तक में हुआ है। और बुद्धवाणी में पाये जाने वाले कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण शब्दों का भी समावेश है।

आनापान सांस का आना-जाना, श्वसन, **आनापान सति** – श्वसन बोध, सांस के आने-जाने की जानकारी।

अनत्ता अनात्मा, सत्त्व-रहित, दृश्य प्रपंच (phenomena) के तीन आधारभूत लक्षणों में से एक। अन्य दो हैं:– अनित्य तथा दुःख।

अनिच्च अनित्य, परिवर्त्तनशील, क्षणभंगुर, क्षणिक, आभास या दृश्य प्रपंच (phenomena) के तीन आधारभूत लक्षणों में से एक। अन्य दो हैं: अनात्मा और दुःख।

अनुसय अचेतन मन, प्रच्छन्न, अप्रकट, सुषुप्त मानसिक अशुचि (विकार) अनुशय क्लेश।

अर्हंत/अर्हत मुक्त पुरुष, वैसा व्यक्ति जिसने मन के सभी विकारों को नष्ट कर दिया हो।

अरिय आर्य, संतपुरुष, वैसा व्यक्ति जिसने मन के सभी विकारों को नष्ट कर परम सत्य (निर्वाण) की प्राप्ति कर ली हो।

अरियअट्ठङ्गिकमग्ग आर्य अष्टांगिक मार्ग जो दुःख से दुःखमुक्ति की ओर ले जाता है। यह तीन शिक्षाओं में विभाजित है।

सील शील। कायिक और वाचिक कर्मों की शुद्धता, सम्यकवाणी, सम्यक कर्मांत और सम्यक आजीविका।

समाधि मन की एकाग्रता, उस पर नियंत्रण, सम्यक व्यायाम, सम्यक स्मृति और सम्यक समाधि।

पञ्ञा प्रज्ञा, अंतर्दृष्टि जो मन को पूरी तरह निर्मल कर देती है। सम्यक संकल्प और सम्यक दृष्टि।

अरिय सच्च आर्यसत्य। चार आर्य सत्य हैं:– दुःख, दुःखसमुदय, दुःखनिरोध और दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपदा।

भङ्ग	भंग, विपश्यना अभ्यास की एक महत्त्वपूर्ण अवस्था। ऊपर से ठोस लगने वाले इस शरीर के भंग का अनुभव। ऐसा अनुभव होने लगता है कि शरीर सूक्ष्म प्रकंपनों के सिवा कुछ नहीं है। ये प्रकंपन उत्पन्न हो-होकर नष्ट हो जाते हैं।
भावना	मानसिक विकास, ध्यान। भावना के दो प्रकार हैं– **समथ भावना** (शमथ भावना) जहां चित्त एकाग्र हो जाता है और **विपस्सना भावना** (विपश्यना भावना) जहां प्रज्ञा का विकास होता है। शमथ समाधियों की ओर ले जाता है और विपश्यना मुक्ति की ओर ले जाती है।
भावनामया पञ्ञा	भावनामयी प्रज्ञा – अनुभूति के स्तर पर होने वाला ज्ञान (देखें प्रज्ञा)।
भिक्खु	(बौद्ध भिक्षु) साधक।
भिक्खुनी	भिक्षुणी
बुद्ध	सम्यक-संबुद्ध जिन्होंने मुक्ति का मार्ग खोजा, जिसका अभ्यास किया और अपने प्रयत्न से जिन्होंने अंतिम लक्ष्य प्राप्त किया।
चिंतामया पञ्ञा	चिंतनमयी प्रज्ञा – बौद्धिक ज्ञान– देखें प्रज्ञा।
चित्त	चित्त। **चित्तानुपस्सना** – चित्तानुपश्यना– देखें स्मृत्युपस्थान (सतिपट्ठान)
धम्म	दृश्य प्रपंच (phenomena), आभास, चित्त के धर्म; स्वभाव, निसर्ग का नियम मोक्ष के नियम अर्थात सम्यक संबुद्ध की शिक्षा।
धम्मानुपस्सना	धर्मानुपश्यना। चित्त में पाये जाने वाले विचारों तथा धर्मों की अनुपश्यना देखें– सतिपट्ठान (संस्कृत-धर्म)।
दुक्ख	दुःख, असंतोष। दृश्य प्रपंच (phenomena) के तीन आधारभूत लक्षणों में से एक, अन्य दो हैं अनित्य, अनात्म।
गोतम	ऐतिहासिक बुद्ध के कुल का नाम।
हीनयान	इसका अभिधार्थ है 'छोटा यान' यह थेरवाद बुद्धिज्म के लिए अन्य बौद्ध संप्रदायों द्वारा प्रयोग में लाया जाता है। निंदात्मक पारिभाषिक शब्द है।

झान ध्यान, एकाग्रता की स्थिति। समाधि से या शमथ भावना से आठ ध्यान प्राप्त किये जा सकते हैं। इनके अभ्यास से मन शांत और प्रीति से भर जाता है। लेकिन इनसे अनुशय क्लेश की जड़ें उन्मूलित नहीं होतीं।

कलाप रूप की सबसे छोटी अविभाज्य इकाई।

कम्म कर्म– वैसा कर्म जिसका फल भविष्य में मिलेगा। (संस्कृत कर्म)

काय शरीर, काया – **कायानुपस्सना**– काया की अनुपश्यना। (देखें सतिपट्ठान)

महायान अभिधार्थ है 'बड़ा यान'। बुद्ध के कुछ शताब्दियों बाद जिस प्रकार का बुद्ध-धर्म विकसित हुआ और जिसका प्रचार-प्रसार उत्तर दिशा में तिब्बत, मंगोलिया, चीन, वियत-नाम, कोरिया और जापान में हुआ।

मेत्ता निःस्वार्थ प्रेम और सद्भाव। निर्मल चित्त का एक गुण। **मेत्ता-भावना**– ध्यान की प्रणाली से मैत्री भावना को विकसित करना।

निब्बान निर्वाण; दुःख से मुक्ति, परम सत्य, असंस्कृत।

पालि पंक्ति, मूलपाठ; तिपिटक, अतः इसकी भाषा। ऐतिहासिक, भाषिक तथा पुरातात्विक साक्ष्यों से स्पष्ट है कि पालिभाषा बुद्ध के समय में या उनके कुछ पहले उत्तरी भारतवर्ष में बोली जाती थी। बाद में तिपिटक का अनुवाद संस्कृत में हुआ। संस्कृत वस्तुतः साहित्यिक भाषा है।

पञ्ञा प्रज्ञा, तीन शिक्षाओं में से एक। अष्टांगिक मार्ग के दो अंग – सम्यक संकल्प और सम्यक दृष्टि।

सुतमया पञ्ञा दूसरों से सुनकर ज्ञान प्राप्त करना – श्रुतमयी प्रज्ञा।

चिंतामया पञ्ञा बुद्धि से विवेचन करके प्राप्त ज्ञान– चिंतनमयी प्रज्ञा।

भावनामया पञ्ञा प्रत्यक्ष अनुभव से प्राप्त ज्ञान। इनमें से अंतिम ज्ञान से ही चित्त की विशुद्धि प्राप्त होती है। यह विपश्यना-भावना से विकसित की जाती है।

पटिच्चसमुप्पाद प्रतीत्यसमुत्पाद, कार्य-कारण का सिद्धांत, वह प्रक्रिया जो अविद्या से शुरू होती है और जिससे हम अपने लिए दुःख की सृष्टि एक जन्म से दूसरे जन्मों में करते रहते हैं।

समाधि एकाग्रता, मन का नियंत्रण। यह दूसरी शिक्षा है (देखें – अरियअट्ठङ्गिकमग्ग) साध्य के रूप में इसका विकास ध्यानों की प्राप्ति कराता है लेकिन मन को पूर्ण मुक्त नहीं करता।

सम्मासति सम्यक स्मृति, जागरूकता। देखें **सति**।

सम्पजञ्ञ मानवीय दृश्य प्रपंच या मनुष्य की सच्चाई को समग्रता से समझना अर्थात वेदनाओं के धरातल पर इसकी अशाश्वता, क्षणभंगुरता तथा नश्वरता को समझना।

संसार भवचक्र, प्रतीत्यसमुत्पन्न लोक, दुःखलोक।

संघ आर्यों का संघ – वैसे व्यक्तियों का संघ, जिन्होंने निर्वाण का अनुभव कर लिया है, उसे देख लिया है। बौद्ध भिक्षु एवं भिक्षुणी का संघ, आर्य संघ, भिक्षु या भिक्षुणी संघ का सदस्य।

संखार संस्कार – चेतनायुक्त कर्म, मानसिक प्रतिक्रिया। मानसिक अनुबंधन, मन की प्रक्रिया या मन के चार भागों में से एक भाग। अन्य तीन भाग हैं – विज्ञान, संज्ञा और वेदना (सं.– संस्कार)।

सङ्खार-उपेक्खा/ सङ्खारुपेक्खा इसका शाब्दिक अर्थ है संस्कारों के प्रति उपेक्षाभाव। भंग अवस्था के बाद की विपश्यना ध्यान की अवस्था या चरण। इसमें अचेतन चित्त में पड़े अनुशय क्लेश मन के स्तर पर संवेदनाओं के रूप में प्रकट होते हैं। इन संवेदनाओं के प्रति उपेक्षाभाव रखकर तटस्थ रहकर साधक नये संस्कार नहीं बनाता और इस तरह पुराने संस्कारों का क्षय होता है। इस तरह इस प्रक्रिया से धीरे-धीरे सभी संस्कारों का उन्मूलन हो जाता है।

सञ्ञा संज्ञा, जानना, मन के चार भागों में से एक भाग। अन्य तीन हैं– वेदना, विज्ञान और संस्कार। यह पुराने संस्कारों से संस्कृत है और सच्चाई का विकृत रूप प्रस्तुत करता है। विपश्यना के अभ्यास में संज्ञा, प्रज्ञा में परिवर्तित हो जाती है जिसका अर्थ है सच्चाई को वैसा समझना जैसी वह है। यह अनित्य संज्ञा, दुःख संज्ञा, अनात्म संज्ञा तथा अशुभ संज्ञा हो जाती है अर्थात हम अनित्य, अनात्म, दुःख तथा अशुभ अर्थात सुंदरता के भ्रामक रूप को समझने लगते हैं।

सति स्मृति, जागरूकता, आनापानस्मृति, श्वसन बोध, सम्यक स्मृति – अष्टांगिक मार्ग का एक अंग (देखें **अरियअट्ठङ्गिकमग्ग**)।

सतिपट्ठान स्मृति को प्रतिष्ठित करना। स्मृति उपस्थान के चार अंतःसंबंधित पक्ष हैं– कायानुपश्यना, वेदनानुपश्यना, चित्तानुपश्यना और धर्मानुपश्यना। वेदनानुपश्यना में ये चारों समाहित हैं, क्योंकि संवेदनाएं सीधे काया तथा मन से जुड़ी हैं।

सिद्धत्थ इसका शाब्दिक अर्थ है जिसने अपना अर्थ पूराकर लिया। ऐतिहासिक बुद्ध का व्यक्तिगत नाम (सं. सिद्धार्थ)।

सील शील, दूसरों तथा अपने को हानि पहुँचने वाले शारीरिक तथा वाचिक कर्मों से दूर रहना। अष्टांगिक मार्ग पर चलने का अभ्यास करने में यह प्रथम शिक्षा है, सोपान है। (देखें – **अरियअट्ठङ्गिकमग्ग**)।

सुतमया पञ्ञा सुनकर पाया ज्ञान, श्रुतमयी प्रज्ञा (देखें **पञ्ञा**)।

सुत्त बुद्ध या उनके किसी अग्रश्रावक का उपदेश (सं. सूत्र)।

तण्हा तृष्णा, प्यास। राग और द्वेष दोनों ही तृष्णा हैं। बुद्ध ने अपने प्रथम प्रवचन धम्मचक्कप्पवत्तन सुत में तृष्णा को दुःख का मूल कहा है। बुद्ध के अनुसार प्रतीत्यसमुत्पाद में वेदना पर प्रतिक्रिया करने से तृष्णा होती है।

तथागत 'इस प्रकार गये' या 'इस प्रकार आये'। तथागत का अर्थ सम्यक-संबुद्ध है जिन्होंने अष्टांगिक मार्ग पर चलकर परम सत्य को जान लिया है। वे अपने आपको सामान्यतया इसी नाम से संबोधित करते हैं।

थेरवाद स्थविरों का उपदेश या उनकी शिक्षा। दक्षिण एशिया के देशों जैसे म्यंमा, श्रीलंका, थाइलैंड, लाओस, कंबोडिया में बुद्ध की शिक्षा जिस रूप में संरक्षित है, वह थेरवाद कहलाती है।

तिपिटक तीन पिटारियां। बुद्ध की शिक्षा के तीन संग्रह जैसे विनयपिटक (भिक्षु जीवन के नियम) सुत्तपिटक (प्रवचनों का संग्रह) तथा अभिधम्मपिटक (उच्चतर शिक्षा का संग्रह)।

वेदना संवेदना, मानस के चार खण्डों या चार प्रक्रियाओं में से एक। अन्य तीन हैं विज्ञान, संज्ञा एवं संस्कार। बुद्ध ने कहा है कि

वेदना के रूपात्मक पक्ष भी हैं और चित्तात्मक इसलिए वेदना साधन है, औजार है मन तथा रूप दोनों की परीक्षा करने का। प्रतीत्य-समुत्पाद में बुद्ध ने तृष्णा को वेदना जन्य बताया है। तटस्थभाव से संवेदनाओं को देखना सीखकर मनुष्य राग-द्वेष की प्रतिक्रिया से बच सकता है। और अपने भीतर अनित्य का अनुभव कर सकता है। ऐसा अनुभव विराग के लिए आवश्यक है जिससे चित्त की विशुद्धि होती है और मन की मुक्ति होती है।

वेदनानुपस्सना शरीर पर होने वाली वेदनाओं की अनुपश्यना। (देखें **सतिपट्ठान**)।

विञ्ञाण विज्ञान, मानस के चार खंडों में से एक। अन्य तीन हैं – संज्ञा, वेदना और संस्कार।

यथाभूत जैसा है, सच्चाई।

यथाभूतञाणदस्सन सच्चाई जैसी है उसे वैसे ही देखकर प्राप्त ज्ञान को यथाभूत ज्ञानदर्शन कहते हैं।

विपस्सना अंतर्दृष्टि, आत्मनिरीक्षण विशेषकर चित्त और रूप के अनित्य स्वभाव को देखना।

विपस्सना भावना शरीर पर होने वाली संवेदनाओं को देखकर अपने भीतर सच्चाई को साधना विधि से जानकर अंतर्दृष्टि का क्रमबद्ध विकास।

परिशिष्ट 'घ'

संदर्भ सूची

विपश्यना विशोधन विन्यास, इगतपुरी द्वारा प्रकाशित पालि तिपिटक के ग्रन्थों के आधार पर।

अध्याय १

१. संयुत्तनिकाय २.४.४११, अनुराधसुत्त।

२. अंगुत्तरनिकाय १.३.६६, केसमुत्तिसुत्त (कालामसुत्त)।

३. दीघनिकाय २.१३१-२४०, महापरिनिब्बानसुत्त।

४. दीघनिकाय २.१३१-२४०, महापरिनिब्बानसुत्त।

५. संयुत्तनिकाय २.३.८७, वक्कलिसुत्त।

६. दीघनिकाय २.१३१-२४०, महापरिनिब्बानसुत्त।

७. अंगुत्तरनिकाय १.४.४५, रोहितस्ससुत्त; संयुत्तनिकाय १.१.१०७, रोहितस्ससुत्त में भी है।

८. धम्मपद १९-२०, यमकवग्ग।

९. मज्झिमनिकाय ३.७४-७८, गणकमोगल्लानसुत्त।

अध्याय २

१. 'सङ्खार' शब्द बुद्ध की शिक्षा में बहुत महत्त्व का है और अंग्रेजी में इसका अनुवाद करना बड़ा कठिन है। यह बहु अर्थक है। विशेष संदर्भ में इसका सही अर्थ क्या है यह कहना कठिन है। यहां सङ्खार का अर्थ चेतना, संचेतना भी होता है। इस अर्थ में प्रयोग के लिए देखें: अंगुत्तरनिकाय १.४.१७१, चेतनासुत्त; संयुत्तनिकाय १.२.३८, चेतनासुत्त; २.३.५७, सत्तट्ठानसुत्त।

२. मज्झिमनिकाय २.१८७-१९२, अग्गिवच्छगोत्तसुत्त।

अध्याय ३

१. मज्झिमनिकाय ३.२८९-२९७, चूळकम्मविभंगसुत्त।

२. धम्मपद ३८०, भिक्खुवग्ग।

३. धम्मपद १-२, यमकवग्ग।

४. सुत्तनिपात ७२९-७७१, द्वयतानुपस्सनासुत्त।

५. संयुत्तनिकाय ३.५.१०८१, धम्मचक्कप्पवत्तनसुत्त।

६. अंगुत्तरनिकाय १.३.१३३, लेखसुत्त।

७. अंगुत्तरनिकाय १.१.२९६-३६५, एकधम्मपालि।

अध्याय ४

१. संयुत्तनिकाय ३.५.१०८१, धम्मचक्कप्पवत्तनसुत्त।

२. संयुत्तनिकाय ३.५.१०८१, धम्मचक्कप्पवत्तनसुत्त।

३. मज्झिमनिकाय १.३९६-४१४, महातण्हासङ्खयसुत्त।

४. मज्झिमनिकाय १.३९६-४१४, महातण्हासङ्खयसुत्त।

५. मज्झिमनिकाय १.३९६-४१४, महातण्हासङ्खयसुत्त।

६. धम्मपद १६५, अत्तवग्ग।

७. दीघनिकाय १.४०६-४४३, पोट्ठपादसुत्त।

८. अंगुत्तरनिकाय १.३.६६, केसमुत्तिसुत्त (कालामसुत्त)।

९. संयुत्तनिकाय २.४.३५८, असिबन्धकपुत्तसुत्त।

अध्याय ५

१. धम्मपद १८३, बुद्धवग्ग।

२. धम्मपद १७-१८, यमकवग्ग।

३. मज्झिमनिकाय १.२८८-२९९, चूळहत्थिपदोपमसुत्त।

४. मज्झिमनिकाय १.२८८-२९९, चूळहत्थिपदोपमसुत्त।

अध्याय ६

१. अंगुत्तरनिकाय १.४.१३, पधानसुत्त।

अध्याय ७

१. धम्मपद ३३८, तण्हावग्ग।

२. दीघनिकाय २.१३१-२४०, महापरिनिब्बानसुत्त।

३. धम्मपद २७६, मग्गवग्ग।

४. संयुत्तनिकाय ३.५.२३३, परियायसुत्त।

५. संयुत्तनिकाय १.२.६२, दुतियअस्सुतवासुत्त; संयुत्तनिकाय २.४.२५८, फस्समूलकसुत्त।

६. धम्मपद २७७, मग्गवग्ग।

७. संयुत्तनिकाय २.४.२५५, पठमगेलञ्ञसुत्त।

अध्याय ८

१. यह गाथा देवेन्द्र सक्क द्वारा बुद्ध के महापरिनिर्वाण के बाद कही गयी। यह अन्यत्र भी थोड़े बदले रूप में पायी जाती है। देखें उदाहरण के लिए:
दीघनिकाय २.२२१, महापरिनिब्बानसुत्त; संयुत्तनिकाय १.१.११, नन्दनसुत्त; संयुत्तनिकाय १.१.२२६, अनुरुद्धसुत्त।

२. अंगुत्तरनिकाय ३.९.२०, वेलामसुत्त।

३. मज्झिमनिकाय १.२३४-२४८, अलगद्दुपमसुत्त।

४. उदान १०, बाहियसुत्त; धम्मपद अट्ठकथा १.१०१, बाहियदारुचीरियत्थेरवत्थु।

अध्याय ९

१. संयुत्तनिकाय ३.५.१०८१, धम्मचक्कप्पवत्तनसुत्त। धर्म के साक्षात्कार करने से प्रज्ञा की प्राप्ति प्रथम श्रावकों द्वारा कही गयी सूत्रवत बातें।

२. संयुत्तनिकाय १.१.१६८, उपचालासुत्त, अरहंत उपचाला का कथन है।

३. धम्मपद ३७४, भिक्खुवग्ग।

४. उदान ७१, पठमनिब्बानपटिसंयुत्तसुत्त।

५. उदान ७३, ततियनिब्बानपटिसंयुत्तसुत्त।

६. संयुत्तनिकाय ३.५.१०८१, धम्मचक्कप्पवत्तनसुत्त।

७. संयुत्तनिकाय २.४.३१४, निब्बानपञ्हासुत्त, बुद्ध के प्रमुख शिष्य सारिपुत्त का कथन है।

८. सुत्तनिपात २६१-२७२, मंगलसुत्त।

९. दीघनिकाय १.४०६-४४३, पोट्ठपादसुत्त।

अध्याय १०

१. धम्मपद ११३, सहस्सवग्ग।

२. संयुत्तनिकाय २.३.१०२, अनिच्चसञ्ञासुत्त।

३. दीघनिकाय २.१३१-२४०, महापरिनिब्बानसुत्त।

४. मज्झिमनिकाय ३.१३६-१४३, महाचत्तारीसकसुत्त।

५. मज्झिमनिकाय ३.१३६-१४३, महाचत्तारीसकसुत्त।

परिशिष्ट 'क'

बुद्ध की शिक्षा में संवेदना का महत्त्व।

१. अंगुत्तरनिकाय ३.८.८३, मूलकसुत्त; अंगुत्तरनिकाय ३.९.१४, समिद्धिसुत्त।

२. दीघनिकाय १.१-१४९, ब्रह्मजालसुत्त।

३. अंगुत्तरनिकाय १.३.६२, तित्थायतनादिसुत्त।

४. संयुत्तनिकाय २.४.२७०, अट्ठसतसुत्त।

५. धम्मपद २९३, पकिण्णकवग्ग।

६. सतिपट्ठानसुत्त दो बार सुत्तपिटक में आया है– दीघनिकाय २.३७२-४०५ तथा मज्झिमनिकाय १.१०५-१३८। दीघनिकाय विवरण में धम्मानुपस्सना का वर्णन मज्झिमनिकाय के विवरण से अधिक है। इसलिए दीघनिकाय में आये इस सुत्त को महासतिपट्ठान सुत्त कहते हैं। अन्य सभी दृष्टियों से दोनों सुत्त एक ही तरह के हैं। यहां दिये उद्धरण दोनों में एक ही है।

७. दीघनिकाय २.३७२-४०५; मज्झिमनिकाय १.१०५-१३८, सतिपट्ठानसुत्त।

८. दीघनिकाय २.३७२-४०५; मज्झिमनिकाय १.१०५-१३८, सतिपट्ठानसुत्त।

९. दीघनिकाय २.३७२-४०५; मज्झिमनिकाय १.१०५-१३८, सतिपट्ठानसुत्त।

१०. संयुत्तनिकाय १.२.३२, कळारसुत्त।

११. संयुत्तनिकाय २.४.२७१, अञ्ञतरभिक्खुसुत्त।

१२. धम्मपद २५९, धम्मट्ठवग्ग।

विपश्यना साहित्य

हिंदी

- निर्मल धारा धर्म की - (पांच दिवसीय प्रवचन) रु. ५५/-
- प्रवचन सारांश (शिविर-प्रवचन) रु. ४५/-
- जागे पावन प्रेरणा रु. ८०/-
- जागे अंतर्बोध रु. ५०/-
- धर्मः आदर्श जीवन का आधार रु. ४०/-
- तिपिटक में सम्यक संबुद्ध, भाग-२ रु. १३०/
- धारण करे तो धर्म रु. ७०/-
- क्या बुद्ध दुक्खवादी थे? रु. ३५/-
- मंगल जगे गृही जीवन में रु. ४०/-
- धम्मवाणी संग्रह (पालि गाथाएं एवं हिंदी अनु.) रु. ४०/-
- विपश्यना पगोडा स्मारिका रु. १००/-
- सुत्तसार भाग १ (दीघ एवं मज्झिम निकाय) रु. ९५/-
- सुत्तसार भाग २ (संयुत्तनिकाय) रु. ५०/-
- सुत्तसार भाग ३ (अंगुत्तर एवं खुद्दकनिकाय) रु. ४५/-
- धन्य बाबा! रु. ३५/-
- कल्याणमित्र सत्यनारायण गोयन्का (व्यक्तित्व और कृतित्व) रु. ५०/-
- पातंजल योगसूत्र रु. ५०/-
- आहुनेय्य, पाहुनेय्य, अंजलिकरणीय - डॉ. ओम प्रकाश जी रु. ३०/-
- राजधर्म [कुछ ऐतिहासिक प्रसंग] रु. ३५/-
- आत्म-कथन भाग-१ रु. ३५/-
- लोक गुरु बुद्ध रु. १०/-
- देश की बाह्य सुरक्षा रु. ०५/-
- गणराज्य की सुरक्षा कैसे हो! रु. ०६/-
- शाक्यों और कोलियों के गणतंत्र का विनाश क्यों हुआ? रु. १०/-
- अंगुत्तर निकाय, भाग-१ रु. १२५/-
- केंद्रीय कारागृह जयपुर, विपश्यना का प्रथम जेल शिविर रु. ३०/-
- विपश्यना : लोकमत भाग-१ रु. ५५/-
- विपश्यना : लोकमत भाग-२ रु. ४५/-
- अग्रपाल राजवैद्य जीवक रु. २०/-
- मंगल हुआ प्रभात (हिंदी दोहे) रु. ५५/-
- पथ-प्रदर्शिका रु. २/-
- विपश्यना क्यों? रु. १/-
- सम्राट अशोक के अभिलेख रु. ५०/-
- आचार्य श्री सत्यनारायणजी गोयन्का का संक्षिप्त जीवन-परिचय रु. ३०/-
- अहिंसा किसे कहें? रु. १५/-
- लकुण्डक भद्दिय रु. १०/-
- गौतम बुद्धः जीवन-परिचय और शिक्षा रु. २५/-
- भगवान बुद्ध की साम्प्रदायिकता-विहीन शिक्षा रु. १०/-
- बुद्ध-जीवन-चित्रावली रु. ३३०/-
- भगवान बुद्ध के अग्रश्रावक महामोग्गल्लान रु. ४५/-
- क्या बुद्ध नास्तिक थे? रु. ८५/-
- तिपिटक में सम्यक संबुद्ध, (६ भागों में) भाग-१ रु. ४५/-, भाग-२ रु. ५०/-, भाग-३ रु. ५५/-, भाग-४ रु. ४५/-, भाग-५ रु. ४५/-, भाग-६ रु. ५५/-
- महामानव बुद्ध की महान विद्या विपश्यना का उद्गम और विकास (११६ चित्रों का संग्रह) सजिल्द रु. ६२५/-
- भगवान बुद्ध के महाश्रावक महाकस्सप (धुतांगधारियों में 'अग्र') रु. ४०/-
- महामानव बुद्ध की महान विद्या विपश्यना का उद्गम और विकास रु. १४५/-
- भगवान बुद्ध के अग्रउपासक अनाथपिण्डिक रु. ५०/-
- भगवान बुद्ध की अग्रश्राविका किसागोतमी रु. ३०/-
- चित्त गृहपति एवं हत्थक आळवक रु. ३०/-
- खुशियों की राह रु. १५०/-
- विसाखा मिगारमाता रु. ३५/-
- मगधराज सेनिय बिम्बिसार रु. ४५/-
- बुद्धसहस्सनामावली (पालि एवं हिंदी) रु. ३५/-
- आनन्द – भगवान बुद्ध के उपस्थाक रु. १२०/-
- जीने की कला रु. ७०/-
- परम तपस्वी श्री रामसिंह जी रु. ५५/-
- भगवान बुद्ध की अग्रउपासिकाएं खुज्जुत्तरा एवं सामावती तथा उत्तरानन्दमाता रु. २५/-
- विपश्यना पत्रिका संग्रह भाग - १ रु. ८०/-
- विपश्यना पत्रिका संग्रह भाग - २ रु. ७५/-
- आदर्श दंपति नकुलपिता एवं नकुलमाता रु. २५/-
- तिक-पट्ठान (संक्षिप्त रूपरेखा) रु. ३५/-

- १२ हिंदी पुस्तिकाओं का सेट — रु. १४/-
- धम्म-वंदना (पालि गाथाएं, हिंदी अनुवाद) — रु. ४५/-
- धम्मपद (संशोधित हिंदी अनुवाद सहित) — रु. ४५/-
- महासतिपट्ठानसुत्त (समीक्षा एवं भाषानुवाद) — रु. ५५/-
- महासतिपट्ठानसुत्त (भाषानुवाद) — रु. ३५/-
- बुद्धगुणगाथावली (पालि) — रु. ३०/-
- बुद्धसहस्सनामावली (पालि) — रु. १५/-
- प्रारंभिक पालि — रु. ८५/-
- प्रारंभिक पालि की कुंजी — रु. ५०/-
- जागो लोगां जगत रा (राजस्थानी दूहा) — रु. ४५/-
- परिभाषा धरम री (राजस्थानी) — रु. १०/-
- ५ राजस्थानी पुस्तिकाओं का सेट — रु. ५/-
- विश्व विपश्यना स्तूप का संदेश (हिंदी, मराठी, अंग्रेजी) — रु. १०/-

मराठी

- जगण्याची कला — रु. ७०/-
- जागे पावन प्रेरणा — रु. ८०/-
- प्रवचन सारांश — रु. ४०/-
- धर्मः आदर्श जीवनाचा आधार — रु. ४०/-
- जागे अंतर्बोध — रु. ६५/-
- निर्मळ धारा धर्माची — रु. ४५/-
- महासतिपट्ठानसुत्त (भाषानुवाद) — रु. ४५/-
- महासतिपट्ठानसुत्त (समीक्षा) — रु. ४०/-
- मंगलमय गृहस्थ-जीवन — रु. ४०/-
- भगवान बुद्धाची सांप्रदायिकता-विहीन शिकवणुक — रु. १०/-
- बुद्धजीवन-चित्रावली — रु. ३३०/-
- आनंदाच्या वाटेवर — रु. १५०/-
- आत्म-कथन भाग-१ — रु. ५०/-
- अग्रपाल राजवैद्य जीवक — रु. २०/-
- महामानव बुद्धाची महान विद्या विपश्यनाः उगम आणि विकास — रु. १२५/-
- लोक गुरु बुद्ध — रु. ०६/-
- लकुण्डक भद्दिय — रु. १२/-
- प्रमुख विपश्यनाचार्य श्री सत्यनारायणजी गोयंका यांचा संक्षिप्त जीवन-परिचय — रु. १८/-

गुजराती

- प्रवचन सारांश — रु. ४५/-
- धर्मः आदर्श जीवननो आधार — रु. ५०/-
- महासतिपट्ठानसुत्त — रु. २०/-
- जागे अंतर्बोध — रु. ७५/-
- धारण करे तो धर्म — रु. ७०/-
- जागे पावन प्रेरणा — रु. १००/-
- क्या बुद्ध दुःखवादी थे? — रु. ३०/-
- विपश्यना शा माटे? (पुस्तिका) — रु. ०२/-
- मंगल जगे गृही जीवन में — रु. ३५/-
- निर्मल धारा धर्म की — रु. ६५/-
- बुद्धजीवन-चित्रावली — रु. ३३०/-
- लोक गुरु बुद्ध — रु. ०६/-
- भगवान बुद्ध की साम्प्रदायिकता-विहीन शिक्षा — रु. १०/-
- सम्राट अशोक के अभिलेख — रु. ७५/-

अन्य भाषाओं में

- द आर्ट ऑफ लिविंग (तमिळ) — रु. ९०/-
- डिस्कोर्स समरीज (तमिळ) — रु. ३०/-
- ग्रेसियस फ्लो ऑफ धम्म (तमिळ) — रु. २५/-
- मंगल जगे गृही जीवन में (तेलगु) — रु. ३५/-
- प्रवचन सारांश (बंगाली) — रु. ३५/-
- धर्मः आदर्श जीवन का आधार (बंगाली) — रु. ३०/-
- महासतिपट्ठानसुत्त (बंगाली) — रु. ९०/-
- प्रवचन सारांश (मलयालम) — रु. ४५/-
- निर्मल धारा धर्म की (मलयालम) — रु. ४५/-
- जीने का हुनर (उर्दू) — रु. ७५/-
- धर्मः आदर्श जीवन का आधार (पंजाबी) — रु. ५०/-
- निर्मळ धारा धर्माची (पंजाबी) — रु. ७०/-

पालि तिपिटक सेटः

अङ्गुत्तरनिकाय (अजिल्द) (१२ ग्रंथ) — रु. १५००/-

खुद्दकनिकाय – सेट १ (९ ग्रंथ) — रु. ५४००/-

दीघनिकाय अभिनवटीका (रोमन) (भाग १ और २) — रु. १०००/-

English Publications

- Sayagyi U Ba Khin Journal — Rs. 225/-
- Essence of Tipitaka by U Ko Lay — Rs. 130/-
- The Art of Living by Bill Hart — Rs. 90/-
- The Discourse Summaries — Rs. 60/-
- Healing the Healer by Dr. Paul Fleischman — Rs. 35/-
- Come People of the World — Rs. 40/-
- Gotama the Buddha: His Life and His Teaching — Rs. 45/-
- The Gracious Flow of Dharma — Rs. 40/-
- Discourses on Satipaṭṭhāna Sutta — Rs. 80/-
- The Wheel of Dhamma Rotates — Rs. 850/-
- Vipassana : Its Relevance to the Present World — Rs. 110/-
- Dharma: Its True Nature — Rs. 115/-
- Vipassana : Addictions & Health (Seminar 1989) — Rs. 115/-
- The Importance of Vedanā and Sampajañña — Rs. 135/-
- Pagoda Seminar, Oct. 1997 — Rs. 80/
- Pagoda Souvenir, Oct. 1997 — Rs. 50/-
- A Re-appraisal of Patanjali's Yoga- Sutra by S. N. Tandon — Rs. 85/-
- The Manuals Of Dhamma by Ven. Ledi Sayadaw — Rs. 205/-
- Was the Buddha a Pessimist? — Rs. 65/-
- Psychological Effects of Vipassana on Tihar Jail Inmates — Rs. 80/-
- Effect of Vipassana Meditation on Quality of Life (Tihar Jail) — Rs. 100/-
- For the Benefit of Many — Rs. 160/-
- Manual of Vipassana Meditation — Rs. 80/-
- Realising Change — Rs. 140/-
- The Clock of Vipassana Has Struck — Rs. 130/-
- Meditation Now : Inner Peace through Inner Wisdom — Rs. 85/-
- S. N. Goenka at the United Nations — Rs. 25/-
- Defence Against External Invasion — Rs. 10/-
- How to Defend the Republic? — Rs. 6/-
- Why Was the Sakyan Republic Destroyed? — Rs. 12/-
- Mahāsatipaṭṭhāna Sutta — Rs. 65/-
- Pali Primer — Rs. 95/-
- Key to Pali Primer — Rs. 55/-
- Guidelines for the Practice of Vipassana — Rs. 2/-
- Vipassana In Government — Rs. 1/-
- The Caravan of Dhamma — Rs. 90/-
- Peace Within Oneself — Rs. 10/-
- The Global Pagoda Souvenir 29 Oct.2006 (English & Hindi) — Rs. 60/-
- The Gem Set In Gold — Rs. 75/-
- The Buddha's Non-Sectarian Teaching — Rs. 15/-
- Acharya S. N. Goenka An Introduction — Rs. 25/-
- Value Inculcation through Self-Observation — Rs. 35/-
- Glimpses of the Buddha's Life — Rs. 330/-
- Pilgrimage to the Sacred Land of Dhamma (Hard Bound) — Rs. 750/-
- An Ancient Path — Rs. 100/-
- Vipassana Meditation and the Scientific World View — Rs. 15/-
- Path of Joy — Rs. 200/-
- The Great Buddha's Noble Teachings The Origin & Spread of Vipassana (Small) — Rs. 160/-
- Vipassana Meditation and Its Relevance to the World (Coffee Table Book) — Rs. 800/-
- The Great Buddha's Noble Teachings The Origin & Spread of Vipassana (HB) — Rs. 650/-
- Buddhaguṇagāthāvalī (in three scripts) — Rs. 30/-
- Buddhasahassanāmāvalī (in seven scripts) — Rs. 15/-
- English Pamphlets, Set of 9 — Rs. 11/-
- Set of 10 Post Card — Rs. 35/-
- Gotama the Buddha: His Life and His Teaching (French) — Rs. 50/-
- Meditation Now: Inner Peace through Inner Wisdom (French) — Rs. 80/-
- For the Benefit of Many (French) — Rs. 195/-
- For the Benefit of Many (Spanish) — Rs. 190/-
- The Art of Living (Spanish) — Rs. 130/-
- Path of Joy (German, Italian, Spanish, French) — Rs. 300/-

संपर्कः विपश्यना विशोधन विन्यास, धम्मगिरि, इगतपुरी-४२२४०३, जि. नाशिक, महाराष्ट्र. फोन: **०२५५३**-२४४०७६, २४४०८६, २४३७१२, २४३२३८. फैक्स: **०२५५३**-२४४१७६. (दक्षिण भारतीय भाषाओं में अनुवादित विपश्यना साहित्य, स्थानीय केंद्रों पर उपलब्ध है) Email: vri_admin@dhamma.net.in; **विपश्यना विशोधन विन्यास के प्रकाशन अब ऑनलाइन भी खरीदे जा सकते हैं। कृपया देखें www.vridhamma.org**

विपश्यना साधना केंद्र

विश्वभर में विपश्यना के निम्नलिखित केंद्र हैं। इन केंद्रों पर प्रायः हर माह दस दिवसीय आवासीय शिविर आयोजित होते हैं। इच्छुक व्यक्ति किसी भी केंद्र से भावी शिविर-कार्यक्रमों की जानकारी प्राप्त करके, अपनी सुविधानुसार सम्मिलित हो सकते हैं: –

प्रमुख केंद्र = धम्मगिरि, धम्मतपोवन : विपश्यना विश्व विद्यापीठ, इगतपुरी-४२२४०३, नाशिक. फोनः [९१] (**०२५५३**) २४४०७६, २४४०८६, २४३७१२, २४३२३८; फैक्सः ०२५५३-२४४१७६. Website: www.vri.dhamma.org, Email: <info@giri.dhamma.org> (केवल कार्यालय के समय अर्थात सुबह १० बजे से सायं ५ बजे तक).

धम्मनासिकाः संपर्कः १) **नाशिक विपश्यना केंद्र,** म.न.पा. जलशुद्धिकरण केंद्र के सामने, शिवाजीनगर, सातपुर, (पोस्ट-YCMOU), नाशिक-४२२२२२. संपर्कः फोनः (०२५३) ६५१६-२४२, ३२०३-६७७, मोबाइलः ९८२२५-१३२४४, Email: info@nasika.dhamma.org

धम्मसरिता : धम्मसरिता विपश्यना केंद्र, जीवन संध्या मंगल संस्थान, मातोश्री वृद्धाश्रम, सौरगांव, पोस्ट पडघा, ता. भिवंडी, जि. ठाणे-४२११०१ (खडावली मध्य रेल्वे स्टेशन के पास). online registration www.sarita.dhamma.org Email: registration Email: dhamma.sarita@gmail.com, info@sarita.dhamma.org, मोबा. ९१+ ९८२१९-५९३७६, ७७९८३-२४६५९, ७७९८३-२५०८६. (कार्यालय का समय सुबह ८ बजे से दोपहर १२ सायं ४ से ६ बजे तक). **संपर्कः** मोबा. +९१- ७७९८३-२४६५९, ७७९८३-२५०८६.

धम्ममनमोदः मनमाड विपश्यना केंद्र, अनकाई किला स्टेशन के पास, पो. अनकाई, ता. येवला, जि. नाशिक-४२२ ४०३ **संपर्कः** (०२५९१) २२५१४१-२३१४१४.

धम्मवाहिनीः मुबई परिसर विपश्यना केंद्र, गांव रूंदे, टिटवाला (पूर्व) कल्याण, जि. ठाणे. **संपर्कः संपर्कः** मोबाईलः ९७७३०-६९९७८. केवल कार्यालय के दिन-- १२ से सायं ६ तक.

धम्मसाकेतः विपश्यना केंद्र, नालंदा स्कूल के पास, कानसई रोड, सुभाष टेकड़ी, उल्हासनगर-४२१००४, जि. ठाणे, महाराष्ट्र

धम्मविपुलः विपश्यना साधना केंद्र, सयाजी ऊ बा खिन मेमोरियल ट्रस्ट, प्लॉट नं. ९१ए; सेक्टर २६, पारासिक हिल, सीबीडी बेलापुर, नवी मुंबई ४०० ६१४. फोनः (०२२) २७५२-२२७७. Email: dhammavipula@gmail.com

धम्मपत्तनः एस्सेल वर्ल्ड के पास, गोराई खाड़ी, बोरीवली (पश्चिम) मुंबई – ४०० ०९१ **व्यवस्थापक,** फोनः (९१) (०२२) २८४५-२२३८, ३३७४-७५०१, मोबा. ९७७३०-६९९७५, (सुबह ११ से सायं ५ बजे तक); टेलि-फैक्सः (०२२) ३३७४-७५३१, Email: info@pattana.dhamma.org; Website: www.pattana.dhamma.org

धम्मसरोवरः खान्देश विपश्यना केंद्र, गेट नं. १६६, डेडरगांव जलशुद्धिकरण केंद्र के पास, मु.पो. तिखी-४२४ ००२, जिला-धुळे, (०२५६२) २०३४८२, ६९९५७३. मोबा. ९२२५४-६१०२१. **संपर्कः** फोनः २२२८६१, मोबा. ९९२२६-०७७१८, ९८२२१-७१४२४, ९४२२७-७७९०२. Email: info@sarovara.dhamma.org

धम्मानन्दः पुणे विपश्यना केंद्र, मरकल गांव के पास, आलंदी से ८ कि.मी. मोबा. कार्यालय ९२७१३-३५६६८. व्यवस्थापक मोबा. ९४२०४-८२८०५. **संपर्कः** पुणे विपश्यना समिति, नेहरू स्टेडियम के सामने, आनंद मंगल कार्यालय के पास, दादावाडी, पुणे-४११००२. फोनः **(०२०)** २४४६८९०३, २४४३६२५०; टेलि/फैक्सः २४४६४२४३. Email: info@ananda.dhamma.org Website:www.pune.dhamma.org;

धम्मपुण्णः संपर्कः पुणे विपश्यना समिति, दादावाडी, नेहरू स्टेडियम के सामने, आनंद मंगल कार्यालय के पास, पुणे-४११००२. फोनः (०२०) २४४३६२५०. २४४६८९०३. फैक्सः २४४६४२४३; Email: info@punna.dhamma.org

धम्मालयः दक्खिन विपश्यना अनुसंधान केंद्र, रामलिंग रोड, आलते पार्क, आलते, ता. हातकणंगले, जि. कोल्हापुर, पिनः ४१६१२३. फोनः **०२३०**-२४८७१६७, २४८७३८३, Email: info@alaya.dhamma.org. **संपर्कः** कार्यालयः २१०१/१९ इ, जयहिंद अपार्टमेंट, लक्ष्मीनगर, कोल्हापुर-४१६००५, फोनः(२३१) २५३०९९९, मोबा. ९७६७४-१३२३२.

धम्मअनाकुलः विपश्यना साधना केंद्र, खापरखेड़ फाटा, तेल्हारा-४४४१०८ जि. अकोला. **संपर्कः** १) विपश्यना चैरिटेबल ट्रस्ट, शेगांव, अपना बाजार, मेन रोड, शेगांव, जि. बुलडाना. फोनः ९५७९८-६७८९०, ९८८१२-०४१२५. २) श्री महेंद्र सिंह आनंद, मोबाइलः ९४२२१-८१९७०. Email: info@anakula.dhamma.org

धम्मअजयः विपश्यना साधना केंद्र, ग्राम - अजयपूर, पो. चिचपल्ली, मुल रोड, चंद्रपुर, Email: dhammaajaya@gmail.com **संपर्कः** १) श्री घरडे, सुगत नगर, नगीनाबाग वार्ड नं. २ जि. चंद्रपुर पिन- ४४२४०१. मोबाइलः ८००७१५१०५०, ९४२१७-२१००६, २) श्री प्रीतिकमल पाटील, मोबाइलः ९४२१७-२१००६, ९८२२५-७०४३५, ९३७०३१२६७३,

धम्ममल्लः संपर्कः श्री. शेलके, सिद्धार्थ सोसायटी, यवतमाळ, ४४५००१, फोनः ९४२२८-६५६६१.

धम्मभूसनः विपश्यना साधना समिति, शांतिनगर, ओमकार कॉलोनी, कोटेचा हायस्कूल के पास, जि. जलगांव, भुसावल ४२५२०१, Email: info@bhusana.dhamma.org, **संपर्कः** मोबा. ९८२२९-१४०५६.

धम्मअजन्ता : अजन्ता अन्तर्राष्ट्रीय विपश्यना समिति, 'राजहंस' २ सुराणा नगर, जालना रोड, औरंगाबाद-४३१००३. (औरंगाबाद वैजापुर रोड, पर २० किलोमीटर दुरीपर, डायमंड ढाबेसे ५०० मी. अंतरपर केंद्र का बोर्ड है।) **संपर्कः** मोबाईलः ९४२२२-११३४४, ९९२१८-१७४३०.

धम्मनागः नागपुर विपश्यना केंद्र – माहुरझरी गांव, नागपुर-कलमेश्वर रोड के पास, नागपुर; **संपर्कः** फोनः **०७१२**-२४५८६८६, २४२०६१, मोबा. ९४२३४-०५६००; फैक्सः २५३९७१६. Email: info@naga.dhamma.org

धम्मसुगतिः संपर्कः १) श्री नारनवरे, एकायनो मग्गो धम्म प्रशिक्षण संस्था, सुगतनगर, नागपुर-१४. फोनः (०७१२) २६३०११५, फैक्सः २६५०८६७. मोबा. ९४२२१-२९२२९. २) सुरेंद्र राऊतः २६३२९१८. मोबा. ९२२६९-९६०८७.

धम्म अमरावती : विपश्यना केंद्र, लुंबिनी मोगरा, पो. भानखेडा, ता. जि. अमरावती **संपर्कः** श्री किशोर देशमुख, द्वारा डॉ. सौ. कमल रा. गवई, ४४ कमलपुष्प कांग्रेसनगर, अमरावती-४४४६०६ फोनः (०७२१) २६६२१७९, मोबा. ९४२०७२१८४४.

धम्मवसुधाः विपश्यना केंद्र, हिवरा पोस्ट झडशी, ता. सेलु, जि. वर्धा **संपर्कः** १) श्री एवं सौ बांते, मोबा. ९३२६७३२५५०, ९३२६७३२५४७. २) श्री काटवे, मोबा. ९७३००६९७२६, Email: dhammavasudha@yahoo.com.in

धम्म छत्तपतिः फलटन, सातारा, महाराष्ट्र

धम्म आवासः लातुर विपश्यना समीती, आर. टी. ओ आफीस के पास, वसंत विहार कालोनी, बाभळगाव रोड, लातूर-४१३५३१ **संपर्कः** १) श्री द्वारकादास भुतडा, मोबा. ९६७३२५९९००, ०२३८२-२५९२८४, २) श्री आकाश कामदार, मोबा. ९९७०२-७७७०१.

धम्म निरंजनः विपश्यना साधना केंद्र, नेरली कुशता धाम नेरली. (नांदेड से ५ कि मी. की दुरी पर) **संपर्कः** १) श्री एस. एम. जोंधले, मोबाइलः ९४२२१८९३१८. २) डॉ. कुलकर्णी, फोनः (०२४६२) २५२६५९. मोबाइलः ९४२२१७३२०२.

धम्मथली: विपश्यना केंद्र, पो.बॉ. २०८, जयपुर-३०२००१, राजस्थान, फोन: **[९१] ०१४१**-२६८०२२०, मोबा. ०-९६१०४-०१४०१, ०९६०२८-४८८९६. फैक्स: २५७६२८३. Email: info@thali.dhamma.org

धम्ममरुधरा: विपश्यना साधना केंद्र, लहरिया रिसोर्ट के पीछे, पाल-चौपासनी लींक रोड, चोखा, जोधपुर-३४२००९. मोबा. +९१-९३१४७२७२१५, +९१-९८२८१३११२०, फैक्स: +९१-२९१-२७४६४३५. Email: info@marudhara.dhamma.org **संपर्क:** श्री नेमीचंद भंडारी, ४१, अशोकनगर, पाल लींक रोड, जोधपुर-३४२००३. मोबा.: +९१-९८२९०२७६२१,

धम्मपुब्बज: चूरू (राजस्थान) **पुब्बज भुमी विपश्यना ट्रस्ट,** बलेरी रोड, (चूरू से ६ कि.मी.) चूरू (राजस्थान): **संपर्क:** १) श्री श्रवण कुमार फुलवारी, सी-८६, सामुदायीक भवन के पास अग्रसेन नगर, चूरू, मोबा. ०९४१४६-७६०६१. Email: gk.churu@gmail.com २) श्री सुरेश खन्ना, ६५ इंदिरा कालोनी, वनी पार्क, जयपुर, मोबा. ९४१३१-५७-५६. Email: sureshkhanna56@yahoo.com

धम्मअजरामर : विपश्यना केंद्र, वीर तेजाजी नगर, दौराई, अजमेर-३०५००३; फोन: (०१४५) २४४३६०४. **संपर्क:** श्री कैलाश बैरवाल, मोबा. ९४१३२-२८३४०, ९४६१५६१३४४, ९००११९६५५६. Email: kailashbairwal@yahoo.com

धम्मपुष्कर: विपश्यना केन्द्र, ग्राम रेवत (केडेल), पुष्कर पर्बतसर रोड, पुष्कर, जि अजमेर. मोबा. +९१-९४१३३-०७५७०. फोन: +९१-१४५-२७८०५७०. **संपर्क:** १) श्री रवि तोषणीवाल, मोबा. ०९८२९०-७१७७८, Email: info@toshcon.com २) श्री अनिल धारीवाल, मोबा. ०९८२९०-२८२७५. फैक्स: ०१४५-२७८७१३१.

धम्मसोत: विपश्यना साधना संस्थान, राहका गांव, (निम्मोद पोलीस पोस्ट के पास) बल्लभगढ़-सोहना रोड, (सोहना से १२ कि.मी.), जिला- गुडगांव, सोहना, हरियाणा. मोबा. ९८१२६५५५९९, ९८१२६४१४००. (बल्लभगढ़ और सोहना से बस उपलब्ध है।) संपर्क: विपश्यना साधना संस्थान, रुम न. १०१५, १० वां तल, हेमकुंठ/मोदी टावर्स, ९८ नेहरू प्लेस, नई दिल्ली-११००१९. फोन: **(०११)** २६४८-५०७१, २६४८-५०७२, २६४५-२७७२. फैक्स: २६४७०६५८. Email: info@sota.dhamma.org

धम्मपट्ठान : विपश्यना साधना केंद्र, कम्मासपुर, जि. सोनीपत, हरियाणा, पिन-१३१००१. मोबा. ०९९९१८७४५२४, **संपर्क:** ऊपर धम्मसोत के संपर्क पर.

धम्मकारुणिक: विपश्यना साधना संस्थान, गव्हरमेंट स्कूल के पास, गाँव नेवल, डाक सैनिक स्कूल कुंजपुरा, करनाल-१३२००१; **संपर्क:** श्री वर्मा, ५, शक्ति कालोनी, एस.बी.आई. के पास, करनाल-१३२००१. टेली-फैक्स: ०१८४-२२५७५४३, २२५७५४४; मोबा. ९९९२०-००६०१. Email: info@karunika.dhamma.org;

धम्म हितकारी: रोहतक, हरियाणा

धम्मसिखर : हिमाचल विपश्यना केंद्र, धरमकोट मैकलोडगंज, धर्मशाला, जिला- कांगरा, पिन-१७६२१९ (हि. प्र.). फोन: ०९२१८४१४०५१, ०९२१८४१४०५०, (पंजीकरण के लिए फोन सायं ४ से ५) Email: info@sikhara.dhamma.org

धम्मसलिल: देहरादून विपश्यना केंद्र, जनतनवाला गांव, देहरादून कॅन्ट तथा संतला देवी मंदिर के पास, देहरादून-२४८००१. फोन: **०१३५**-२१०४५५५, २७१५१८९. **संपर्क:** १) श्री भंडारी, १६ टैगोर विला, चक्राता रोड, देहरादून-२४८००१. फोन: (०१३५) २७१५१८९, फैक्स: २७१५५८०. २) श्री गुप्ता, फोन: २६५३३६६. Email: info@salila.dhamma.org;

धम्मसुवत्थी: जेतवन विपश्यना साधना केंद्र: कटरा बाईपास रोड, बुद्धा इंटर कालेज के सामने, श्रावस्ती, पिन-२७१८४५; फोन: **(०५२५२)** २६५४३९, ०९३३५८३३३७५ Email: info@suvatthi.dhamma.org **संपर्क:** श्री मुरली मनोहर, मातन हेलीया. मोबाईल: ०९४१५०-३६८९६, ०९४१५७-५१०५३.

धम्मलक्खण: लखनऊ विपश्यना केंद्र, अस्ती रोड, बक्शी का तालाब, लखनऊ-२२७२०२. फोन: (०५२२) २९६८५२५. मोबा. ०९७९४५४५३३४. Email: info@lakkhana.dhamma.org **संपर्क:** १) श्री जैन, ए-१०१, हेम्प्टन कोर्ट्स अपार्टमेंट्स, पिकेडिली होटल के पीछे, आलमबाग, लखनऊ-२२६ ००५, (उ.प्र.) फोन: नि. **(०५२२)**-२४२-४४०८, मोबा. ०९३३५९-०६३४१, ०९४१५०-३६८९६, ०९४१५७-५१०५३.

धम्मधज: पंजाब विपश्यना केंद्र, आनंदगढ़, पो. मेहलांवली-१४६११०, जिला- होशियारपुर. फोन: **०१८८२-**२७२३३३, मोबाइल: ९४६५१-४३४८८. Email: info@dhaja.dhamma.org

धम्म तिहार: नई दिल्ली जेल न. ४ तिहार, केन्द्रीय कारागृह, नई दिल्ली

धम्म रक्खक: नई दिल्ली नजफगढ़, पुलिस ट्रेनिंग कालेज

धम्मचक्क : विपश्यना साधना केंद्र, खरगीपुर गांव, पो. पियरी, चौबेपुर, (सारनाथ), वाराणसी. मोबा: ०९३०७०९३४८५; ०९९३६२३४८२३, Email: info@cakka.dhamma.org (सारनाथ म्युजियम से ऑटोरिक्शा हैं।) **संपर्क:** १) श्री गुप्ता, फोन: ०५४२-३२४६०८९. मोबा. ९३३६९-१४८४३, (प्रात: १० से सायं ६.) २) श्री प्रेम शंकर श्रीवास्तव, मोबाईल: ९२३५४-४१९८३.

धम्मकल्याण : कानपुर, अंतर्राष्ट्रीय विपश्यना साधना केंद्र, ढोड़ी घाट, हनुमान मंदिर के पास, गाँव एमा, पो. रूमा, कानपुर नगर-२०९४०२, (सेन्ट्रल रेलवे स्टेशन से २३ कि० मी० एवं रमादेवी चौराहा से १५ कि० मी० दूरी पर स्थित) फोन: ०७३८८-५४३७९३, ०७३८८-५४३७९५, मोबा. ०८९९५४८०१४९. Email: dhamma.kalyana@gmail.com, **संपर्क:** १) श्री अशोक साहू, मोबा. ०९८३९१-३८०८४, २) डा. ओ. पी गुप्ता, मोबा. ०९४५०१-३२४३६,

धम्मसिन्धु : कच्छ विपश्यना केन्द्र, ग्राम- बाड़ा, ता. मांडवी, जिला- कच्छ ३७०४७५. फोन: **(०२८३४)** २७३३०३, फैक्स: २२४४८८, २८८९११; Email: info@sindhu.dhamma.org [शिविर आरंभ होने के दिन **सीधे केंद्र** जाने के लिए वाहन सुविधा उपलब्ध। तदर्थ **संपर्क- फोन: भुज:** ०९४२७४-३३५३४. **गांधीधाम–** ०९४२६२-१४५३१. **मांडवी –** ०८२३८७-९५६७५.] **संपर्क:** श्री शाह, प्रो. के. टी. शाह रोड, मांडवी-कच्छ-३७०४६५. फोन: **(०२८३४)** २२३०७६, २२३४०६,

धम्मकोट : सौराष्ट्र विपश्यना केंद्र, कोठारिया रोड, राजकोट. फोन: **(०२८१)** २९२४९२४, २९२४९४२,: मोबाईल: ९३२७९-२३५४० Email: info@kota.dhamma.org (राजकोट से १५ कि.मी.) **संपर्क:** १) सौराष्ट्र विपश्यना केंद्र, C/o भाभा डायनिंग हॉल, पंचनाथ रोड, राजकोट-३६०००१. फोन: ०२८१- २२२०८६१६, मोबाईल: ९४२७२-२१५९१, फैक्स: २२२१३८४. (प्रत्येक शिविर शुरू होने के दिन धम्मकोट के लिए यहाँ से वाहन ३ बजे जाता है); २) श्री मेहता, फोन: २५८७५९९, मोबाईल: ९४२८२०३२९१.

धम्मदिवाकरः उत्तर गुजरात विपश्यना केंद्र, मीठ्ठा गाव, ता. और जिला- मेहसाणा, गुजरात; फोनः **(०२७६२)** २७२८००. Email: info@divakara.dhamma.org **संपर्कः** फोनः **(०२७६२)** २५४६३४, २५३३१५. मोबा. ०९४२९२३३०००,

धम्मसुरिन्दः सुरेंद्रनगर, गुजरात **संपर्कः**१) महासतीजी, फोनः (०२७५२) २४२०३०. २) डॉ. बविशी, फोनः २३२५६४.

धम्मभवनः संपर्कः १) 'धम्मभवन', ५ कालिंदी पार्क, अकोटा अतितिगृह के पीछे, अकोटा, बड़ोदा-३९००२०; फोनः (०२६५) २३४११८१. २) विठ्ठलभाई पटेल, फोनः (०२६९२) मोबा. ९८२५०-२८०५७. Email: vvsou@hotmail.com

धम्म अम्बिका : विपश्यना ध्यान केंद्र, नॅशनल हायवे नं. ८, (मुंबई से अहमदाबाद) पच्छिम से २ कि० मी० दूरी पर बोरीयाच टोलनाका, ग्राम वागलवाड ता. गंनदेवी जि. नवसारी, फोनः ०२६३४ २९११००, पंजीकरणः दोपहर ११ से सायं ५ (०२६१) ३२६०९६१, ०९८२५९५५८१२. www.ambika.dhamma.org Online registration: dhammaambikasurat@gmail.com **संपर्कः** १) वसंतभाई लाड, मोबा. ०९४२८१६०७१४, २) श्री रत्नशीभाई के. पटेल, मोबा. ०९८२५०४४५३६,

धम्मपीठ : गुर्जर विपश्यना केंद्र, (अहमदाबाद रेलवे स्टेशन से ४० कि.मी., धोलका शहर से ३ कि.मी. पहले) ग्राम रनोडा, ता. धोलका, जिला- अहमदाबाद-३८७८१०. मोबा. ८९८००-०१११०, ८९८००-०१११२, ९४२६४-१९३९७. फोनः **(०२७१४)** २९४६९०. Email: info@pitha.dhamma.org (बस सुविध हर शिविर के ० दिवस पर, पालदी बस स्टॅड (अहमदाबाद) दोपहर २:३० बजे) **संपर्कः** १) श्रीमती शशी तोडी, मोबा. ९८२४०-६५६६८.

धम्मखेत्तः विपश्यना अन्तर्राष्ट्रीय साधना केंद्र, (१२.६ किमी.) माइल स्टोन नागार्जुन सागर रोड, कुसुम नगर, वनस्थलीपुरम हैदराबाद-५०००७०, (आंध्र प्रदेश) फोनः **(०४०)** २४२४०२९०, ३२४६०७६२, ०९४९१५९४२४७, फैक्सः २४२४१७४६. Email: info@khetta.dhamma.org

धम्मसेतु : विपश्यना साधना केंद्र, ५३३, पझान- थंडलम रोड, थीरुनीरमलाई रोड, द्वारा थीरुमुदीवक्कम, चेन्नई-६०००४४, मोबाइलः ९४४४२-८०९५२, ९४४४२-९०९५३, ९४४४०-२१६२२, Email.: setu.dhamma@gmail.com **संपर्कः** श्री गोयन्का, नं. २, सीथम्मल रोड, अलवरपेठ, चेन्नई-६०००१८. फोनः **(०४४)** ४३४०-७०००, ४३४०-७००१, फैक्सः ९१-४४-४२०१-११७७. मोबाइलः ०९८४०७-५५५५५. Email: skgoenka@kgiclothing.in; skgoenka@gogogarments.in, **शिविर संबंधीत जानकारी तथा पंजीकरण के लिए संपर्कः** ९४४४४-६२५८३, ९४४२२-८७५९२, ९०४२६-३२८८९, ८०१५७-५६३३९, ९९४०४-६७४५३. (केवल कार्यालय के समय अर्थात सुबह १० बजे से १ तथा सायं २ से ५ बजे तक).

धम्मपफुल्लः बैंगलोर विपश्यना केंद्र, अलूर-५६२१२३. (गाँव अलूर, अलूर पंचायत कार्यालय के पास) तुमकूर हाईवे के सामने दासनपुरा बैंगलोर उत्तर तालुका, (कर्नाटक). फोनः **(०८०)** २३७१-२३७७, २३७१७१०६, ९१-९७३९५९१५८० (सुबह १० से सायं ६ तक), ९२४२३-५७४२४ (सुबह ९ से दोपहर २ तथा सायं ४ से ६ तक), एवं ९३४३५-४५३८८ (सुबह ११ से दोपहर ३ तक) Email: info@paphulla.dhamma.org [बैंगलोर रेल्वे स्टेशन से २३ की.मी. दूर; मजेस्टिक बस स्टैंड के प्लेटफार्म २० से नं. २५६, २५८, २५८सी, २५८ के बस से तुमकूर हाईवे पर हिमालया ड्रग भवन तक, तथा वहां से अलूर गांव के लिए ऑटोरिक्शा मिलते हैं।]

धम्मनागाज्जुन : विपश्यना साधना केंद्र, हिल कॉलोनी, नागार्जुन सागर, जि. नालगोंडा, आंध्र प्रदेश, (हैदराबाद से १४०.४ किमी, बुद्धपार्क के पास, हिल कॉलोनी से हैदराबाद की तरफ ३ किमी, दूरी पर) पिन-५०८२०२. फोनः (८६८०) २७७९९९ मोबाः ०९९६३७७५६४५, ९४४०१- ३९३२९. Email: info@nagajjuna.dhamma.org

धम्मनिज्झान : विपश्यना साधना केंद्र, इंदूर, पो. पोचाराम-५०३१८६, येदपल्ली मंडल, जि. निजामाबाद, फोनः **(०८४६७)** ३१६६६३, ९९०८५९६३३६. Email: info@nijjhana.dhamma.org

धम्मविजय : विपश्यना साधना केंद्र, विजयराय, पोस्ट- पेदावेगी मंडलम्, पिन-५३४४७५, जि. पश्चिम गोदावरी, (आंध्र प्रदेश). [विजयराय गांव एलूरु से १५ किमी, एलूरु चिंतलपुडी रोड पर. विजयराय बस स्टॅन्ड से ३ की. मी. दूरी पर धम्मविजया सेंटर हैं, बस स्टॅन्ड से ॲटो/टॅक्सी उपलब्ध हैं।] फोनः **(०८८१२)** २२५५२२; मोबा. ९४४१४-४९०४४

धम्मारामः विपश्यना अंतर्राष्ट्रीय साधना केंद्र, कुमुदावल्ली गांव, भीमावरम-भानुकू रोड, (भीमावराम के पास), मंडल -पाल कोडेरु, जि. पश्चिम गोदावरी, पिन-५३४२१०. फोनः ०८८१६- २३६५६६. Email: info@rama.dhamma.org

धम्म कोण्डञ्ञ : विपश्यना साधना केंद्र, कोंडापुर (व्हाया) संगारेड्डी, जि. मेडक - ५०२३०६. **संपर्कः** मोबा. ९३९२०-९३७९९, ९३९८३-१६१५५.

धम्मकेतनः विपश्यना साधना केंद्र, पो. मम्परा (व्हाया) कोडुकुलान्जी, चेन्गान्नूर, जि. अलपुज्झा. केरल-६८९५०८. फोनः (०४७९) २३५-१६१६. Email: info@ketana.dhamma.org **संपर्कः** १) (कार्यालय) **केरल विपश्यना समिती,** मायथ्री, नेरेचथरा लाइन, पॅरनडोर रोड, एलमकरा पो. ऑ. कोची-६८२ ०२६. केरल फोनः (०४८४) २५३९८९१ २) श्री बी. रविंद्रन, मोबा. ९८४६५-६९८९१.

धम्म मधुराः मदुराई (धर्म की मधुरता) मदुराई

धम्मकानन : धम्मकानन विपश्यना केंद्र, वैनगंगा तट, रेंगाटोला, पो. गर्रा, बालाघाट. फोनः (०७६३२) २९२४६५; **संपर्कः** १) श्री हरीदास मेश्राम, १२६, रतन कुटी, गंगानगर रोड, बुढ़ी, बालाघाट-४८१००१, (म. प्र.) फोनः **(०७६३२)** २३९१६५, मोबाईलः ०९४२५१४००१५, Email: dineshbgt@hotmail.com २) श्री खोब्रागडे, मोबा. ०९४२४६-१४७३४.

धम्मकेतु : विपश्यना केंद्र, पोस्ट बॉक्स १६, थनौद, व्हाया-अंजौरा, जिला-दुर्ग, छत्तीसगढ़-४९१००१; (म.प्र.) फोनः (०७८८) ३२०५५१३, मोबा. ९५८९८४२७३७. Email: info@ketu.dhamma.org **संपर्कः** १) धम्मकेतु, (उपरोक्त केंद्र के पते पर) तथा मोबा. ०९४२५२-३४७५७, ०९०९८९-२०२४६.

धम्मबल : विपश्यना साधना केंद्र, भेडाघाट थाने से एक किलोमीटर, बापट मार्ग, भेडाघाट, जबलपुर. मोबा. ९३००५०६२५३. **संपर्कः** विपश्यना ट्रस्ट, जबलपुर, द्वारा - मधु मेडिकल स्टोर्स, मेडिसिन काम्प्लेक्स, शास्त्रीब्रिज के पास, मॉडेल रोड, बैंक ऑफ बड़ौदा के बाजू में, जबलपुर-०२ फोनः ०७६१-४००६२५२, मोबा. ९९८१५-९८३५२, ९४२४३-५५२१४.

धम्मलिच्छवी : वैशाली विपश्यना केंद्र, लदौरा ग्राम, लदौरा पाक्री, मुजफ्फरपुर-८४३११३. फोनः ०९९३११६१२९०. **संपर्कः** श्री गोयन्का, जेनीथ आटो सर्विस, अघोरिया बाजार, पो. रामना, मुजफ्फरपुर, पिन-८४२००२. फोनः **०६२१**- २२४०-२१५, २२४७७६०. Email: info@licchavi.dhamma.org

धम्मबोधिः बोधगया अंतर्राष्ट्रीय विपश्यना साधना केंद्र, मगध विश्वविद्यालय के समीप, पो. मगध विश्वविद्यालय, गया-ढोबी रोड, बोधगया-८२४२३४, मोबा. ९४७१६-०३५३१, Email: info@bodhi.dhamma.org **संपर्कः** फोनः **(०६३१)** २२००४३७, ९९५५९-११५५६.

धम्मपुब्बोत्तर : मिजोरम विपश्यना साधना केंद, कमलानगर-२, सीएडीसी, चांगतै-सी, जि. लोंगतलाई, मिजोरम-७९६७७२. Email: mvmc.knagar@gmail.com, **संपर्कः** १) दिगंबर चकमा, फोनः ०३७२-२५६३६८३. मोबा. ०९४३६७-६३७०८,

धम्मपुरीः त्रिपुरा विपश्यना मेडिटेशन सेंटर, पो. मचमरा, जि. उत्तर त्रिपुरा, पिनः ७९९२६५. मोबा. ०९८६२६-४६७६४, Email: Info@Puri.dhamma.org **संपर्कः** श्री देवान मोहन, फोनः ०३८१-२३००४४१, मोबा. ०९८६२१-५४८८२, ०९४०२५-२७१९१.

धम्मगंगाः विपश्यना केंद्र, सोदपुर, हरिश्चन्द्र दत्ता रोड, पनिहटी, बारो मन्दिर घाट, कोलकाता-७००११४. फोनः **(०३३)** २५५३२८५५. Email: info@ganga.dhamma.org **संपर्कः** कार्यालयः श्री काजड़िया, २२, बोनफील्ड लेन, दूसरा तल्ला, कोलकाता-७००००१, फोनः **(०३३)** २२४२३२२५/४५६१ (२) श्री तोदी, १२३A, मोतीलाल नेहरू रोड, कोलकाता-२९ फोन नि. २४८५४१७९. मोबा. ९८३१४-४७७०१.

धम्मबंगः कोलकाता, पश्चिम बंगाल **संपर्कः** धम्मगंगा केंद्र.

धम्मपाल : धम्मपाल विपश्यना केंद्र, केरवा डैम के पीछे, ग्राम दौलतपुरा, भोपाल-४६२ ०४४, **संपर्कः** मोबा. ९४०६९-२७८०३. **संपर्कः** प्रकाश गेडाम, ई-३/८, नुपूर कुंज, अरेरा कॉलोनी, भोपाल-४६२०१६. मोबा. ९८९३२-८९०४९, फोनः (०७५५) २४६८०५३, २४६२३५१, फैक्सः २४६-८१९७. Email: dhammapal@airtelmail.in; ऑन लाइन आवेदन; http://www.dhamma.org/en/schedules/schpala.shtml

धम्ममालवा : इंदौर (म.प्र.) विपश्यना केंद्र, ग्राम - जंबूडी हप्सी, गोमटगिरी के आगे, पितृ पर्वत के सामने, हातोद रोड, इंदौर-४५२००३. **संपर्कः** १) इंदौर विपश्यना इंटरनेशनल फाउंडेशन, ट्रस्ट, "लाभगंगा" ५८२, एम. जी. रोड इंदौर (म.प्र.) फोनः (०७३१) ४२७३३१३. Email: info@malava.dhamma.org; dhammamalava@gmail.com २) श्री शंभुदयाल शर्मा, मोबा. ९८९३१-२९८८८.

धम्मरत : (रतलाम से १५ कि.मी.) साई मंदीर के पीछे, ग्राम धमनोद ता. साईलन जि. रतलाम-४५७००१, फैक्सः ०७४१२ ४०३८८२, मोबा. ०९८२७५-३५२५७. Email: dhamm.rata@gmail.com **संपर्कः** रतलाम विपश्यना समिति, द्वारा डा वाधवानी क्लीनीक, ११७, स्टेशन रोड, रतलाम-४५७००१ मोबा. ०९९८१०-८४८२२, ९४२५३-६४९५६.

धम्मउपवनः बाराचकिया, बिहार **संपर्कः** फोनः निवास (०६२१) २४४ ९७५; ५५२१ ०७७०

धम्मउत्कलः विपश्यना साधना केंद्र, ग्राम चानबेरा पो. अमसेना, (व्हाया) खरियार रोड जिलाः नुआपाडा, उड़ीसा-७६६१०६, मोबा. ०९४०६२३७८९६, संपर्कः १) श्री. एस. एन. अग्रवाल, मोबा. ०९४३८६१०००७, २) श्री. पुरुषोत्तम जे. मोबा. ०९४३७०-७०५०५,

धम्मसिक्किमः विपश्यना साधना केंद्र, पो. ऑ. आहो सेन्ती, ग्राम, सेन्ती ईस्ट सिक्किम- ७३७१३५, **संपर्कः** शीलादेवी चौरसिया, मोबा. ०९८३०७-०६४८१, ०९७४८४-६१७८७, ०९४३४३-३९३०३, ०९४३४८-६२२२६. Email: basantigorsia@hotmail.com

धर्मशृंगः नेपाल विपश्यना केंद्र, मुहान पोखरी, बूढ़ानीलकंठ, पो. बा. १२८९६, काठमांडू, फोनः **९७७ (०१)** ४३७१६५५, ४३७१००७, ४२५०५८१, ४२२५४९०; निवासः ४२२४७२०, ४२२६३१४. Email: info@sringa.dhamma.org; **संपर्कः** फोनः २५०५८१, २२५४९०, नि.२२१२९०. फैक्सः २२४७२०, २२६३१४.

धम्मजननीः लुंबिनी विपश्यना केंद्र, लुंबिनी (पीस फ्लेम के पास), रुपनदेही, लुंबिनी अंचल, नेपाल. Email: info@janani.dhamma.org फोनः ९७७ (७१) ५८०२८२. **संपर्कः** नेपाल. फोनः **९७७ (७१)** ५४१५४९.

धम्मविराट : पूर्वांचल विपश्यना केंद्र, फुलबरी टोल, बस पार्क के दक्षिण की ओर इथारी- ७ संसरी, नेपाल; फोनः [९७७] (२५) ५८५५२१; Email: info@birata.dhamma.org; **संपर्कः** १) श्री मुंदडा, फोनः [९७७] (२१) ५२५४८६, ५२७६७१. फैक्सः ५२६४६६; २) श्री गोयल, फोनः दूकान [९७७](२५)५२३५२८, नि. ५२६८२९.

धम्मतराई : बीरगंज विपश्यना केंद्र, परवानीपुर, पारसा, नेपाल. Email: info@tarai.dhamma.org **संपर्कः** १) कार्यालयः संदीप बिल्डींग, आदर्श नगर, पो. बा. नं. ३२. फोनः ०५१-५२१८८४. फैक्सः ०५१-५८०४६५. मोबा. ९८०४२-४५७६

धम्मचितवन : चितवन विपश्यना केंद्र, मंगलपुर व्ही.डी.सी. वार्ड नं ८, विजयनगर बाजार के समीप, चितवन, नेपाल Email: info@citavana.dhamma.org **संपर्कः** १) श्री महाराजन, फोनः ९७७(५६) ५२०२९४, ५२८२९४

धम्मकीत्ति : कीर्तिपुर विपश्यना केंद्र, देवधोका, कीर्तिपुर, नेपाल. **संपर्कः** श्री महर्जन, समाल तोले, वार्ड नं. ६, कीर्तिपुर.

धम्मपोखरा : पोखर विपश्यना केंद्र, पचभैया लेखनाथ नगरपालिका, पोखरा, कसकी, नेपाल. **संपर्कः** श्री नारा गुरुंग फोनः [९७७] (०६१) ६९१९७२, मोबा. ९८४६२-३२३८३, ९८४१२-५५६८८. Email: info@pokhara.dhamma.org

Cambodia

Dhamma Laṭṭhikā: Battambang Vipassana Centre, Trungmorn Mountain, National Route 10, District Phnom Sampeau, Battambang, Cambodia **Contact:** Phnom-Penh office: Mrs. Nary POC, Street 350, #35, Beng Keng Kang III, Khan Chamkar Morn, Phnom-Penh, Cambodia. P.O. Box 1014 Phnom-Penh, Cambodia Tel. [855] (012) 689 732; poc_nary@hotmail.com; **Local contact:** Off: Tel: [855] (536) 488 588, 2. Mr. Sochet Kuoch, Tel: [855] (092) 931 647, [855] (012) 995 269 Email: mientan2000@yahoo.co.uk and ms_apsara@yahoo.com

Hong Kong

Dhamma Muttā: G.P.O. Box 5185, Hong Kong Tel: 852-2671 7031; Fax: 852-8147 3312, Email: info@hk.dhamma.org

Indonesia

Dhamma Jāvā: Jl. H. Achmad No.99; Kampung Bojong, Gunung Geulis, Kecamatan Sukaraja, Cisarua-Bogor, Indonesia. Tel: [62] (0251) 827-1008; Fax: [62] (021) 581-6663; Website: www.java.dhamma.org, Course Registration Office Address: IVMF (Indonesia Vipassana Meditation Foundation), Jl. Tanjung Duren Barat I, No. 27 A, Lt. 4, Jakarta Barat, Indonesia Tel : [62] (021) 7066 3290 (7am to 10pm); Fax: [62] (021) 4585 7618; Email: info@java.dhamma.org

Iran

Dhamma Īran: Teheran Dhamma House Tehran Mehrshahr, Eram Bolvar, 219 Road, No. 158 Tel: 98-261-34026 97; website: www.iran.dhamma.org; Email: info@iran.dhamma.org

Israel

Dhamma Pamoda: Kibbutz Deganya-B, Jordan Valley, Israel **City contact:** Israel Vipassana Trust, P.O. Box 75, Ramat-Gan 52100, Israel, Website: www.il.dhamma.org/os/Vipassana-centre-eng.asp; Email: info@il.dhamma.org

Korea

Dhamma Korea: Tel: +82-010-8912-3566, +82-010-3044-8396 Website: www.kr.dhamma.org; Email: dhammakor@gmail.com

Japan

Dhamma Bhānu: 2-1 Iwakamioku, Hatta, Kyotamba-cho, Funai-gun, Kyoto 622-0324 Tel/Fax: [81] (0771) 86 0765, Website: www.bhanu.dhamma.org; Email: info@bhanu.dhamma.org

Dhammādicca: 785-3 Kaminogo, Mutsuzawa-machi, Chosei-gun, Chiba, 299-4413 Tel/Fax: [81](475)403611 Website: www.adicca.dhamma.org; Email: info@adicca.dhamma.org

Malaysia

Dhamma Malaya: Malaysia Vipassana Centre, Centre Address: Gambang Plantation, opp. Univ. M.P. Lebuhraya MEC, Gambang, Pahang, Malaysia Office Address: No., 30B, Jalan SM12, Taman Sri Manja, 46000 Petaling Jaya, Malaysia. Tel: [60] (16) 341 4776 (English Enquiry) Tel: [60] (12) 339 0089 (Mandarin Enquiry) Fax: [60] (3) 7785 1218; Website: www.malaya.dhamma.org; Email: info@malaya.dhamma.org

Mongolia

Dhamma Mahāna: Vipassana center trust of Mongolia. Eronkhy said Amaryn Gudamj, Soyolyn Tov Orgoo, 9th floor, Suite 909, Mongolia Tel: [976] 9191 5892, 9909 9374; **Contact:** Central Post Office, P. O. Box 2146 Ulaanbaatar 211213, Mongolia, Email: info@mahana.dhamma.org

Myanmar

Dhamma Joti: Vipassana Centre, Wingaba Yele Kyaung, Nga Htat Gyi Pagoda Road, Bahan, Yangon, Myanmar Tel: [95] (1) 549 290, 546660; Office: No. 77, Shwe Bon Tha Street, Yangon, Myanmar. Fax: [95] (1) 248 174 **Contact:** Mr. Banwari Goenka, Goenka Geha, 77 Shwe Bon Tha Street, Yangon, Myanmar Tel: [95] (1) 241 708, 253 601, 245 327, 245 201; Res. [95] (1) 556 920, 555 078, 554 459; Tel/Fax: Res. [95] (01) 556 920; Off. 248 174; Mobile: 95950-13929; Email: bandoola@mptmail.net.mm; goenka@ mptmail.net.mm; Email: dhammajoti@mptmail.net.mm

Dhamma Ratana: Oak Pho Monastery, Myoma Quarter, Mogok, Myanmar **Contact:** Dr. Myo Aung, Shansu Quarter, Mogok. Mobile: [95] (09) 6970 840, 9031 861;

Dhamma Maṇḍapa: Bhamo Monastery, Bawdigone, Near Mandalay Arts & Science University, 39th Street, Mahar Aung Mye Tsp., Mandalay, Myanmar Tel: [95] (02) 39694, Email: info@mandala.dhamma.org

Dhamma Maṇḍala: Yetagun Taung, Mandalay, Myanmar, Tel: [95] (02) 57655, **Contact:** Dr Mya Maung, House No 33 , 25th Street, (Between 81 and 82nd Street), Mandalay, Myanmar Tel: [95] (02) 57655; Email: info@mandala.dhamma.org

Dhamma Makuṭa: Mindadar Quarter, Mogok.Mandalay Division, Myanmar. Tel: [95] (09) 80-31861; Email: info@joti.dhamma.org

Dhamma Manorama: Main road to Maubin University, Maubin, Myanmar. Tel: **Contact:** U Hla Myint Tin, Headmaster, State High School, Maubin, Myanmar. Tel: [95] (045) 30470

Dhamma Mahimā: Yechan Oo Village, Mandalay-Lashio Road, Pyin Oo Lwin, Mandalay Division, Myanmar. Tel: [95] (085) 21501; Email: info@mandala.dhamma.org

Dhamma Manohara: Aung Tha Ya Qr, Thanbyu-Za Yet, Mon State **Contact:** Daw Khin Kyu Kyu Khine, No.64 Aungsan Road, Set-Thit Qr, Thanbyu-Zayet, Mon State, Myanmar. Tel: [95] (057) 25607

Dhamma Nidhi: Plot No. N71-72, Off Yangon-Pyay Road, Pyinma Ngu Sakyet Kwin, In Dagaw Village, Bago District, Myanmar. **Contact:** Moe Mya Mya (Micky), 262-264, Pyay Road, Dagon Centre, Block A, 3rd Floor, Sanchaung Township, Yangon11111, Myanmar. Tel: 95-1-503873, 503516~9, Email: dagon@mptmail.net.mm

Dhamma Ñāṇadhaja: Shwe Taung Oo Hill, Yin Ma Bin Township, Monywa District, Sagaing Division, Myanmar **Contact:** Dhamma Joti Vipassana Centre

Dhamma Lābha: Lasho, Myanmar

Dhamma Magga: Near Yangon, Off Yangon Pegu Highway, Myanmar

Dhamma Mahāpabbata: Taunggyi, Shan State, Myanmar

Dhamma Cetiya Paṭṭhāra: Kaytho, Myanmar
Dhamma Myuradipa: Irrawadi Division, Myanmar
Dhamma Pabbata: Muse, Myanmar
Dhamma Hita Sukha Geha: Insein Central Jail, Yangon, Myanmar
Dhamma Hita Sukha Geha-2: Central Jail Tharawaddy, Myanmar
Dhamma Rakkhita: Thayawaddi Prison, Bago, Myanmar
Dhamma Vimutti: Mandalay, Myanmar
Dhamma Mitta Yāna:

Philippines

Dhamma Phala: Philippines, Email: info@ph.dhamma.org

Sri Lanka

Dhamma Kūṭa: Vipassana Meditation Centre, Mowbray, Hindagala, Peradeniya, Sri Lanka Tel/Fax: [94] (081) 238 5774; Tel: [94] (060) 280 0057; Website: www.lanka.com/dhamma/dhammakuta; Email: dhamma@sltnet.lk

Dhamma Sobhā: Vipassana Meditation Centre, Balika Vidyala Road, Pahala Kosgama, Kosgama, Sri Lanka Tel: [94] (36) 225-3955, Email: dhammasobhavmc@gmail.com

Dhamma Anurādha: Ichchankulama Wewa Road, Kalattewa, Kurundankulama, Anuradhapura, Sri Lanka. Tel: [94] (25) 222-6959; **Contact:** Mr. D.H. Henry, Opposite School, Wannithammannawa, Anuradhapura, Sri Lanka. Tel: [94] (25) 222-1887; Mobile. [94] (71) 418-2094. Website: www.anuradha.dhamma.org; Email: info@anuradha.dhamma.org

Taiwan

Dhammodaya: No. 35, Lane 280, C hung-Ho Street, Section 2, Ta-Nan, Hsin She, Taichung 426, P. O Box No. 21, Taiwan Tel: [886] (4) 581 4265, 582 3932; Website: www.udaya.dhamma.org; Email: dhammodaya@gmail.com

Dhamma Vikāsa: Taiwan Vipassana Centre - Dhamma Vikasa, No. 1-1, Lane 100, Dingnong Road, Laonong Village Liouguei Township, Kaohsiung County Taiwan, Republic of China, Tel: [886] 7-688 1878; Fax: [886] 7-688 1879; Email: info@vikasa.dhamma.org

Thailand

Dhamma Kamala: Thailand Vipassana Centre, 200 Yoo Pha Suk Road, Ban Nuen Pha Suk, Tambon Dong Khi Lek, Muang District, Prachinburi Province, 25000, Thailand Tel. [66] (037) 403- 514-6, [66] (037) 403 185; Website: http://www.kamala.dhamma.org/, Email: info@kamala.dhamma.org

Dhamma Ābhā: 138 Ban Huay Plu, Tambon Kaengsobha, Wangton District, Pitsanulok Province, 65220, Thailand Tel : [66] (81) 605-5576, [66] (86) 928-6077; Fax : [66] (55) 268 049; Website: http://www.abha.dhamma.org/, Email: info@abha.dhamma.org

Dhamma Suvaṇṇa: 112 Moo 1, Tambon Kong, Nongrua District, Khonkaen Province, 40240, Thailand Tel [66] (08) 9186-4499, [66] (08) 6233-4256; Fax [66] (043) 242-288; Website: http://www.suvanna.dhamma.org/, Email: info@suvanna.dhamma.org

Dhamma Kañcana: Mooban Wang Kayai, Tambon Prangpley, Sangklaburi District, Kanchanaburi Province, Thailand Tel. [66] (08) 5046-3111 Fax [66](02) 993-2700, Email: info@kancana.dhamma.org

Dhamma Dhānī: 42/660 KC Garden Home Housing Estate, Nimit Mai Road, East Samwa Sub-district, Klongsamwa District, Bangkok 10510, Thailand Tel. [66] (02) 993-2711 Fax [66] (02) 993-2700; Email: info@dhani.dhamma.org

Dhamma Sīmanta: Chiengmai, Thailand **Contact:** Mr. Vitcha Klinpratoom, 67/86, Paholyotin 69, Anusaowaree, Bangkhen, BKK 10220 Thailand Tel: [66] (81) 645 7896; Fax: [66] (2) 279 2968; Email: vitchcha@yahoo.com; Email: info@simanta.dhamma.org

Dhamma Porāṇo: A meditator has donated six acres of land near Nakorn Sri Dhammaraj (the name of the city), an important and ancient sea-port.

Dhamma Puneti: Udon Province, Thailand

Dhamma Canda Pabhā: Chantaburi, an eastern town about 245 kilometres from Bangkok

Australia & New Zealand

Dhamma Bhūmi: Vipassana Centre, P. O. Box 103, Blackheath, NSW 2785, Australia Tel: [61] (02) 4787 7436; Fax: [61] (02) 4787 7221, Website: www.bhumi.dhamma.org; Email: info@bhumi.dhamma.org

Dhamma Rasmi: Vipassana Centre Queensland, P. O. Box 119, Rules Road, Pomona, Qld 4568, Australia Tel: [61] (07) 5485 2452; Fax: [61] (07) 5485 2907, Website: www.rasmi.dhamma.org; Email: info@rasmi.dhamma.org

Dhamma Pabhā: Vipassana Centre Tasmania, GPO Box 6, Hobart, Tasmania 7001, Australia Tel: [61] (03) 6263 6785; Website: www.pabha.dhamma.org, Course registration & information: [61] (03) 6228-6535 or [61](03) 6263-6785, Email: info@pabha.dhamma.org

Dhamma Āloka: P. O. Box 11, Woori Yallock, VIC 3139, Australia Tel: [61] (03) 5961 5722; Fax: [61] (03) 5961 5765 Website: www.aloka.dhamma.org; Email: info@aloka.dhamma.org

Dhamma Ujjala: Mail to: PO Box 10292, BC Gouger Street, Adelaide SA 5000, [Lot 52, Emu Flat Road, Clare SA 5453, Australia] **Tel contact:** Anne Blizzard [61] (0)8 8278 8278; Email: info@ujjala.dhamma.org

Dhamma Padīpa: Vipassana Foundation of WA, Australia, Website: www.dhamma.org.au, **Contact:** Andrew Parry C/- 13 Goldsmith Road, Claremont, WA 6010, Australia. Tel: [61]-(8)-9388 9151. Email: andparry@optusnet.com.au; Email: info@padipa.dhamma.org

Dhamma Medinī: 153 Burnside Road, RD3 Kaukapakapa, Rodney District, New Zealand Tel: [64] (09) 420 5319; Fax: [64] (09) 420 5320; Website: www.medini.dhamma.org; Email: info@medini.dhamma.org

Dhamma Passaddhi: Northern Rivers region, New South Wales, Email: info@passaddhi.dhamma.org

Europe

Dhamma Dīpa: PENCOYD, ST. OWENS CROSS, HR2 8NG, UK Tel: [44] (01989) 730 234; Fax: [44] (01989) 730 450; Website: www.dipa.dhamma.org; Email: info@dipa.dhamma.org

Dhamma Padhāna: European Long-Course Centre, Pencoyd, ST Owens Cross, HR2 8NG, UK; Website: www.eu.region.dhamma.org/os username <oldstudent> password <behappy> Email: info@padhana.dhamma.org

Dhamma Dvāra: Vipassana Zentrum, Alte Strasse 6, 08606 Triebel, Germany Tel: [49] (37434) 79770; Fax: [49] (37434) 79771 Website: www.dvara.dhamma.org; Email: info@dvara.dhamma.org

Dhamma Mahī: France Vipassana Centre, Le Bois Planté, Louesme, F-89350 Champignelles, France. Tel: [33] (0386) 457 514; Fax [33] (0386) 457 620; Website: www.mahi.dhamma.org; Email: info@mahi.dhamma.org

Dhamma Nilaya: 6, Chemin de la Moinerie, 77120, Saints, France Tel/Fax: [33] 1 6475 1370; Mobile: 0609899079; Email: vcjuly2001@orange.fr

Dhamma Aṭala: Vipassana Centre, SP29, Lutirano 15 50034 Lutirano (Fi) Italy Tel: Off. [39] (055) 804 818; Website: www.atala.dhamma.org; Email: info@atala.dhamma.org

Dhamma Sumeru: Centre Vipassana, No. 140, Ch-2610 Mont-Soleil, Switzerland Tel: [41] (32) 941 1670; Website: www.sumeru.dhamma.org; Email: info@sumeru.dhamma.org; Registration office: registration@sumeru.dhamma.org

Dhamma Neru: Centro de Meditación Vipassana, Cami Cam Ram, Els Bruguers, A.C.29, Santa Maria de Palautordera, 08460 Barcelona, Spain Tel: [34] (93) 848 2695; Website: www.neru.dhamma.org; Email: info@neru.dhamma.org

Dhamma Pajjota: Dhamma Pajjota, Belgium, Light (or Torch) of Dhamma, Vipassana Centrum, Driepaal 3, 3650 Dilsen-Stokkem, Belgium. Tel: [32] (0) 89 518 230; Website: www.pajjota.dhamma.org; Email: info@pajjota.dhamma.org

Dhamma Sobhana: Lyckebygården, S-599 93 Ödeshög, Sweden. Tel: [46] (143) 211 36; Website: www.sobhana.dhamma.org; Email: info@sobhana.dhamma.org

Dhamma Pallava: Vipassana Poland, Contact: Malgorzata Myc 02-798 Warszawa, Ekologiczna 8 m.79, Poland, Tel: [48](22) 408 22 48; Mobile: [48] 505-830-915, Email: info@pl.dhamma.org

Dhamma Sukhakari: East Anglia (UK)

North America

Dhamma Dharā: VMC, 386 Colrain-Shelburne Road, Shelburne MA 01370-9672, USA Tel: [1] (413) 625 2160; Fax: [1] (413) 625 2170; Website: www.dhara.dhamma.org; Email: info@dhara.dhamma.org

Dhamma Kuñja: Northwest Vipassana Center, 445 Gore Road, Onalaska, WA

98570, USA Tel/Fax: [1] (360) 978 5434, Reg Fax: [1] (360) 242-5988; Website: www.kunja.dhamma.org; Email: info@kunja.dhamma.org

Dhamma Mahāvana: California Vipassana Center, 58503 Road 225, North Fork, California, 93643 **Mailing address:** P. O. Box 1167, North Fork, CA 93643, USA Tel: [1] (559) 877 4386; Fax [1] (559) 877 4387; Website: www.mahavana.dhamma.org; Email: info@mahavana.dhamma.org

Dhamma Sirī: Southwest Vipassana Center, 10850 County Road 155 A Kaufman, TX 75142, USA **Mailing address:** P. O. Box 7659, Dallas, TX 75209, USA Tel: [1] (972) 962-8858; Fax: [1] (972) 346-8020 (registration); [1] (972) 932-7868 (center); Website: www.siri.dhamma.org; Email: info@siri.dhamma.org

Dhamma Surabhi: Vipassana Meditation Center, P. O. Box 699, Merritt, BC V1K 1B8, Canada Tel: [1] (250) 378 4506; Website: www.surabhi.dhamma.org; Email: info@surabhi.dhamma.org

Dhamma Maṇḍa: Northern California Vipassana Center, Mailing address: P. O. Box 265, Cobb, Ca 95426, USA Physical address: 10343 Highway 175, Kelseyville, CA 95451, USA Tel: [1] (707) 928-9981; Website: www.manda.dhamma.org; Email: info@manda.dhamma.org

Dhamma Suttama: Vipassana Meditation Centre, 810, Côte Azélie, Notre-Dame-de-Bonsecours, Montebello, (Québec), J0V 1L0, Canada Tél. 1-819-423-1411, Fax. 1- 819- 423- 1312, Website: www.suttama.dhamma.org; Email: info@suttama.dhamma.org

Dhamma Pakāsa: Illinois Vipassana Meditation Center, 10076 Fish Hatchery Road, Pecatonica, IL 61063, USA Tel: [1] (815) 489-0420; Fax [1] (360) 283-7068 Website: www.pakasa.dhamma.org; Email: info@pakasa.dhamma.org

Dhamma Toraṇa : Ontario Vipassana Centre, 6486 Simcoe County Road 56, Egbert, Ontario, L0L 1N0 Canada Tel: [1] (705) 434 9850; Website: www.torana.dhamma.org; Email: info@torana.dhamma.org

Dhamma Vaddhana: Southern California Vipassana Center, P.O. Box 486, Joshua Tree, CA 92252, USA. Tel: [1] (760) 362-4615; Website: www.vaddhana.dhamma.org; Email: info@vaddhana.dhamma.org

Dhamma Patāpa: Southeast Vipassana Trust, Jessup, Georgia, South East USA Website: www.patapa.dhamma.org

Dhamma Modana: Canada Tel: [1] (250) 483-7522; Website: www.modana.dhamma.org; Email: info@modana.dhamma.org

Dhamma Karunā: Alberta Vipassana Foundation, Tel: [1](403) 283-1889; Fax: [1](403) 206-7453; Email: registration@ab.ca.dhamma.org

Latin America

Dhamma Santi: Centro de Meditação Vipassana, Miguel Pereira, Brazil Tel: [55] (24) 2468 1188. Website: www.santi.dhamma.org; Email: info@santi.dhamma.org

Dhamma Makaranda: Centro de Meditación Vipassana, Valle de Bravo, Mexico Tel: [52] (726) 1-032017, **Registration and information:** Vipassana Mexico, P. O. Box 202, 62520 Tepoztlan, Morelos Tel/Fax: [52] (739) 395-2677; Website: www.makaranda.dhamma.org; Email: info@makaranda.dhamma.org

Dhamma Pasanna: Melipilla, Chile, Email: info@pasanna.dhamma.org

Dhamma Sukhadā: Buenos Aires, Argentina, **Contact:** Vipassana Argentina, Tel: [54] (11) 6385-0261; Email: info@ar.dhamma.org

Dhamma Veṇuvana: Centro de Meditación Vipassana, 90 minutes from Caracas, Sector Los Naranjos de Tasajera, Cerca de La Victoria, Estado Aragua, Venezuela. (See map on the website) Tel: [58] (212) 414-5678 For information and registration: Calle La Iglesia con Av. Francisco Solano, Torre Centro Solano Plaza, Of. 7D, Sabana Grande, Caracas, Venezuela. Phone: [58](212) 716-5988, Fax: 762-7235 Website: www.venuvana.dhamma.org; Email: info@venuvana.dhamma.org

Dhamma Suriya: Centro de Meditación Vipassana, Cieneguilla, Lima, Perú Email: info@suriya.dhamma.org

Dhamma Nandanvana: Colombia

South Africa

Dhamma Patākā: (Rustig) Brandwacht, Worcester, 6850, P. O. Box 1771, Worcester 6849, South Africa Tel: [27] (23) 347 5446; **Contact:** Ms. Shanti Mather, Tel/Fax: [27] (028) 423 3449; Website: www.pataka.dhamma.org; Email: info@pataka.dhamma.org

Russia

Dhamma Dullabha: Phones +7-968-894-23-92, +7-901-543-16-27



आचार्य श्री सत्यनारायणजी गोयन्का एवं श्रीमती इलायचीदेवी गोयन्का

श्री सत्यनारायणजी गोयन्का का जन्म म्यंमा (बर्मा) के मांडले शहर में १९२४ में हुआ। १०वीं कक्षा में सारे बर्मा में सर्वप्रथम आने पर भी पारिवारिक कारणों से आगे की पढ़ाई न कर सके। उन्होंने कम उम्र में ही अनेक वाणिज्यिक और औद्योगिक संस्थानों की स्थापना की और खूब धन अर्जित किया। अनेक सामाजिक तथा सांस्कृतिक केंद्रों की स्थापना की। तनावों के कारण शिरोरोग (Migraine) के शिकार हुए, जिसका उपचार बर्मा के ही नहीं, बल्कि विश्व के प्रसिद्ध डॉक्टर भी न कर सके। तब किसी ने उन्हें 'विपश्यना' की ओर मोड़ा, जो आज उनके तथा अनेकों के कल्याण का कारण बन गयी है।

सयाजी ऊ बा खिन से श्री गोयन्काजी ने १९५५ में विपश्यना विद्या सीखी और चौदह वर्षों तक उनके चरणों में बैठ कर अभ्यास करने के साथ बुद्धवाणी का भी अध्ययन किया। १९६९ में वे भारत आये और मुंबई में पहला शिविर लगा। तत्पश्चात शिविरों का तांता लग गया। १९७६ में इगतपुरी में पहला निवासीय विपश्यना केंद्र बना और अब तक विश्वभर में लगभग १६७ केंद्र बन गये हैं तथा नित नये बनते जा रहे हैं, जहां प्रशिक्षित किये हुए लगभग १२०० विपश्यनाचार्यों के माध्यम से विश्व की ५९ भाषाओं में १०-दिवसीय शिविरों के अतिरिक्त, कई केंद्रों पर २०, ३०, ४५, ६० दिन के शिविर लगते हैं। सब का संचालन निःशुल्क होता है। भोजन, निवासादि का खर्च शिविर से लाभान्वित साधकों के स्वैच्छिक अनुदान से चलता है। इसके सर्वहितकारी स्वरूप को देख कर विश्व की अनेक जेलों और स्कूलों में ही नहीं, पुलिसकर्मियों, जजों, सरकारी अधिकारियों आदि के लिए भी शिविर लगाये जाते हैं।

ISBN 978-81-7414-330-3

VRI - H6 6